ग्रन्थमाला-स्मारक-समर्पण-सङ्कल्पः

★ पञ्चापे लब्धजन्माऽऽसीद् होश्यारपुर-पार्श्वतः ।
महात्मा सर्वदानन्दस् सिद्ध-तपा यतीश्वरः ॥ १ ॥

★ वेद-वेदाङ्ग-सच्छ्रद्धो वेदान्त-शान्त-मानसः ।
सत्यधर्म-प्रचारात्म-लोकसेवा-दृढव्रतः ॥ २ ॥

★ सत्प्रेरणाभिराशीभिर् यः खलु मुनि-सत्तमः ।
अस्माकं सर्वदा मान्यः संस्थानस्याऽस्य पोषकः ॥ ३ ॥

★ तस्याऽस्तु सुचिर-स्मृत्यै पूजायै च मनस्विनः ।
सद्ग्रन्थ-विश्व-मालेयं श्रद्धया परयाऽर्पिता ।
इति निवेदयेते तत्-सम्पादक-प्रकाशकौ ॥ ४ ॥

सम्पा॰
विश्वबन्धुः शास्त्री, ऐम ए., ऐम. ओ. ऐल.

प्रकाशकः—
विश्वेश्वरानंद वैदिक संस्थान
होशियारपुर (भारत)

दुनिया तुम्हारी है !

YOUR SUCCESS IN PUBLIC LIFE

[सामाजिक जीवन में सफलता, लोक-व्यवहार में कुशलता तथा सार्वजनिक क्षेत्रों में निपुणता और जनमत-निर्माण के गुप्त मनोवैज्ञानिक रहस्य]

लेखक :—

डॉ. रामचरण महेन्द्र एम. ए., पी-एच-डी.,

प्रिंसिपल, गवर्नमेंट कालेज,

सरदारशहर (राजस्थान)

होशियारपुर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान

१९५८

यह पुस्तक आपके लिए क्या करेगी ?

क्या आप दूसरों के सामने कार्य करते, बातें करते, अपने मनोभाव प्रकट करते या भाषण देते हुए झिझक या लज्जा का अनुभव करते हैं ? नये वातावरण, नये साथियों या दूसरों के सम्पर्क में आते हुए क्या आपके मन में घबराहट, अशान्ति या शंकाएं आती हैं ?

यह पुस्तक आप को सार्वजनिक जीवन की ऐसी अनेक उलझनों से मुक्त कर सकेगी। नए उत्साह से आप अग्रसर हो सकेंगे।

क्या आप दूसरों से अलग-अलग रहते हैं ? सभा-सोसाइटी या मित्र-मंडली में दबे-दबे से रहते हैं ? बोलते हुए झेंपते रहते हैं ? आपका स्वभाव अपने समाज और साथियों से पृथक् रहने का बन गया है ?

यह पुस्तक आपकी हीनता दूर कर आपको बहिर्मुखी (Extrovert) बनने में सहायता देगी तथा आपके व्यक्तित्व की कमजोरियों को दूर कर देगी।

संसार में परावलम्बन ही दुःख और असफलता का कारण है। स्वावलम्बन ही शक्ति और सामर्थ्य है। जो व्यक्ति मानसिक दृष्टि से परावलम्बी रहता है, उसे छोटी-छोटी बातों में भी दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है।

यह पुस्तक आपको स्वावलम्बी बनाएगी और व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास करेगी।

यदि आप विपत्ति को पर्वत के समान कठोर समझते हैं, काल्पनिक विघ्न-बाधाओं से आक्रान्त हैं, तो आप अपनी गुप्त शक्तियों को विकसित न कर सकेंगे।

यह पुस्तक आप को व्यर्थ ही व्याकुल होने, चिड़चिड़ाने, झुंझलाने या दुर्बल होने से बचाएगी और काल्पनिक भयों को दूर कर देगी।

विश्वास कीजिए कि आपमें अमर्यादित शक्ति और अतुल सामर्थ्य भरे पड़े हैं। आत्मविश्वासी मनुष्यों ने ही अपने गुप्त सामर्थ्यों को अनुभव किया है।

इस पुस्तक को पढ़ कर आप अपने पुरुषार्थ का, "अहं ब्रह्मास्मि", (मैं ब्रह्म हूँ)—इस वेद-वाक्य का पूर्ण अनुभव कर सकेंगे।

और यदि आप यह सब अपने जीवन में उतार सकते हैं, तो *'दुनिया आप की है'*।

निश्चय जानिए यह पुस्तक आपके लिए लिखी गई है। इसमें आपको अपनी सब समस्याओं का निदान और सब शंकाओं का समाधान मिल जायगा। यदि इस पुस्तक का ज्ञान और उसके अनुसार व्यवहार आपके पास है तो 'दुनिया आपकी है'।

यह पुस्तक आप को व्यर्थ ही व्याकुल होने, चिड़चिड़ाने, झुंझलाने या दुर्बल होने से बचाएगी और काल्पनिक भयों को दूर कर देगी।

विश्वास कीजिए कि आपमें अमर्यादित शक्ति और अतुल सामर्थ्य भरे पड़े हैं। आत्मविश्वासी मनुष्यों ने ही अपने गुप्त सामर्थ्यों को अनुभव किया है।

इस पुस्तक को पढ़ कर आप अपने पुरुषार्थ का, "अहं ब्रह्मास्मि", (मैं ब्रह्म हूँ)—इस वेद-वाक्य का पूर्ण अनुभव कर सकेंगे।

और यदि आप यह सब अपने जीवन में उतार सकते हैं, तो 'दुनिया आप की है'।

निश्चय जानिए यह पुस्तक आपके लिए लिखी गई है। इसमें आपको अपनी सब समस्याओं का निदान और सब शंकाओं का समाधान मिल जायगा। यदि इस पुस्तक का ज्ञान और उसके अनुसार व्यवहार आपके पास है तो 'दुनिया आपकी है'।

यह दुनिया तुम्हारी है !

आधुनिक सामाजिक क्षेत्रों में व्यावहारिक मनोविज्ञान का विशेष महत्त्व है। सार्वजनिक सम्बन्धों, लोकव्यवहार, व्यापार, अध्यापन, समाज-सेवा अथवा नेतृत्व के किसी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए नवयुवकों को आधुनिक व्यावहारिक मनोविज्ञान के नियमों से परिचित होना चाहिए। व्यावहारिक मनोविज्ञान के नवीन रहस्यों से परिचित तथा सामाजिक जीवन में उनके अनुसार कार्य करने वाला व्यापारी, वकील, अध्यापक, विद्यार्थी, समाजसेवक, या नेता दीर्घकाल तक जनता का प्रियपात्र बना रहता है। वह अपनी व्यवहार-कुशलता से अपने सम्पर्क में आने वाले सभी प्रकार की रुचि, आदतों या ढग के व्यक्तियों को प्रभावित कर अपने आकर्षक व्यक्तित्व का गुप्त चुम्बकीय प्रभाव डाल सकता है। उसका व्यक्तित्व एक गुप्त तेज अथवा मानवीय विद्युत् के प्रकाश से प्रदीप्त हो उठता है। आज हम सार्वजनिक क्षेत्रों में जिन व्यक्तियों में चमत्कार अथवा सफलता देखते हैं, वह उनकी गुप्त वैयक्तिक शक्तियों के विकास के कारण होता है।

प्रस्तुत पुस्तक में सार्वजनिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान के प्रयोग से चुम्बकीय व्यक्तित्व प्राप्ति के गुप्त रहस्यों पर प्रकाश डाला गया है। पाश्चात्य देशों में व्यवहार-कुशलता पर अनेक मनोवैज्ञानिक ग्रन्थ हैं, पर हिन्दी में इस प्रकार के आत्मसुधार-विषयक ग्रन्थ बहुत कम हैं। अंग्रेजी में इस विषय पर नए-नए ग्रन्थ प्रकाशित हो रहे हैं। इस पुस्तक के मनोवैज्ञानिक लेखों का आधार पाश्चात्य व्यावहारिक मनोविज्ञान है। जिन पाठकों को अंग्रेजी का ज्ञान नहीं है, या जिन्हें अंग्रेजी के ग्रन्थ सहज उपलब्ध नहीं हैं, उन्हें आकर्षक

व्यक्तित्व के निर्माण के लिए यह ग्रन्थ विशेष उपयोगी रहेगा। एक ही स्थान पर उन्हें पाश्चात्य व्यावहारिक मनोविज्ञान का नवनीत उपलब्ध हो रहा है। सामाजिक जीवन में यश, प्रतिष्ठा एवं नेतृत्व प्राप्त करने के यह पुस्तक विशेष उपयोगी है।

इस पुस्तक के लेखन में श्रद्धास्पद आचार्य विश्वबन्धु जी के जीवन तथा आदर्शों से मुझे विशेष प्रेरणा मिली है। उसके लिए मैं आचार्य जी का चिर ऋणी हूँ। विद्वद्वर श्री देवदत्त जी शास्त्री, विद्याभास्कर ने पाण्डुलिपि के संशोधन में विशेष श्रम किया है। इन्हीं दोनों महानुभावों की कृपा से यह पुस्तक इतने सुन्दर रूप में प्रकाशित हो रही है।

गवर्नमेन्ट कालेज,
सरदारशहर (राजस्थान)
एप्रिल १९५८

—रामचरण महेन्द्र
एम. ए., पीएच. डी.

विषय सूची

दुनिया तुम्हारी है !

आपकी आकर्षण शक्ति के गुप्त केन्द्र

आप के शरीर मन और आत्मा में अद्भुत शक्तियों को भरा गया है। आध्यात्मिक महापुरुष इन शक्तियों को आत्म-तेज के नाम से पुकारते हैं और मनोविज्ञानवेत्ता इन्हें मानवीय विद्युत् (Personal Magnetism) कहते हैं। जिस प्रकार पावर हाउस से सूक्ष्म विद्युत् की तरंगें चारों ओर निकलती रहती हैं, उसी प्रकार आपके मन, शरीर और आत्मा से आत्म-तेज निकला करता है, जो आसपास के व्यक्तियों और सामाजिक वातावरण को प्रभावित करता रहता है। एक विद्वान् ने लिखा है :—

"मनुष्य के शरीर में निरन्तर एक प्रकार की बिजली का प्रवाह जारी रहता है। शरीर और मन के दैनिक कार्य संचालन होने के अतिरिक्त यह मानुषिक विद्युत्-प्रवाह और भी कामों में प्रयुक्त हो सकता है। इसकी सहायता से कठिन कार्य भी पूर्ण किए जा सकते हैं, क्योंकि यह एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करके उसे प्रभावित करती और इच्छानुवर्ती बनाती है। विज्ञान द्वारा इस शक्ति का अनेक प्रकार से परीक्षण हो रहा है। पृथक्-पृथक् मनुष्यों के शरीरों में तो अलग-अलग आकृतियों के तेजोबल देखे जाते हैं, उसके आधार पर कई योगाभ्यासी असली मनुष्य को बिना देखे उसके निकटवर्ती वातावरण का अनुभव करके ही उसके सम्बन्ध में बहुत कुछ बातें जान लेते हैं। विज्ञान के अनुसार

साइकोमेटरी नामक एक स्वतन्त्र विद्या का अविष्कार हुआ है, जिसके अनुसार नेत्र मूंदकर दिव्य चक्षुओं के बल से बहुत सी गुप्त और प्रकट बातें बतलाई जाती हैं। कई मनुष्यों में यह आत्मतेज इतना अधिक होता है कि उनके ऊपर तलवारें और बन्दूकें कुंठित हो जाती हैं। यह तेज सफेदी या चमक नहीं है, वरन् प्रचण्ड मानवीय विद्युत्-धारा है। शरीर की सारी गतियाँ उस गुप्त विद्युत् के द्वारा हो रही हैं, जो कि मन की महान् विद्युत् का एक अंश है।"

जो व्यक्ति इस गुप्त मानवीय विद्युत्-बल के द्वारा संसार और समाज को चमत्कृत करते हैं, उनमें कुछ विशेषताएँ भी पाई जाती हैं। यहाँ संक्षेप में उन पर विचार किया जायगा।

१. निश्चित उद्देश्य—महान् व्यक्तियों के जीवन का एक सुनिश्चित तथा सुकल्पित ध्येय या उद्देश्य होता है। अपने गुण धर्म, स्वभाव और योग्यता के अनुकूल इस उद्देश्य का निर्माण किया जाता है। वास्तव में निश्चय बल एक बड़ी भारी शक्ति है। प्रारब्ध बनाने वाला यह निश्चित उद्देश्य और उसके लिए आग्रह-युक्त सतत प्रयत्न ही है। दृढ़ निश्चय वाले सामर्थ्यवान् मनुष्य के लिए संसार में कोई बात भी असम्भव नहीं है। जो मनुष्य ढिलमिल स्वभाव के होते हैं, वे ही विघ्न-बाधाओं से भयभीत होते हैं, किन्तु दृढ़-संकल्प-बल वाले पुरुष के लिए संसार में कुछ भी असम्भव नहीं है। "देहं पातयामि वा कार्यं साधयामि वा", यह दृढ़ संकल्प बल-सम्पन्न पुरुष का सूत्र होता है। उत्साह-पूर्ण प्रयत्न से वह इच्छानुकूल संकल्प-बल को बढ़ाता रहता है।

आप यह निर्णय कीजिए कि किस क्षेत्र में पूर्ण सफलता

प्राप्त करने निकले हैं? व्यापार, नौकरी, साहित्य-सृजन, चिकित्सा, विज्ञान, अथवा सार्वजनिक या राजनैतिक जीवन—आपका क्षेत्र कौन सा है? आपकी महत्त्वाकांक्षाएँ क्या-क्या हैं? अपने सब निरुद्देश्य या यत्र तत्र घूमते हुए विचारों को एक उद्देश्य पर केन्द्रीभूत कर लीजिए। यह काम शांत चित्त और पूर्ण विवेक द्वारा होगा, पर संतुलित और केन्द्रित उद्देश्य विचारधारा के बिना मनुष्य वायु में उड़ते हुए पंख की तरह है। क्रोध, बेचैनी, उत्तेजना, चिन्ता आदि को दूर कर चित्त-वृत्ति को शांत बनाइये। व्यर्थ के विरोधी विचारों या विषम परिस्थिति की भावना को रोक दीजिए। निकम्मे विचारों को रोकना और मस्तिष्क को शान्त करना—ये दो प्रारम्भिक क्रियाएँ हैं जिनके द्वारा उद्देश्य का निर्णय हो सकेगा। मन को शान्त कर अपनी शक्तियों और योग्यताओं का सच्चा निर्णय कीजिए, मनोवांछित उद्देश्य को विवेक और सामर्थ्य की कसौटी पर परखिये। जो उद्देश्य आप निर्णय कर रहे हैं, उसे पूर्ण करने के साधन शक्ति और धन इत्यादि आपके पास हैं, या नहीं? इस प्रकार अपने इच्छित उद्देश्य या जैसी सफलता प्राप्त करनी है, उस पर शांति-पूर्वक विचार कर निर्णय कीजिए। "अर्थिनः अर्थं इत् वै।" (ऋग्. १,१०५,२) जो आकांक्षा करता है, उसे वह प्राप्त होती है। तीव्र इच्छा और उद्देश्य के बिना कोई महत्त्वपूर्ण वस्तु प्राप्त नहीं होती।

२. अटूट विश्वास :—आत्म-विश्वास उन्नति की आधार शिला है। आत्म-बल में ही विजय और सफलता की सच्ची कुंजी है। जहाँ अपनी शक्ति और सामर्थ्य में पूर्ण अखण्ड विश्वास है, वहाँ विपत्ति, दरिद्रता, अभाव, रोग, निराशा या

असफलता इत्यादि बाधाएँ उपस्थित नहीं होतीं। जहां आत्म-विश्वास है, वहीं पर सफलता, समृद्धि और आरोग्य है। यही वह दिव्य गुण है, जिससे मनुष्य का आन्तरिक गुप्त सामर्थ्य प्रकट होता है। मनुष्य के प्रयत्न और आत्म-विश्वास के ही अद्भुत चमत्कार आप सर्वत्र देख रहे हैं। प्रयत्न द्वारा आत्म-बल उत्पन्न करते रहिये।

विश्वास कीजिए कि वर्तमान निम्न स्थिति को बदल डालने की शक्ति आप में विद्यमान है। आप अपनी गिरी या पिछड़ी हुई अवस्था में कदापि न रहेंगे, वरन् प्रयत्न करेंगे, बड़े से बड़ा उद्योग करेंगे, निरंतर परिश्रम करेंगे और आगे बढ़ेंगे। जिन योजनाओं को आप ने सोचा है, जो-जो योजनाएँ या ध्येय बनाये हैं, वे अपनी शक्तियों के विकास द्वारा अवश्य प्राप्त करेंगे।

विश्वास कीजिए कि जो महत्ता, सफलता, उत्तमता, प्रसिद्धि या समृद्धि अन्य व्यक्तियों ने प्राप्त की है, वह इस जीवन में आप भी अवश्य प्राप्त करेंगे। आप में भी वे सब शक्तियाँ प्रचुरता से भरी पड़ी हैं, वे उत्तोत्तम तत्त्व विद्यमान हैं, जिनसे इस संसार में मनुष्य अपनी उन्नति करता है। आप निरन्तर उद्योग करते रहेंगे; न जाने कब, किस समय, किस अवसर पर, किस परिस्थिति में आपकी उन्नति का गुप्त द्वार खुल जाय और आप सफलताके उच्चतम शिखर पर पहुँच जायँ।

क्या आपको स्मरण है कि अमेरिका के सुप्रसिद्ध विद्युत्, टेलीफोन, ग्रामोफोन के आविष्कारक एडिसन के पास न रहने के लिए मकान था, न पर्याप्त अन्न और वस्त्र। वह न्यूयार्क के एक बगीचे में अपना समय काटता था। उसमें उन्नति के

विचारों का तीव्र प्रवाह आया, निश्चित ध्येय बना और वह उन्नति करने को कटिबद्ध हो गया। एक दिन बागीचे में लेटे-लेटे उसके गुप्त मानसिक प्रदेश से एक नवीन यन्त्र के आविष्कार की योजना निकली, और बाद में उसी यंत्र के निर्माण से उसे बीस हजार रुपये प्राप्त हुए।

विश्वास कीजिए कि आप भी अपनी गुप्त शक्तियों को विकसित करेंगे। अब अज्ञान में आलस्य में या व्यर्थ के कार्यों में नहीं पड़े रहेंगे, वरन् अपने शरीर, मन, आत्मा की शक्तियों को खोलेंगे। अन्य व्यक्ति विरोधी संकेत देंगे, फिर भी उत्साह से अपने लक्ष्य में लगे रहेंगे। क्या आप को नैपोलियन के आत्म-विश्वास की यह कहानी याद है—

नैपोलियन अपनी सेना को लेकर दुर्ग से बाहर निकला। सामने गगनचुम्बी एल्पस पर्वत ऊँचा सिर किए मार्ग रोके खड़ा था, मानों घोषणा कर रहा हो, "आज तक कोई मुझे पार नहीं कर सका है। केवल आकाश ही मेरे ऊपर है। किसी हाड-मांस के मनुष्य में क्या ताकत कि मेरे सिर पर पग रख सके।"

नैपोलियन ने अपनी सेना को आज्ञा दी, "ऊपर चढ़ जाओ।"

एक वृद्धा अपनी झोंपड़ी के आंगन में बैठी लकड़ी काट रही थी। नैपोलियन की आज्ञा सुन हँसी और कहने लगी, "व्यर्थ क्यों जान गँवाते हो। तुम्हारे जैसे सैकड़ों व्यक्ति यहाँ आए और मुँह की खा कर वापस चले गये। उनकी सेनाएँ और उनके घोड़े मेरे देखते-देखते विनाश के गर्भ में समा गए। उनकी अस्थियाँ तक आज शेष नहीं मिलतीं।" वृद्धा समझती

संसार के अन्य व्यक्तियों ने किए हैं, अटूट विश्वास के बल पर आप भी कर सकते हैं।

विश्वास कीजिए, परमात्मा के इस लीलामय जगत में कोई कार्य अन्धाधुन्ध और अनियंत्रित नहीं होता। बिना ठोस कार्य तथा योजना के बिना बलिदान और परिश्रम के महान् होना सम्भव नहीं है। परिश्रम का ही फल मिलता है। जो मनुष्य जितना परिश्रम, उद्योग, कार्य और बलिदान करता है, जिसने अपनी मानसिक शारीरिक और आत्मिक सामर्थ्य को जितना बढ़ाया है, उसमें उतना ही आकर्षक बल विद्यमान है।

विश्वास कीजिए कि शक्ति का केन्द्र आप ही हैं, सफलता, प्रभाव, आनन्द और सुख-दुःख की जड़ें स्वयं आपके गुप्त मन में ही विद्यमान हैं; सफलता या असफलता का निर्णय करने वाली आपके अन्तःकरण की ही स्थिति है। आपके मानसिक संग्रहालय में से पश्चाताप, निराशा, असफलता, विपत्ति, निर्बलता की कुत्सित भावनाओं को तिलांजलि दे दीजिए। उनके स्थान पर दृढ़ता, आशा, सामर्थ्य, प्रसन्नता, अनुकूलता, सौभाग्य, समृद्धि इत्यादि सद्भावनाओं को मानसिक चित्रपटी पर सजाएँ। इसी पूंजी से आप व्यावहारिक सांसारिक जीवन में प्रविष्ट हूजिए। स्मरण रखिए—

सद्यो वृद्धः अजायथाः इन्द्र ज्येष्ठाय (ऋग्वेद १,५,६)

हे इन्द्र, बड़ा बनने की भावना से तू झटपट बड़ा बन जाता है।

मनुष्य जीवन श्रेष्ठ और बड़ा बनने के लिए है। जीवन दिन काटने के लिए नहीं, कुछ महान् कार्य करने के लिए है।

"उच्च तिष्ठ महते सौभगाय" (अथर्ववेद २,६,२)

सौभाग्य के लिए ऊँचा उठ।

श्रेष्ठ बनना ही महान् सौभाग्य है। जो महापुरुष बनने के लिए प्रयत्नशील है, वही धन्य है।

"आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम" (अथर्ववेद २,११,४)

हे पुरुषो! बराबर वालों से आगे बढ़ो। श्रेष्ठों तक पहुँचो। मूर्खों से अपनी तुलना न करो। बुद्धिमानों का आदर्श ग्रहण करो। सदा उन्नति करते रहो। वही आगे बढ़ता है, जो प्रयत्नशील है।

"रुहो रुरोह रोहितः" (अथर्व० १३,३,२६)

रोहित चढ़ाइयां चढ़ा।

भाग्य भरोसे बैठे रहने वाले आलसी सदा दीन-हीन ही रहेंगे।

'सुकर्माणः सुरुचः गव्यां परिषदं नो अक्रन् (अथर्व० १८,३,२२)

उत्तम कर्मों वाले, देदीप्यमान पुरुषों ने हमारे लिए इस परिषद् को बनाया।

स्मरण रखिए, यश उसे मिलता है, जो सत्कर्म करता है। कीर्ति वही स्थायी है, जो सत्कार्यों द्वारा प्राप्त की जाती है।

"उदशेम तवावसा मूर्धानं राय आरभे" (ऋग्० १,२४,५)

हे भगवान्! तेरी रक्षा से हम ऐश्वर्य के शिखर पर चढ़ने के लिए समर्थ हों।

ऐश्वर्य को प्राप्त कर बड़े काम करो। ओछे विचार और ओछे काम करने वाले ओछे ही रह जाते हैं। "अहमुत्तरोऽसानि" (अथर्व० ३,५,५) साधारण लोगों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ बनो।

समस्त मानसिक शक्तियों को अपने लक्ष्य, उद्देश्य सिद्धि व प्रधान कार्य मात्र पर ही एकाग्र करते हैं। अन्य विचारों को अपने मस्तिष्क से बिल्कुल निकाल डालते हैं। अतः आप भी अपने विश्रृङ्खलित विचारों को एक लक्ष्य पर केन्द्रित कीजिए।

इच्छा, ज्ञान और क्रिया—इन तीन तत्त्वों को केन्द्रित कर आप प्रचण्ड शक्ति उत्पन्न कर सकते हैं। जो-जो क्रियाएँ हम दैनिक जीवन एवं व्यवहार में करते हैं, उन सब से मानव-शक्तियों की पूर्णता प्रकट होती है। मन में शक्ति, बल और पौरुष के विचार ही दृढ़ कीजिए। एकाग्रता की सिद्धि सतत अभ्यास द्वारा हो सकती है। एक विषय लेकर थोड़ी देर तक उसी पर विचार केन्द्रित किया कीजिए और सब बातों को मन से निकाल दिया कीजिए। मन इधर-उधर भागे तो भी उसे पुनः पुनः दृढ़ता से खींच कर उसी में लगाये रहिए। ध्यान करने का अभ्यास ही एकाग्रता की सिद्धि का उपाय है। महर्षि पतंजलि के अनुसार—"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्" ध्येय वस्तु के साथ मन की एकता होना ही एकाग्रता का रहस्य है। इसका अभ्यास प्रारम्भ कीजिए।

४. बुद्धि और अन्तर्दृष्टि का विकास :—महान् व्यक्तित्व वालों के तीन गुण ये हैं—१. वे यह जानते हैं कि उन्हें क्या करना है? २. अपनी कुशाग्र बुद्धि और अन्तर्दृष्टि से वे यह अनुमान कर लेते हैं कि उन्हें अपने उद्देश्य और लक्ष्य की पूर्ति किस प्रकार करनी चाहिए और तीसरे (३) उनमें इच्छा शक्ति की इतनी दृढ़ता होती है कि उनकी मानसिक, शारीरिक तथा अन्य समस्त शक्तियां एक ही स्थान पर केन्द्रित रहती हैं।

बुद्धि और अन्तर्दृष्टि वैसे तो स्वाभाविक प्रकृतिदत्त गुण हैं,

पर प्रयत्न, प्रयास और सोच समझ कर कार्य करने, सत्संग में रहने, बात को दूर तक समझने की कोशिश करने से ये बढ़ते हैं। यदि हम अपने विषय, क्षेत्र अथवा कार्य में सुरुचि बढ़ाएँ तो हमारी बुद्धि उसी ओर लग जाती है, उसी ओर बुद्धि का विकास हो जाता है। एक विशेष दिशा में बढ़ी हुई प्रतिभा अन्त में मनुष्य की अन्तर्दृष्टि को बढ़ाने लगती है। वह आगे की बात सोचने लगता है। प्रारम्भ में मनुष्य थोड़ा-थोड़ा ज्ञान प्राप्त करता है, फिर यही पूर्व संचित ज्ञान उसे भविष्य द्रष्टा बना देता है। उसके मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तुओं को ऐसा सूक्ष्म कर देता है कि वे आने वाली आपत्ति या घटनाओं के मोड़ को स्वतः ठीक-ठीक पढ़ने लगते हैं।

गोर्डन बेनेट एक बार नार्वे की नाव में यात्रा कर रहे थे। एक स्थानीय मल्लाह को उन्होंने नौका चलाने के लिए ले लिया था। एक दिन बेनेट साहब ने उससे कहा, "मैं समझता हूँ तुम जल के इस भाग के अंदर छिपी हुई प्रत्येक चट्टान से परिचित होगे?" मल्लाह प्रशंसा के इस वाक्य से तनिक भी न मुस्कराया, वरन् बोला, "नहीं, ऐसा तो नहीं है, लेकिन मैं यह भली भाँति जानता हूँ कि जल के किस हिस्से में छिपी हुई चट्टानें नहीं हैं।" अन्तर्दृष्टि ने उसे नई सूझ-बूझ दे दी थी।

एक कुशल नेता, कुशल व्यापारी, चतुर मालिक इसी प्रकार की विशेष बुद्धि और अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न होता है। पुराना अनुभव उसकी अन्तर्दृष्टि को विकसित करता है। वह संसार की अन्य वस्तुओं से अधिक अपने पेशे या क्षेत्र के विषय में पूरी और खरी जानकारी प्राप्त करता है। वह अपने काम के योग्य ज्ञान को शेष ज्ञान में से चुन लेता है, उसका उचित

वर्गीकरण कर लेता है; उस ज्ञान का कहाँ उपयोग होना चाहिए, यह बात अपने अनुभव से प्राप्त करता है; अपने क्षेत्र सम्बन्धी अनुभव को निरन्तर बढ़ाता रहता है।

अपने व्यक्तित्व में अन्तर्दृष्टि विकसित कीजिए। किस कार्य का आगे क्या परिणाम हो सकता है, यह सोच समझ कर कार्य कीजिए। आगा-पीछा सोच कर कार्य करने और सदा बदलती हुई परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए बुद्धि का उपयोग करने से अन्तर्दृष्टि का विकास किया जा सकता है। विकसित मनः-शक्तियों के फल-स्वरूप हमें अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है।

५. प्रतिभा और मौलिकता :—सार्वजनिक क्षेत्र या साहित्य के क्षेत्रों में नेतृत्व करने के लिए आपको अपनी प्रतिभा और मौलिकता की वृद्धि करनी चाहिए। ये वे गुण हैं जिनसे आप साधारण की अपेक्षा उच्चतर बनते हैं। जड़ की बातें खोज निकालने वाले प्रतिभावान् के पीछे-पीछे संसार स्वतः चलने लगता है। संसार की विभूतियों में मौलिक चिन्तन पाया जाता है।

आप में भी किसी न किसी प्रकार की निजी प्रतिभा, अपनी मौलिकता, किसी कार्य को श्रेष्ठतम रीति से करने की योग्यता विद्यमान है। सच मानिये, यह आपकी सम्पत्ति है। इसी दिशा में आपको आगे बढ़कर अपने व्यक्तित्व का विकास करना चाहिए। प्रतिभा विकसित करने के कुछ अनुभूत उपाय भी हैं :

१. अधिकाधिक ज्ञानसंग्रह। २. विषय को गहराई से सोचने की आदत ३. अपनी कल्पना का सही प्रयोग ४. बातों

का अन्तिम फल सम्भवतः क्या हो सकता है, यह अनुमान लगाने की आदत ५. दूसरों, विशेषतः अपनी आयु से बड़े व्यक्तियों के अनुभवों से लाभ उठाने की मनोवृत्ति, ६. घटनाओं, व्यक्तियों और परिस्थितियों को अच्छी तरह देखना, उन्हें स्मरण रखना और वैसी ही परिस्थिति आने से पूर्व स्मृति से काम लेना ७. पूर्व संग्रहीत अनुभवों को प्रकट करने के नए-नए तरीके सोचना ८. अपने मनोमय कोषों तथा गुप्त मन का विकास करते रहना।

कुशल नेता को इन सभी उपायों से अपने सार्वजनिक व्यक्तित्व का विकास करना चाहिए।

अपना बहुमुखी ज्ञान निरन्तर बढ़ाते रहिए। नई-नई पुस्तकें, समाचार-पत्र, भिन्न-भिन्न भाषाओं के ग्रन्थ-रत्नों का अध्ययन करते रहिए। दूसरों की विचार-धाराओं से अपने विचारों का मिलान कर अपनी गलतियों को ठीक करते चलिए। महान् विचारकों के चिन्तन तथा अनुभव अन्ततः एक ही निष्कर्ष पर आ मिलते हैं। अतः स्वाध्याय द्वारा आप वहां तक पहुँचने का प्रयत्न कीजिए, जहाँ तक मनुष्य अभी तक अन्तिम सीमा पर पहुँच चुके हैं। फिर पुराने अनुभवों तथा ज्ञान के सहारे नए-नए योग (Combinations) बनाइए। पुराने ज्ञान के नए-नए योग ही जगत् में मौलिकता कहे जाते हैं और संसार को चकित कर देते हैं।

वास्तव में संसार में कुछ भी नया नहीं है। जो कुछ है, वह पहले से ही मौजूद है। केवल अपनी मौलिक सूझ-बूझ के द्वारा नई कल्पना के योग से नए-नए मानसिक चित्रों का निर्माण होता है। कल्पना जगत् में जिन नए मानसिक चित्रों का निर्माण

होता है, वे पुराने अर्जित ज्ञान के नए-नए योगमात्र ही तो हैं। इन नए अद्भुत और अभूतपूर्व मानसिक चित्रों पर ही प्रतिभा का आधार है। वह नए भाव या वस्तुओं के नए निर्माण में है। आप भी ऐसा प्रयत्न कीजिए कि चीज चाहे पुरानी ही हो, वह इस प्रकार प्रकट की जाय कि नई प्रतीत हो।

अपने संचित अनुभवों और ज्ञान को मौलिक ढङ्ग से प्रकट करना प्रारम्भ कीजिए। आप जो कुछ करें, लिखें, पढ़ें या व्याख्यान दें, उसमें अपने व्यक्तित्व की छाप अवश्य लगा दें, अर्थात् उसे अपने निजी मौलिक तरीके से ही प्रकट करें। सावधान, दूसरों का अनुकरण न करें। अनुकरण व्यक्तित्व की मृत्यु है। ऐसा व्यक्ति अपनी महत्ता को जीवन भर नहीं खोज पाता। आप अपने इस गुण को बढ़ाने के लिए यह आत्म-संकेत (Auto-suggestion) अपने गुप्त मन को दिया करें—

"मैं अद्भुत प्रतिभा का स्वामी हूँ। ज्ञान का समुद्र मेरे अन्दर तरंगित हो रहा है। मैं अपने अन्तःस्थित ज्ञान, भीतरी प्रकाश और बुद्धि का सदुपयोग कर अपनी प्रतिभा को प्रकट कर रहा हूँ। मैं नई बात सोचता हूँ, नए पहलुओं को ही देखता और प्रकट करता हूँ। प्रत्येक वस्तु को देखने का मेरा अपना पृथक् ही दृष्टिकोण है। मेरे व्यक्तित्व का मुख्य गुण मौलिकता है। मेरी विचारधारा में नवीनता है। मेरी बुद्धि नई-नई दिशाओं में दौड़ती है। मैं अपने मस्तिष्क के सम्पूर्ण भावों का उपयोग करता हूँ। शुभ-चिन्तन और शुभ कार्यों में लगे रहने के कारण मेरी स्मरण-शक्ति, कल्पना-शक्ति, धारणा-शक्तियों का विकास हो रहा है। मैं विचारों में दूसरों का सहारा नहीं लेता, स्वयं मौलिकरूप से सोचता हूँ। स्व कार्य

करता हूँ। मेरा प्रत्येक कार्य उत्कृष्ट होता है। मैं विचार रूपी यन्त्र का ठीक उपयोग करना जानता हूँ।"

इन आत्म-संकेतों का गुप्त प्रभाव अपने गुप्त मन पर पड़ेगा। जितनी निष्ठा और आत्म-विश्वास से आप इन संकेतों में विश्वास करेंगे, उसी के अनुसार आपकी सोई पड़ी मानसिक शक्तियों का विकास होगा। नवीनता का जन्म कल्पना के नए-नए उपयोग से होता है। नई बातों, नई योजनाओं, नई मशीनों, आविष्कारों का जन्म होता है। हमारा नया पुराना अनुभव, संचित ज्ञान, बुद्धि और विचार-प्रवाह नई वस्तुओं की सृष्टि करता है।

सच मानिए, आपका गुप्त मन मौलिकता और अन्तर्ज्ञान का अक्षय भण्डार है। उसमें से जितना निकालो, नई-नई विचार-धाराएँ और नया ज्ञान ही निकलता है। आपके ज्ञान का कोष अक्षय है। उसके अनेक स्तर हैं। नित नए स्तर खुलते रहते हैं। न जाने किस समय, किस अवसर पर और किन परिस्थितियों में आपके ज्ञान का नया स्रोत खुल पड़े! किस क्षण आपको अपनी महत्ता, आत्मसत्ता का ज्ञान हो जाय? मानसिक क्षेत्र तो बड़ा अद्भुत है। लगातार मनुष्य को अपनी खोज करते रहना चाहिए और गुप्त शक्तियों को प्रकट करते रहना चाहिए। गुप्त खजाने पर आपका अधिकार है। नए मानसिक उद्योग से ही प्रतिभा का जन्म होता है।

६. पुरुषार्थ—आप पुरुष हैं। आप में जो अपना निजी गुण है उसे पुरुषार्थ के नाम से पुकारा जाता है। संसार में सब से अधिक गुण, समृद्धि और शक्ति लेकर मनुष्य अवतरित हुआ है। वह ईश्वर का पुत्र है। शारीरिक शक्ति से कुछ निर्बल

होते हुए भी ईश्वर ने उसमें गुप्त आश्चर्यजनक शक्तियाँ प्रदान की हैं, जिनके बल पर वह हिंस्र पशुओं पर भी राज्य करता है, कठिन कार्यों से भी भयभीत नहीं होता और आपदा तथा कठिनाइयों में भी वेग से आगे बढ़ता है।

निश्चय जानिए, आप में भी यह पुरुषार्थ कूट-कूट कर भरा हुआ है। आप अतुल साहसी व्यक्ति हैं। आपके पराक्रम का वार-पार नहीं है। आपकी सामर्थ्य शक्ति ऐसी है कि आप अकेले ही समय के प्रवाह और गति को मोड़ सकते हैं। धन, दौलत, ऐश्वर्य, मान और सम्पदाएँ सब अपने पुरुषार्थ से प्राप्त कर सकते हैं।

चूंकि आप पुरुषार्थी हैं, आलस्य आपके पास नहीं फटक सकता, आप व्यर्थ ही अपने कामों को आलस्य में नहीं छोड़ सकते, आलस्य को आप बहुत बुरा समझते हैं। यह उचित भी है। एक दिन आलसी इस कारण काम नहीं करता कि आज सर्दी अधिक है, और दूसरे दिन गर्मी की अधिकता के कारण। किसी दिन वह कहता है—शाम हो गई, अब कौन काम करे? और किसी दिन बहुत सवेरा होने के कारण वह काम टल जाता है।

अपने गुप्त मन में से पुरुषार्थ की शक्ति पाइए। वह आपके व्यक्तित्व में भरा हुआ है। कायरता, भीरुता को निकाल फेंकिए। साहस और शौर्य धारण कीजिए। जब आप साहस से प्रतिकूलताओं का सामना करेंगे, तो वे स्वतः भाग खड़ी होंगी। सफलता आपको अवश्य मिलेगी। स्वामी कृष्णानन्द के ये शब्द स्मरण रखिए, "सफलता न भविष्य के गर्भ में है, न अगम्य है। वह तुम्हारे निकट है। तुम्हारी पकड़ के भीतर

है। बस, उसे तुम्हारे लेने भर की देर है। सुअवसर आने वाला नहीं है। वह आ गया है। तुम सुसमय से ही तो गुजर रहे हो। संसार की सभी श्रेष्ठ वस्तुएँ, जीवन की सारी सफलताएँ तुम्हारे पास आई हुई हैं। जो तुमने प्राप्त कर लिया है, यदि उसका परिमाण तुम्हें मिल जाय, तो तुम कभी अपने को हीन न समझो, निराशा और शंका तुम्हारे हृदय से तिरोहित हो जायँ। आए हुए सुयोग का अभी उपयोग करो। इस अलभ्य (मानव जीवन) उपहार को लो और अपने को विकसित करो। अपने पुरुषार्थ में विश्वास रखना, अपनी आकांक्षा को ऊँचा रखना अच्छा है, पर इसके लिए अपनी शक्ति को तोलना और उसका उपयोग सीखना भी आवश्यक है। अपनी योग्यता का ठीक अनुमान तुम्हारी उन्नति में सहायक होगा, इसमें सन्देह नहीं। तुम उतने ही अधिक सफल होगे जितने दत्त-चित्तता, परिश्रमशीलता, धार्मिकता, उत्साह, निश्चय, दूर-दर्शिता, स्वातन्त्र्यप्रियता, धीरता, आत्म-संयम, सहानुभूति, बुद्धि, विवेक और सरलता विकसित करोगे। इस कार्य के लिए मुहूर्त निकलवाने की आवश्यकता नहीं है। यह कार्य तुम्हें अभी आरम्भ कर देना है।

उपर्युक्त दैवी गुणों को धारण करने पर निश्चय ही दुनिया तुम्हारी है। जो क्षेत्र तुमने चुना है, वह तुम्हारा है और सफलता समृद्धि तुम्हारी चेरी हैं। वेदों के ये अमूल्य वचन धारण करो—

'शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् पूषन्।' (ऋग्० १,४२,६)

हे इन्द्र सामर्थ्ययुक्त घरों को धन से पूर्ण करो, धन दो,

तेजस्वी बनाओ, उदर-पूर्ति कराओ। अर्थात् धार्मिक और सम्पन्न व्यक्तियों को ही जीवन-लाभ मिलता है।

'स्वर्यन्तो नापेक्षन्ते।' (यजुर्वेद १७, ६८)

तेजस्वी दूसरों का मुँह नहीं ताकते। जो आत्म-निर्भर हैं, उन्हीं को दूसरों की सहायता मिलती है।

'असमं क्षत्रं असमा मनीषा।' (ऋग्वेद १, ५४, ८)

अतुलित शौर्य और असीम बुद्धि धारण करो। जहां अदम्य साहस और दूर-दर्शिता है, वहां सब कुछ है।

'अग्ने शर्धं महते सौभगाय।' (अथर्ववेद ७, ७३, १०)

अर्थात् हे अग्ने बड़े सौभाग्य के लिए साहसयुक्त हो।

ऐश्वर्य उत्साही के पैर चूमता है। जो उत्साही और कर्म-निष्ठ है, उसकी उन्नति होती रहेगी। अतः 'इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः' (ऋग्० ९, ६३, ५) जीवन में स्फूर्ति, उत्साह और साहस बढ़ाते रहो तो दुनिया तुम्हारी है।

दूसरों पर प्रभाव डालने की कला

सीज़र एक बार समुद्री लुटेरों के हाथ क़ैद हो गया था। वे उसे मुक्त करने के लिए बहुत-सा धन मांगते थे। उक्त घटना का वर्णन करते हुए प्लूटार्क लिखता है कि इस विपन्न अवस्था में भी सीज़र उन पर इतना प्रभाव रखता था कि उनके नायक सा प्रतीत होता था। वह उन्हें डांटता, धमकाता तथा नरपतियों की भांति आज्ञाएं देता था कि देखो हम सोने जा रहे हैं, शोर न हो। सब सेवकों की भांति क़ैदी सीजर की प्रत्येक आज्ञा का पालन करते तथा किसी को उसकी आज्ञा के उल्लंघन का साहस न होता था।

*एक बार एथेन्स के किसी नवयुवक ने रईसों के सामने यह शर्त लगाई कि मैं इस नगर के प्रतिष्ठित और परम माननीय व्यक्ति हिप्पेनिकोस को सब के सामने बाज़ार में थप्पड़ लगा कर दिखलाऊँगा। केवल इतना ही नहीं, प्रत्युत कुछ दिन पश्चात् मैं उस वृद्ध को उसकी पुत्री का विवाह अपने साथ कर देने के लिये सहमत कर लूँगा। अगले दिन जब हिप्पेनिकोस बाज़ार में आया तो एलीसबियेडिज़ ने उसके समीप जाकर उसकी कनपट्टी पर दो थप्पड़ जमाए। बेचारा वृद्ध अस्त-व्यस्त हो गया और दुःखित होकर गृह को वापस लौटा। बाज़ार में एक भारी कोलाहल मचा तथा नगर के निवासियों ने उसे बहुत फटकारा तथा

---

* डेलकारनेगी कृत तथा श्री संतराम जी द्वारा अनूदित हिन्दी 'लोकव्यवहार' से

भला-बुरा कहा, किन्तु दूसरे दिन एलीसबियेडिज़ ने हिप्पेनिकोस के घर जाकर कहा कि आप मुझे निस्सन्देह दण्ड दीजिये। मेरी पीठ आपके कोड़ों के लिये प्रस्तुत है। मुझे क्षमा की भिक्षा दीजिये। इस प्रकार की अनेक बातें बना कर उसने उस वृद्ध के कोप को दूर किया और उससे क्षमा का दान पाकर उसकी प्रसन्नता प्राप्त कर ली। अपनी विविध प्रणालियों द्वारा वह वृद्ध को प्रभावित करता रहा और अन्त को वृद्ध उस युवक से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उससे अनुरोध किया कि वह उसकी कन्या से विवाह कर ले। एलसिबियेडिज़ ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। एलसिबियेडिज़ प्रभाव डालने की कला में पारंगत था।

नेपोलियन के विषय में भी एक ऐसी ही घटना प्रसिद्ध है। नेपोलियन अलवा से वापस आ रहा था। बोर्गेन की सेनाएँ उसकी ओर निशाना लगाए पंक्तिबद्ध तैयार खड़ी थीं। नेपोलियन पैदल ही सेना की ओर चल खड़ा हुआ। सेनापति ने नेपोलियन पर गोली चलाने का आदेश दिया। उस समय एक गोली उसका काम तमाम कर सकती थी, किन्तु नेपोलियन के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा जादू था कि उसकी ओर किसी को गोली चलाने की हिम्मत न हुई। गोली मारने के स्थान पर "हमारे सम्राट्" "हमारे नृपति" कहते हुए वे उसी ओर दौड़े और नतमस्तक खड़े हो गए।

प्रभावशाली व्यक्तियों के अनेक उदाहरण पुस्तकों में भरे पड़े हैं। प्रभावशाली व्यक्ति एक प्रकार का शक्तिशाली चुम्बक होता है, जिसमें अद्भुत प्रभाव-तरङ्गें उत्पन्न हुआ करती हैं। गौतम बुद्ध के तपस्या-स्थान के चारों ओर का वातावरण ऐसा

हो गया था कि परिधि के भीतर आने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर शुभ प्रभाव पड़ता था।

प्रभावशाली व्यक्ति के शब्दों में अपूर्व ओजस्विनी शक्ति भरी रहती है तथा उसका प्रभाव दूर तक पहुँचता है। प्रभावशाली वक्ता जो कहते हैं उसे लोग अनायास ही मान लेते हैं, जैसे बहुत से व्यक्ति हमें मिलते हैं जिनके सामने हम कुछ नहीं कर पाते। मदारी लोग अपने प्रभाव से अद्भुत चमत्कार कर दिखाते हैं और उनपर हम चट-पट विश्वास कर लेते हैं।

पशु-जगत् में कितने ही ऐसे विषैले जन्तु होते हैं, जो अन्य प्राणियों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया करते हैं और उन्हें खा डालते हैं। बहुतेरे चोर-डाकू पहरे के कुत्तों को ऐसा वश में कर लेते हैं कि वे चुप-चाप वहां से भाग निकलते हैं। यह सब प्रताप है प्रभाव डालने वाली गुप्त शक्तियों का।

प्रभाव के केन्द्र और उनका स्पष्टीकरण—

प्रभावशाली व्यक्ति की शक्तियां कई स्थानों पर केन्द्रीभूत रहती हैं उसके अंग-प्रत्यंगों में कुछ विशेषता होती है। यह अपनापन इस कारण होता है, कि वह अपने अंग-प्रत्यंगों को शस्त्र समझता है और प्रत्येक अवसर पर उनसे विशेष कार्य लेने को प्रस्तुत रहता है। यदि प्रभावशाली व्यक्ति के मुख-मण्डल को सावधानी से देखा जाय, तो उसमें कुछ नवीनता, स्फूर्ति एवं आत्मतेज प्रतीत होगा। उसके नेत्रों में अपूर्व चमक तथा निडरता होगी। प्रभावशाली व्यक्ति की शक्तियां निम्न रूप से अध्ययन की जा सकती हैं—

१. परिपुष्ट मन की शक्तियां :—मनुष्य के मन की शक्ति अत्यन्त प्रचण्ड है। प्रकृति की अन्य शक्तियों के सम्मुख

मनुष्य के मन की अद्भुत शक्तियां कई गुणा अधिक हैं। प्राचीन भारतीय ऋषियों ने मानव मन की गुप्त शक्तियों का अच्छी तरह अनुभव किया था तथा उनसे कार्य लेने की अपूर्व रीतियां निकाली थीं। मनुष्य की आत्मिक चेतना की शक्ति कई सौ अश्वों से अधिक मानी गई है।

जो व्यक्ति आपको प्रभावित करता है वह कोई जादू नहीं करता। उसका प्रभाव किसी बाह्य तत्व पर नहीं टिकता। यदि मन परिपुष्ट है तो काले, कुरूप, बेढंगे बेडौल शरीर वाले व्यक्ति का प्रभाव भी बड़ी प्रबलता से पड़ता है। सिख वीर रणजीतसिंह काने तथा कुरूप थे, किन्तु उनका प्रभाव बहुत तीव्र था। महात्मा तुकाराम, महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानन्द तथा रामकृष्ण परमहंस इत्यादि के चेहरों में आकर्षण केवल परिपुष्ट मन के कारण था। महात्मा सुकरात का बेढंगापन तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व सर्वविदित है।

मन की शक्तियों की अभिवृद्धि का सब से उत्तम साधन है—योगाभ्यास। जब तक मन वश में नहीं तब तक उसकी निस्सीम शक्तियों का विकास सम्भव नहीं है। योग द्वारा मन वश में आता है। मन को वश में कर लेना तथा उससे आवश्यकतानुसार कार्य लेना ही योगाभ्यास है। महामुनि पतंजलि के अनुसार चित्तवृत्ति-निरोध तथा आत्मसंयम ही योग है। योग की सिद्धि प्राप्त करने वाले को चंचल चित्त की वृत्तियों को एक स्थान पर एकाग्र रखने का अभ्यास करना पड़ता है। योगी शुद्ध आहार, उचित व्यायाम, निद्रा, विश्राम आदि साधनों द्वारा विषय-वासना, क्रोध, ईर्ष्या तथा बुराई के विचारों को मनः-क्षेत्र में प्रविष्ट नहीं होने देता। सदैव मन के कोने-कोने

में दया, पवित्रता, प्रेम, शांति, शक्ति, एकता और आनन्द के विचारों को मन में एकत्र करता है। एकाग्रता से गुप्त मनोवल जाग्रत होता है। इसी मनोवल से दूसरों के ऊपर प्रभाव की तरङ्गें फेंकी जाती हैं।

तमोगुण कुभावनाओं, कुकल्पनाओं तथा कुविचारों से मनोवल क्षीण होता है। जो व्यक्ति नित्यप्रति चिंता, क्लेश, स्वार्थ एवं ईर्ष्या की अग्नि में जला करता है, भविष्य के विषय में अभद्र मानसिक चित्रों का निर्माण करने का अभ्यासी है, वात-वात में विक्षुब्ध हो उठता है, वह क्योंकर मनोवल संग्रह कर सकेगा? वाह्य प्रकृति ऐसे मंदमति के सदा विपरीत रहती है। महात्मा गांधी ने लम्बे-लम्बे उपवासों द्वारा आत्मा का संस्कार किया, शुभ विचार द्वारा मन वलवान् किया तभी वे प्रभाव शाली व्यक्तित्व प्राप्त कर सके। डाँवाडोल मन वाला पुरुष प्रभावशाली नहीं हो सकता।

जिस उत्तम या निकृष्ट वस्तु पर आप मन को दृढता से केन्द्रीभूत करेंगे, देर तक सोचते-विचारते मानसिक चित्र निर्माण करते रहेंगे, जिस पर आपका मनोवल एकाग्र होकर पड़ेगा, मानसिक आकर्षण के नियमानुसार वह वस्तु जहां कहीं भी होगी, आपके पास आकर्षित होकर उपस्थित हो जायगी। जिस किसी का मानसिक चित्र वनाकर एकाग्रता तथा श्रद्धापूर्वक आप जो कुछ निर्देश करेंगे वह व्यक्ति वही मानेगा, वह वैसा ही करेगा जैसा दृढ विचार आप कर रहे हैं। आप उस एकाग्रता-पूर्वक निर्मित मानस चित्र (Mental image) से जो कुछ दृढता से आदेश करेंगे वैसा अवश्य होगा। आप इसी नियम द्वारा उस वस्तुविशेष को अपनी

और आकर्षित, प्रभावित सब कुछ कर सकेंगे। मन से प्रबल विद्युत्-तरंगें निकलेंगी, तथा वह व्यक्ति जैसा आप चाहेंगे, किए बिना न रह सकेगा। मन की दृढ तथा सबल भावना से सब को प्रभावित किया जा सकता है। आरोग्य, आत्मबल, सामर्थ्य, शौर्य, उत्साह और सर्वत्र शुभस्थिति का संकल्प ही सबल भावना है। इसी का चिंतन, मनन, तथा अभ्यास कीजिये और मानसिक आकर्षण के नियमानुसार आपकी मनोनीत वस्तु आप को प्राप्त हो जायगी।

२. व्यवस्थित एवं सुनिश्चित कल्पना—कल्पना को मन का नेत्र इसी लिए निर्देश किया गया है क्योंकि जब वह संकल्प द्वारा वश में कर ली जाती है, तो उसका उपयोग प्रभाव डालने के लिए हो सकता है। व्यवस्थाहीन कल्पना मन की शक्तियों को दुर्बल कर देती है। उच्छृङ्खल कल्पना के छिद्रों से मन की शक्ति का अपव्यय होता है। अतः प्रभाव डालने वाले की कल्पना का स्थिर एवम् अचंचल होना अनिवार्य है।

प्रतिदिन शान्त बैठ कर ध्यान में प्रविष्ट हो जाइये। प्रभावित करने वाले व्यक्ति का एक कल्पित चित्र मन में प्रस्तुत कीजिये। कुछ मिनट तक इस चित्र पर अपने विचार फेंकते रहिये। हिम्मत से अपनी विचारधाराओं को इसी केन्द्र पर एकाग्र रखिये। फिर ऐसी धारणा दृढ कीजिये कि आपका प्रभाव उक्त व्यक्ति पर अवश्य पड़ा है। प्रतिदिन ज्यों-ज्यों आप समझेंगे कि आपका प्रभाव पड़ रहा है, त्यों त्यों मस्तिष्क से सूक्ष्म कल्पना-तरंगें निकल कर उस व्यक्ति को प्रभावित करेंगी।

प्रभाव का एक नियम याद रखिए—'मनोवृत्ति से अनुकूल अथवा प्रतिकूल दशाएँ आकर्षित होती हैं। स्थिर मनोवृत्ति तथा एकाग्र कल्पना से इष्ट वस्तु का आकर्षण हो सकता है। शान्त संकल्प एवं सुस्थिर उद्देश्य वांछित वस्तुओं की प्राप्ति करा सकता है, किन्तु अपनी शक्तियों के प्रति अविश्वास, अनिश्चय तथा भय हमेशा पराजय का कारण बनता है। विचार एवं कल्पना में दृढता से धारण किये हुए पदार्थ ही यथार्थ हो सकते हैं।

कल्पना के सहारे अपना ऐसा स्वरूप प्रस्तुत कीजिए जो परम सामर्थ्यशाली हो, जिसमें दृढ विश्वास प्रयत्न एवम् अध्यवसाय हो। ऐसी कल्पना कीजिए कि आप स्वयं धैर्य, प्रतिभा, कौशल तथा अप्रतिहत शक्ति-पुञ्ज हैं। आप जिस को चाहते हैं अनायास ही वश में कर लेते हैं। आप ने अपने गुप्त सामर्थ्य को उत्तेजित कर लिया है। आपके व्यक्तित्व में जन्म से ही प्रभाव की प्रचुर मात्रा रखी गयी है। आपके प्रभाव की तीक्ष्ण तरंगें विद्युत्वेग से दूसरे की शक्ति को पंगु कर देती हैं।

वाह्य अवस्था हमारी अन्तरंग स्थिति (Internal states of mind) के अनुकूल निर्मित तथा प्रकट होती है, न कि अन्तरंग स्थिति या वाह्य अवस्था के अनुकूल। अतः जब 'मेरा प्रभाव दूसरे पर पड़ रहा है' की भावना से अन्तःकरण सतेज हो जाता है तो मनुष्य की प्रभाव डालने वाली शक्तियों का विकास प्रचुरता से प्रारम्भ होता है।

आप अपने मन में "मैं दूसरों को प्रभावित कर सकता हूँ, कर रहा हूँ एवम् अधिकाधिक करता रहूँगा" की भावना दृढ कीजिए। प्रतिदिन इसी भावना के प्रति निरन्तर विचारधारा

बढ़ाते रहिए। जितना उक्त भावना में आपका विश्वास होगा, जितनी प्रगाढ़ आपकी श्रद्धा होगी, उतनी ही अन्तिम अनुभूति सुनिश्चित होगी, किन्तु यदि भावना में शंका होने लगी तो प्रभाव की क्षति होगी। हताश, निषिद्ध एवं विचलित शंकाएँ हमें दो कौड़ी का भी नहीं छोड़तीं।

३. गुप्त सामर्थ्य को जाग्रत करने की भावना—मन की गुप्त सामर्थ्य के विकास के लिए हम एक भावना दे रहे हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल अथवा सायंकाल शान्त चित्त होकर एकान्त स्थान में नेत्र मूंद कर बैठ जाइए, शरीर एवं मन को शिथिल कर लीजिए, सब विचारों को हटा कर गुप्त सामर्थ्य को जाग्रत करने की भावना पर समस्त मानसिक क्रियाएँ एक साथ एकाग्र कर दीजिए; दृढ़ता से निम्न भावना पर मन लगाइए और आप में प्रभाव का गुप्त भण्डार खुल जायगा—

"मैं साधारण व्यक्ति नहीं हूं। मेरा प्रभाव इतना अधिक है कि अच्छे से अच्छे व्यक्ति को मेरे आगे नतमस्तक होना पड़ता है। कोई मेरे आदेश को टाल नहीं सकता; मेरी अवहेलना नहीं कर सकता। मेरी अन्तर्ज्योति इतनी प्रदीप्त है कि उसके आगे सब निष्प्रभ हो जाते हैं।"

"मेरे भीतर प्रभाव का, दूसरों पर विजय प्राप्त करने का अक्षय भण्डार भरा हुआ है। मैंने अपने सत्य स्वरूप को पहचान लिया है और उसकी शक्तिशाली तरंगें मेरे अन्तःकरण से प्रकाशित हो रही हैं। मैं अपने अन्तःकरण में शक्ति का अनुभव कर रहा हूँ। मेरे अंग-प्रत्यंगों से शक्ति फूटी पड़ती है।"

"आज से मैंने दुर्बल विचारों, दुर्बल भावनाओं,

दुर्बल मन्तव्यों, दुर्बल कल्पनाओं को तिलांजलि दे दी है। अब मैं अपने आप को दीन, हीन, कमजोर नहीं मानता हूँ। अब मैं अपने रोम-रोम से शक्ति का संचार करता हूँ। मैं भली भांति जान गया हूँ कि जो व्यक्ति निर्बलता का विचार करता है, वैसी बातें करता है वह निर्बलता को आमन्त्रित करता है। मैं सबलता की बातें करता हूँ तथा अपने वातावरण से प्रबल आकर्षण प्राप्त करता हूं॥"

"मैं अपने उत्तम स्वप्नों, परिपुष्ट विचारों तथा प्रभावशाली आदर्शों में ही रमण करता हूँ। अपने आदर्शों को सुरक्षित रखे हुए हूँ। मैं अन्त तक इन्हीं पर दृढ रहूंगा; अन्त में इनसे ही मेरी दुनिया बन जायगी। मुझे विजय, प्रभाव, प्रेरणा तथा शक्ति प्राप्त होगी।"

"मैं शरीर नहीं हूँ, वाणी नहीं हूँ, मैं शक्ति एवं प्रभाव हूँ। मैं उच्चाधिकारी हूं। सदा उन्नति की ओर ही चलता हूँ। लोगों पर मेरा काबू है। वृत्तियों के प्रभाव को फैला कर मैं दूसरों पर प्रभाव डाल सकता हूं।"

इस संदेश में अपनी चित्त-वृत्ति को बारम्बार एकाकार करने की धारणा की जाय। चित्त-शक्ति को सब ओर से खींच कर प्रत्याहार द्वारा उसे अन्तर्मुखी बना कर प्रभाव के लिए उसको ज्ञेय वस्तु में इस प्रकार लगाया जाए कि प्रभाव डालने वाले को किसी अन्य वस्तु या व्यक्ति का स्मरण तक न रहे; केवल ज्ञेय वस्तु या जिस पर प्रभाव डालना हो उसकी मानसिक मूर्ति ही उसके चित्र में रहे। धारण करते समय चित्त में वीरता, साहस, धैर्य आदि को प्रदीप्त रख कर यह

सोचते रहिए कि आपके सामने दूसरे बराबर झुकते चले आ रहे हैं।

किसी शान्त कमरे में शीशे के सन्मुख खड़े हो जाइए। विचारों को समेटिए और उन्हें अपनी प्रत्येक क्रिया में प्रवाहित कीजिए। दृढतापूर्वक धीरे-धीरे अपने मुख को देखकर कहिए—

"मैं वीर सिपाही हूं। मेरे अंग-प्रत्यंग से वीरत्व प्रकट हो रहा है। मैं कितना तेजवान् प्रतापशाली बन रहा हूँ। मेरे मुखमंडल से आत्मतेज निकल रहा है। मेरे ब्रह्मतेज के सामने दूसरे चूँ तक नहीं कर सकते। मेरे आत्मतेज से बड़े-बड़े बली एवं धनाढ्य भी थर-थर काँप उठते हैं। मेरे मुखमण्डल पर एक विशेष प्रकार का ओज देदीप्यमान हो रहा है। मेरे शरीर से आकर्षण शक्ति की सूक्ष्म तरंगें निकल रही हैं। मेरे भीतर स्वयं प्रकाश-ज्योति स्वरूप सर्वजगत् प्रकाशक आत्मा है तथा उसी का आत्मप्रकाश मैं निकाल रहा हूँ। अब मैं किसी के समक्ष नत नहीं हो सकता। मैं आत्मबल से दूसरों पर विजय प्राप्त करता हूँ। मेरी चित्तवृत्ति सदैव मेरे अधीन कार्य करती है।

"मेरा शरीर क्षण-क्षण परिवर्तित होकर प्रभावशाली बनता जा रहा है। मैं कल्याण देने वाला आत्मसूर्य हूँ। सूर्य के समान ही जगत् का प्रकाशक हूँ।"

"मैंने अपने समस्त दोषों पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है। अपनी योग्यता एवं सामर्थ्य में मेरा विश्वास अटूट हो रहा है। मुझ में परमात्मा का प्रभाव संचित है जो मेरे प्रत्येक अवयव से प्रदीप्त हो रहा है। अब मैं कठिन से कठिन अवसर पर प्रभाव डाल सकता हूँ। मैंने अपनी अन्तःस्थित ईश्वरीय

शक्ति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लिया है। मुझे अपनी सफलता का पूर्ण निश्चय है।"

क्रमशः उक्त वाक्यों की पुनरावृत्ति करते हुए प्रभावशाली व्यक्ति की तरह शान से कमरे में टहलिए। आप में अपने सामर्थ्य की भावना का प्रवाह अबाध अटूट सतत बना रहे। आपको अपनी शक्तियों के प्रति अगाढ़ विश्वास हो तथा शक्ति-प्राप्ति के लिए प्रतिक्षण उत्साह। टहलते-टहलते अपनी आकृति शीशे में देखते जाइए। मालूम कीजिए कि आकृति में कितना परिवर्तन हुआ है।

जब आप लगभग आध घण्टे तक यह अभिनय कर चुकें तो आराम से बैठ जाइए। अब आपको अपना अन्तःकरण विश्वास से परिपूर्ण प्रतीत होगा। आप ने इस क्रिया द्वारा शक्ति संचय की है। प्रत्येक दिन यही अभिनय करते रहिए। उक्त संकेतों को पुनः-पुनः; प्रगाढ़ श्रद्धा से दुहराइए। उत्साह तथा इच्छा की न्यूनता न होने पावे। आप विश्व के महान जीवन-तत्त्व के प्रभावशाली पिंड हैं। आपके अन्तःकरण में जो शक्तियों का महान् केन्द्र है, वह इन आत्म-संकेतों से क्रमशः प्रदीप्त हो उठेगा।

श्रद्धापूर्वक उच्चारित हमारे शब्दों में बड़ा बल है। और जब उनमें दृढ़ इच्छाशक्ति का समावेश होता है तो वे अत्यन्त प्रभावशाली हो उठते हैं। प्रातःकाल शय्या त्यागते समय उक्त मानसिक व्यायाम करने से सम्पूर्ण दिन स्फूर्ति रहती है। रात्रि में सोने से पूर्व करने पर अव्यक्त मन (Sub-conscious mind) में ये स्वर्णसंकेत दृढ़तापूर्वक अंकित हो जाते हैं। मन को जिस प्रकार की आज्ञा दृढ़ता-पूर्वक मिलेगी, वह उसका

अक्षरशः पालन करेगा। अपने शब्द तथा मन की शक्ति से अपनी परिस्थितियों को इच्छानुसार बदल देने वाला मनुष्य ही प्रभावशाली है।

यदि आपकी दस बार भी पराजय हो तो कदापि निराश न होइए, यदि सौ बार भी असफलता हो तो भी श्रद्धापूर्वक पुनः अपने मानसिक हथियारों को संभालिए। जादू से कोई एक दिन में प्रभावशाली नहीं बना जा सकता। कई बार असफलता आने पर भी निराश न होओ। चाहे कई बार असफलता हो, सत्य मार्ग पर आरूढ़ हो, तो उस पर चलते रहें। अपनी सफलताओं और समृद्धि को प्रकाशित कीजिए, उन्हीं का गाना गाइए और प्रभावशाली पुरुष जैसा अभिनय करते रहिए।

४. नेत्र द्वारा प्रभाव डालना—प्रभाव डालने वाले अवयवों में नेत्रों की शक्ति का एक विशेष स्थान है। नेत्र ऐसे सुघड़ दर्पण हैं, ऐसी खिड़कियाँ हैं, जिन में होकर मनुष्य का सम्पूर्ण अन्तस्तल झलकता है। मनुष्य की परख उसके नेत्र देख कर हो सकती है। इधर-उधर आँखें घुराने, जल्दी-जल्दी खोलने, बन्द करने या छिछोरेपन से आँखें चढ़ाये रखने से स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि व्यक्ति तुच्छ है। उसमें इच्छा, सामर्थ्य तथा मनोबल की न्यूनता है। निर्दोष, शांत, गम्भीर नेत्रों वाला व्यक्ति विद्वान्, सदाचारी एवं उदार होता है। उसके नेत्रों में आत्मविश्वास, गम्भीरता, चमक तथा उच्च व्यक्तित्व की झलक होती है।

बल की दृष्टि से नेत्रों का स्थान मन की इच्छा शक्तियों के अनन्तर है। नेत्र सदा ओजस् केन्द्रों को प्रत्यक्ष रीति से

हिलाते रहते हैं। नेत्रों से प्रभाव-शक्ति का अनवरत प्रवाह निकला करता है। नेत्रों द्वारा प्रकाशित प्रभाव तरंगों द्वारा ही सिंहों के अद्भुत कार्य दिखाने वाले इन भयानक जीवों को वश में रखते हैं।

नित्य प्रति के व्यवहार में आपने देखा होगा कि कुछ मनुष्य आँख से आँख मिला कर बातचीत करते हैं, दूसरे अपनी दृष्टि नीची कर लिया करते हैं। नीची दृष्टि रखने वाले व्यक्ति में विचार एवं इच्छा शक्ति की निर्बलता होती है। वह दूसरे व्यक्ति की आकर्षण तरंगों के सामने नत हो जाते हैं। लोग उस आदमी की बातों पर स्वयं ही विश्वास कर लेते हैं, जो उनके साथ सुगमता से आँख मिला सकता है। फिर भी अनेक व्यक्ति केवल मन की दुर्बलता के कारण आँख से आँख नहीं मिला सकते। ऐसे व्यक्तियों में आत्महीनता की ग्रन्थि (Inferiority Complex) वर्तमान रहती है।

आपका प्रभाव दूसरे पर तब ही पड़ता है जब बात करते समय आप दूसरे व्यक्ति की आँख की पुतली में टकटकी लगाते हो। जिस मनुष्य से आप बातें कर रहे हैं आरम्भ में उसकी दृष्टि से दृष्टि मिलाइए। डरिए मत, बल्कि इसी भांति निर्भयता पूर्वक दूसरे के सामने देखने का अभ्यास कीजिए। स्मरण रहे, यह दृष्टिपात ऐसा न होना चाहिए कि आप असभ्य मालूम पड़ने लगें। आप की दृष्टि में निर्दोषता तथा गम्भीरता के भाव प्रवाहित हों। यदि आप दूसरे की आँख से आँख अधिक देर तक न मिला सकें तो अपनी दृष्टि उसकी नाक के अग्रभाग पर जमाये रहिए तथा कभी-कभी चेहरे के इधर-उधर भी देखिए। इस बात को न भूलिए कि आप प्रबल प्रभावशाली

व्यक्ति हैं तथा आप का काम दूसरों पर प्रभाव डालना है। दर्पण के सामने खड़े होकर आप को नेत्रों को टकटकी बान्ध कर देखने का अभ्यास करना चाहिए। क्रमशः उसकी शक्ति में वृद्धि कीजिए। यहां तक कि आप जब तक चाहें निरन्तर स्थिरतापूर्वक ऐसा कर सकें और साथ ही मन में कल्पना करें कि प्रभाव-शक्ति की एक अनवरत धारा निरन्तर आप के नेत्रों से प्रबलतापूर्वक निकल रही है, आप की शक्ति दिनोंदिन बढ़ रही है तथा आप जब तक चाहें प्रभावशालिनी आँखों को काम में ले सकते हैं।

जब आप दृढ़तापूर्वक ऐसा करना सीख जाएँ, आप के नेत्रों से विश्वास की तरंगें निकलने लगें, तो अभ्यास ऐसे व्यक्तियों पर करें जिन्हें आप दबा सकते हैं। दृढ इच्छा वाले से नेत्र मिलाने में सम्भव है, आप शर्मा जाएँ और झेंप कर नेत्र नीचे कर लें। ऐसा करने में निराशा होगी। फिर बाहर के जिस व्यक्ति से आप मिलें, उसकी दृष्टि से दृढतापूर्वक आँखें मिला कर बातें करें। ऐसा करते समय मन में—'मेरा प्रभाव इस पर पड़ रहा है, यह मेरे काबू में आ गया है'—प्रभावशाली भावना का संचार कीजिए। सोचिए कि आप प्रबल प्रभाव-पुञ्ज हैं और आप सब पर अपना प्रभाव अंकित कर देते हैं। ऐसा न हो कि उस व्यक्ति का प्रभाव उल्टा आप पर आ पड़े।

किसी व्यक्ति पर प्रभाव उस समय पड़ता है जब आप ठीक उसकी आँख की पुतली में टकटकी लगाते हैं। यह बात प्रेमी तथा प्रेमिका के बीच अधिक होती है। संसर्ग से जिस रोमांच का वे अनुभव करते हैं उसका कारण भी बहुत कुछ

नेत्रों का परस्पर मिलना ही होता है। अधिकतर व्यक्ति आप की आँख से आँख तो मिलाते हैं, किन्तु उनमें एकटक—भावनापूर्वक देखने की शक्ति नहीं होती। जब किसी पर प्रभाव डालना हो तब सीधा निडर हो उन के नेत्रों की ओर एकटक देखिए, बहुत न्यून संख्या में लोग इस दृष्टि को सहन कर सकेंगे।

आप की शारीरिक एवं मानसिक शक्तियां आप की सेविकाएँ हैं। आप जैसी इन्हें आज्ञा देंगे वैसी ही ये करेंगी। यदि आप यह विश्वास रखें कि मेरी आँख द्वारा प्रभाव की तीक्ष्ण तरंगें, निकल कर दूसरे व्यक्ति के अन्तःकरण में प्रवेश कर रही हैं, मैं उन पर प्रभाव जमा रहा हूं, मेरी विचार-शक्ति का प्रवाह दूसरे में तेजी से प्रवेश कर रहा है, तो स्मरण रखिए, ये आप को उत्तम से उत्तम वस्तुएँ प्रदान करेंगी। आंखों से प्रभाव फेंकने के लिए शीशे के सम्मुख शान्तचित्त खड़े हो जाइए। स्वयं अपने नेत्रों को टकटकी लगा कर देखें तथा निम्न वाक्यों को पूरी श्रद्धा से दुहराएँ। क्रमशः, आप के नेत्रों में एक दृष्टि मात्र से दूसरे को प्रभावित कर देने की क्षमता आ जावेगी।

"अब मुझे कोई शक्ति दबा नहीं सकती। साधारण व्यक्तियों की क्या हिम्मत कि वे मुझे धोखा दिया दें। एक दृष्टि मात्र से मैं दूसरे को जीत लेता हूं। मेरे हृदय मन्दिर में बैठा हुआ परमात्मा मुझे आन्तरिक बल तथा शक्ति प्रदान कर रहा है। वह मेरा परम रक्षक है। बड़ी से बड़ी शक्तियां मेरे सामने नहीं ठहर सकतीं। प्रकाश में जैसे अन्धकार नहीं ठहर सकता वैसे ही जिस हृदय में ईश्वर का निवास है वहां दूसरों

व्यक्ति हैं तथा आप का काम दूसरों पर प्रभाव डालना है। दर्पण के सामने खड़े होकर आप को नेत्रों की टकटकी बान्ध कर देखने का अभ्यास करना चाहिए। क्रमशः उसकी शक्ति में वृद्धि कीजिए। यहां तक कि आप जब तक चाहें निरन्तर स्थिरतापूर्वक ऐसा कर सकें और साथ ही मन में कल्पना करें कि प्रभाव-शक्ति की एक अनवरत धारा निरन्तर आप के नेत्रों से प्रबलतापूर्वक निकल रही है, आप की शक्ति दिनोंदिन बढ़ रही है तथा आप जब तक चाहें प्रभावशालिनी आँखों को काम में ले सकते हैं।

जब आप दृढ़तापूर्वक ऐसा करना सीख जाएँ, आप के नेत्रों से विश्वास की तरंगें निकलने लगें, तो अभ्यास ऐसे व्यक्तियों पर करें जिन्हें आप दबा सकते हैं। दृढ इच्छा वाले से नेत्र मिलाने में सम्भव है, आप शर्मा जाएँ और झेंप कर नेत्र नीचे कर लें। ऐसा करने में निराशा होगी। फिर बाहर के जिस व्यक्ति से आप मिलें, उसकी दृष्टि से दृढतापूर्वक आँखें मिला कर बातें करें। ऐसा करते समय मन में—'मेरा प्रभाव इस पर पड़ रहा है, यह मेरे काबू में आ गया है'—प्रभावशाली भावना का संचार कीजिए। सोचिए कि आप प्रबल प्रभाव-पुञ्ज हैं और आप सब पर अपना प्रभाव अंकित कर देते हैं। ऐसा न हो कि उस व्यक्ति का प्रभाव उल्टा आप पर आ पड़े।

किसी व्यक्ति पर प्रभाव उस समय पड़ता है जब आप ठीक उसकी आँख की पुतली में टकटकी लगाते हैं। यह बात प्रेमी तथा प्रेमिका के बीच अधिक होती है। संसर्ग से जिस रोमांच का वे अनुभव करते हैं उसका कारण भी बहुत कुछ

नेत्रों का परस्पर मिलना ही होता है। अधिकतर व्यक्ति आप की आँख से आँख तो मिलाते हैं, किन्तु उनमें एकटक—भावनापूर्वक देखने की शक्ति नहीं होती। जब किसी पर प्रभाव डालना हो तब सीधा निडर हो उस के नेत्रों की ओर एकटक देखिए. बहुत न्यून संख्या में लोग इस दृष्टि को सहन कर सकेंगे।

आप की शारीरिक एवं मानसिक शक्तियां आप की सेविकाएँ हैं। आप जैसी इन्हें आज्ञा देंगे वैसी ही ये करेंगी। यदि आप यह विश्वास रखें कि मेरी आँख द्वारा प्रभाव की तीक्ष्ण तरंगें, निकल कर दूसरे व्यक्ति के अन्तःकरण में प्रवेश कर रही हैं, मैं उस पर प्रभाव जमा रहा हूँ, मेरी विचार-शक्ति का प्रवाह दूसरे में तेजी से प्रवेश कर रहा है, तो स्मरण रखिए, ये आप को उत्तम से उत्तम वस्तुएँ प्रदान करेंगी। आँखों से प्रभाव फेंकने के लिए शीशे के सम्मुख शान्तचित्त खड़े हो जाइए। स्वयं अपने नेत्रों को टकटकी लगा कर देखें तथा निम्न वाक्यों को पूरी श्रद्धा से दुहराएँ। क्रमशः, आप के नेत्रों में एक दृष्टि मात्र से दूसरे को प्रभावित कर देने की क्षमता आ जावेगी।

"अब मुझे कोई शक्ति दबा नहीं सकती। साधारण व्यक्तियों की क्या हिम्मत कि वे मुझे नीचा दिखा दें। एक दृष्टि मात्र से मैं दूसरे को जीत लेता हूँ। मेरे हृदय मन्दिर में बैठा हुआ परमात्मा मुझे आन्तरिक बल तथा शक्ति प्रदान कर रहा है। वह मेरा परम रक्षक है। बड़ी से बड़ी शक्तियां मेरे सामने नहीं ठहर सकतीं। प्रकाश में जैसे अंधकार नहीं ठहर सकता वैसे ही जिस हृदय में ईश्वर का निवास है वहां दूसरों

का प्रभाव एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। मेरे नेत्रों से तेज निकल कर दूसरों को प्रभावित करता है।

"मुझे संसार के मनुष्यों का संरक्षण प्राप्त करने की तनिक भी चिन्ता नहीं है। मुझे तो परमात्मा के दिव्य-संरक्षण का पूरा भरोसा है। मेरा कोई भी बाल बाँका नहीं कर सकता। मेरा एकमात्र त्राता, मेरा एकमात्र रक्षक परमात्मा है। मेरे नेत्रों से उसी का अनन्त तेज प्रकाशित हो रहा है। मैं आत्मतेज से देदीप्यमान हूँ। मेरे अंग-प्रत्यंग से ओज निकल रहा है। सर्वत्र वही प्रकाशित हो रहा है। मेरे नेत्रों में वही चमक रहा है। दृढ से दृढ व्यक्ति को जीत लेने की मुझे शक्ति प्राप्त हो रही है। मैं अब कभी भी किसी भी भय के अधीन न होऊँगा। मैं सब दिशाओं में, सब कालों में, सब अवस्थाओं में परम निर्भय हूँ। यह सब प्रभाव मुझे परमेश्वर की अदृष्ट प्रेरणा से ही प्राप्त हो रहा है। वही मेरी सत्ता का एकमात्र परम आश्रय है।"

उक्त संकेतों को नेत्रों द्वारा भी प्रकट करो। मन शब्दों पर एकाग्र रहे। तुम्हारे नेत्र बिना भय के प्रभाव प्रकट करते रहें। जब नेत्र थक जायं तो शीतल गुलाब जल के छींटे दो तथा पुनः उक्त व्यायाम करो। कुछ समय पश्चात् तुम बिना संकोच के दूसरों से आँखें मिला सकोगे और तुम्हारे नेत्रों से ओज-प्रवाह बहने लगेगा।

५. संसर्ग से प्रभाव—स्पर्श की शक्ति महान् है। दूसरे का शरीर स्पर्श करते ही एक विद्युत्-तरंग पूरे शरीर में व्याप्त हो जाती है। शरीर में रोमांच हो आता है। रोम-रोम झंकृत

हो उठता है। कवियों ने चुम्बन की प्रतिक्रिया समस्त शरीर में बताई है। शरीर में ऐसे स्थान हैं जो बैटरी की बत्ती की तरह छूने मात्र से प्रभाव डालते हैं।

जब आप हाथ मिलाएँ, तो स्पर्श द्वारा इच्छाशक्ति, मनोबल तथा दृढ निश्चय को प्रकट करें। शरीर की गर्मी द्वारा प्रभाव का विस्तार करें। आपके मन में प्रभाव की भावना दृढता से प्रवाहित रहे। आप यह सोचते रहें कि स्पर्श द्वारा आप प्रभाव की किरणें दूसरों के भीतर प्रवेश करा रहे हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के हाथ में एक ऐसा स्थान होता है जो समस्त सत्ता का केन्द्र होता है। यह स्थान अँगूठी पहिनने की उँगली के अन्तिम भाग में होता है। सामुद्रिक लोग इसे सूर्य या भगवान् आदित्य का पर्वत कहते हैं। इस स्थान का हृदय तथा मन से अधिक सम्बन्ध होता है। इसलिए प्रभाव डालने की कला में निपुण व्यक्ति इसी केन्द्र द्वारा अपने आकर्षण की प्रबल तरंगें प्रवाहित किया करते हैं। यदि दूसरी उंगलियों के मूलवर्ती पर्वतों का भी यथासम्भव एक दूसरे से संसर्ग करा दिया जाय तो प्रवाह अधिक प्रचण्ड हो जाता है।

जब आप दूसरे का स्पर्श करते हैं तो मन में प्रभाव की भावना का उद्रेक करें। मन में दृढतापूर्वक दूसरे को जीत लेने के पुष्ट विचारों को प्रचुरता से आने दें। विजय और सफलता पूर्णतया मन की वैज्ञानिक प्रक्रिया से दूसरे में प्रविष्ट हो जाते हैं। अतः प्रभाव ऐश्वर्य तथा स्वाधीनता के पुष्ट संकेतों (Suggestions) से अपने मनोक्षेत्र को सुशोभित करें। "मेरे विचार दूसरों में निरन्तर प्रभाव डाल रहे हैं; मैं दूसरों को वश में करता आ रहा हूँ, मैंने इसे जीत लिया है"—इस प्रकार

के विचारों को स्पर्श द्वारा दूसरे में प्रविष्ट कराने की भावना जाग्रत करें।

६. मनुष्य की वाणी का प्रभाव—मनुष्य की वाणी में प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालने की शक्ति भर दी जा सकती है। वाणी से उत्पन्न होने वाली शब्द-तरंगें हमारे सन्देश को दूर-दूर तक पहुँचा सकती हैं, किन्तु यदि देखा जाय तो मनुष्य के मनोबल की शक्ति ही उसके कण्ठस्वर में प्रकट होती है। क्या कारण है कि एक कुरूप या बेडौल व्यक्ति के शब्दों का प्रभाव जादू सा पड़ता है और भीड़ की भीड़ एकत्र हो जाती है?

बाबर की जगत्प्रसिद्ध वक्तृता को कौन नहीं जानता? बाबर के सैनिकों ने उसे जवाब दे दिया था कि अब हम में युद्ध करने का साहस नहीं है। बाबर को अपनी आयु में ऐसी कठिनाई का सामना कभी नहीं करना पड़ा था। उसने अपने सैनिकों को एकत्र किया तथा बोलना प्रारम्भ किया—

"ऐ वीर सिपाहियो! तुमको मालूम है कि तुम कितनी दूर से आये हो? कहां खड़े हो? कितने समय तक कष्ट झेले हो? यदि तुम मैदान से पीठ दिखा कर भागोगे तो क्या अपने प्राण लेकर स्वदेश तक पहुँच सकोगे? सेना के कम होने की क्या चिन्ता है? यदि मन दृढ है तो सब शक्ति तुम्हारे पास है। यदि थोड़ी भी निर्बलता दिखाई तो समझ लेना कि इतने बड़े देश में तुम्हारी चोटी भी दिखाई न देगी। जब हाथ में तलवार है तो भय किस बात का? निर्लज्जता से जीवन व्यतीत करने से मर जाना अच्छा है। मृत्यु से कौन बचा है। वीरों की भाँति लड़ो और परलोक में यश प्राप्त करो।"

ये जादूभरे शब्द सुनते ही सैनिकों के मुख तमतमा उठे। उन्हें नवप्रेरणा प्राप्त हुई, सबने तलवारों पर हाथ रखकर सौगन्द खाई कि अंत तक धर्म के नाम पर लड़ेंगे और मुख न मोड़ेंगे। यह है मनुष्य की वाणी का प्रभाव!.

बोलना भी प्रभाव डालने का एक महान् शस्त्र है। आप शायद कहें कि हम बोलते तो हर समय रहते हैं, फिर इसमें कौन सी यह महत्त्वपूर्ण बात है? बोलना भी बहुत तरह का होता है। एक बोलना वह है जिस से ग्राहक फौरन वश में आ जाते हैं तथा भाग्यों के वारे-न्यारे हो जाते हैं।

जब कभी आप चार मनुष्यों में बोलें तो "मेरे शब्दों के पीछे मेरा प्रभाव पड़ रहा है" की भावना का समावेश करते रहें। साफ सुलझी भाषा में आपके मुख से निरन्तर वाक्य निकलते रहें। जब तक मनुष्य बोलना प्रारम्भ नहीं करता, तब तक बड़ी दुविधा रहती है। वह अपने आपको बड़ा दुर्बल समझता है। देखा गया है कि अनेक व्यक्ति सभा इत्यादि में उठ भी नहीं पाते। माना कि आप विद्वान् हैं, किन्तु यदि आप निःसंकोच भाव से लोगों के सामने अपने भाव नहीं रख सकते तो आप कदापि प्रभावशाली नहीं बन सकते। अतः यदि आप प्रभावशाली बनने के इच्छुक हैं तो झूठी शर्म, स्त्रियोचित लज्जा को छोड़ दीजिये। सदा ऐसे अवसरों की ताक में रहिए जब आपको बोलने का अवसर प्राप्त हो जाय।

आप सफल नेतृत्व कर सकते हैं !

सफल नेतृत्व एक प्रकार की आध्यात्मिक प्रतिक्रिया का फल है, जिसके कारण नेता की आध्यात्मिक शक्तियां विकेन्द्रित होकर विशाल जन-समूह को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। प्रत्येक नेता कहलाने वाला व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक शक्तियों के प्रभाव से जनता और समाज में उन्नति करता है। समाज तथा जनता में होने वाले परिवर्तन उसके मन की भावना एवं सूचना के अनुसार होते हैं।

सफल नेता की शिवभावना, सबका भला "बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय" से प्रेरित होती है। प्रत्येक मनुष्य में शिवत्व है। इस शक्ति से भर कर जब कोई सज्जन संसार के कल्याण के लिए अग्रसर होता है तो अनेक प्रकार की गुप्त शक्तियां उसके व्यक्तित्व में स्वयं विकसित हो उठती हैं। संसार की प्रत्येक शक्ति का स्वभाव है कि वह दुष्ट के हाथ से अपना विघातक स्वरूप स्पष्ट करती है तथा सच्चरित्र सज्जन व्यक्ति के हाथ में विधायक स्वरूप धारण करती है। शक्ति के परिणाम चाहे कितने ही हों पर स्वरूप एक ही होता है। चरित्र की उदात्तता के अनुसार, मन की भावना के सामर्थ्य से नेतृत्व की शक्तियों का उदय होता है। ज्यों ही सद्भावना के सामर्थ्य का प्रवाह योग्य दिशा में प्रवाहित होता है त्यों ही शक्तियां विकसित होती हैं।

नेतृत्व की साधना का प्रारम्भ

सफल नेता होने से पूर्व आप अपने-आप से पूछिये कि

क्या आप वास्तव में समाज की सेवा करना चाहते हैं ? आप का व्यक्तिगत स्वार्थ तो प्रेरक शक्ति नहीं है ? आप जनता को आश्चर्य-चकित करने मात्र के लिए या अपने विज्ञापन के लिए ही तो आप नेतागिरी नहीं कर रहे हैं ? जिस क्षेत्र में आप नेतृत्व करना चाहते हैं, उस सम्बन्ध में आपकी जानकारी पूर्ण है या नहीं ? अन्य देशों में उस प्रकार का जागरण उत्पन्न करने वालों के सम्बन्ध में आपने पूरी तरह पढ़ लिया है या नहीं ? अपनी शक्तियों एवं साधनों के प्रति आपको पूर्ण विश्वास है या नहीं ? आपका शरीर पूर्ण स्वस्थ, इन्द्रियां कार्य में सतर्क, बुद्धि कुशाग्र और मन में समस्वरता है या नहीं ?

उपर्युक्त प्रश्नों द्वारा अपने व्यक्तित्व की जांच के पश्चात् यदि आप अपने अन्दर गुप्त शक्ति का असाधारण प्रभाव पायें, तब इस क्षेत्र में आगे बढ़ सकते हैं। मान लीजिए, आपने शारीरिक व्यायाम द्वारा शरीर को पुष्ट बना लिया है, आपके पास पूरे क़द का स्वस्थ और नीरोग शरीर है। मन में उत्साह एवम् आशा है और आप सद् इच्छा से प्रेरित हैं। आगे क्या करें ?

पहले अपना क्षेत्र तलाश कीजिये। आप किस क्षेत्र में जनता का मार्ग प्रदर्शन करना चाहते हैं—धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक या साहित्यिक क्षेत्र में। आप अपने आप को उच्चतम, महत्तम सब से आगे समझते हैं। सावधान, अपनी साधनाएँ तोल लीजिये। जब तक आपने उपर्युक्त क्षेत्रों में मन लगा कर दीर्घकालीन अभ्यास नहीं किया है, उच्चतम ज्ञान और बुद्धि की एकाग्रता से उस विषय को अपना नहीं बना लिया है, तब तक इस क्षेत्र में पदार्पण करना नितांत मूर्खता

है। जिस की जिस क्षेत्र में जितनी अधिक साधनाएँ हैं, जिसने जितना अधिक अभ्यास किया है और जिसके पास जितना अधिक ज्ञान है वह उतनी ही सफलता से नेतृत्व कर सकता है। क्षेत्र का चुनाव आपकी शिक्षा एवं रुचि का व्यक्तिगत प्रश्न है। इसे बड़ी सतर्कता से हल करना चाहिये।

प्रारम्भ में नैपोलियन समझता था कि उसे साहित्य के क्षेत्र में नेतृत्व करना है। उसने १७ से २४ वर्ष की आयु के मध्य साहित्यिक प्रसिद्धि लाभ करने का पुनः पुनः यत्न किया। उसे लेखनकला में कीर्ति-लाभ करने का मार्ग निश्चित और शायद सब से छोटा जान पड़ता था। ग्रन्थकार बनने का पहला प्रयत्न उसने १७८६ में किया था। कई छोटी-छोटी पुस्तकें लिख चुकने के पश्चात् उसने "प्रेम" पर एक निबन्ध लिखा, उसके बाद 'आनन्द' पर। ल्योन्स की विद्वत्-परिषद् ने 'आनन्द' पर निबन्ध के लिए १५०० लिवरे का एक पारितोषिक रखा था। नेपोलियन ने भी अपना लेख प्रतियोगिता में भेज दिया। वह इतना निकम्मा था कि उससे घटिया केवल एक निबन्ध और था। निबन्ध-परीक्षकों में से एक ने उस पर इस प्रकार की टिप्पणी लिखी थी—"यह इतना अव्यवस्थित है, इतना ऊबड़-खाबड़ है, इतना असंबद्ध है और इतनी बुरी तरह लिखा हुआ है कि इस पर कुछ भी ध्यान देना ठीक नहीं।" इस पर नेपोलियन ने अपने भाई जोसेफ को लिखा—"अब मुझे ग्रन्थकार बनने की आकांक्षा नहीं रही।" उसने दूसरा क्षेत्र पकड़ा। सैनिक क्षेत्र में आकर उसे विदित हुआ कि यही परमेश्वर ने उसके लिए बनाया है। इसी में उसने अक्षय कीर्ति लाभ की। ठीक क्षेत्र का चुनाव आधी सफलता है।

जो व्यक्ति कभी कुछ कभी कुछ करते हैं, वे अन्ततः कहीं भी नहीं पहुँच पाते। बहुत सोच-समझ कर अपनी रुचि के अनुकूल क्षेत्र का चुनाव करना चाहिए। वह नेता धन्य है जिसने अपने सही क्षेत्र की पहचान कर ली है, शक्तियों को तोल लिया है।

नेता में किन आध्यात्मिक सम्पदाओं की आवश्यकता है? सर्व-प्रथम आत्म-विश्वास है। यह नेता का प्रथम दैवी गुण है। इससे वह जीवन में प्रतिकूल और अप्रिय अवस्थाओं पर विजय प्राप्त करता चलता है। विपरीत प्रतिकूलताएँ नेता के आत्म-विश्वास को चमका देती हैं। प्रत्येक नेता आत्म-विश्वास का जीता-जागता शक्तिपिंड होता है। उसे अपनी भुजाओं, अपने शरीर, अपनी कार्य-प्रणाली, सम्पादिका शक्तियों, तर्क और बुद्धि में अक्षय विश्वास होता है। उसके अन्तस्तल में निश्चयात्मक तत्त्व प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते हैं। उसके नेत्र, मुख-मंडल एवं कर्मों से तनिक भी सन्देह या भय के भाव नहीं प्रकट होते।

उसे विश्वास होता है कि मैं जिस कार्य को कर रहा हूँ, मैंने जो योजनाएँ जनता के लाभ और सेवा के लिए बनाई हैं, वे गलत नहीं हो सकतीं। संसार उनकी आलोचनाएँ करता है, किन्तु वे आलोचनाएँ उसके अक्षय आत्म-विश्वास को ठेस नहीं पहुँचा सकतीं।

संसार में जो-जो नेता हुए हैं, उन्हें घोर प्रतिकूलता तथा तीखी आलोचनाओं का सामना करना पड़ा था। जितना भी अद्भुत प्रतिभा का प्रकाशन हुआ, वह सब प्रतिकूलता में ही हुआ। बड़े-बड़े धार्मिक नेता, राजनीतिक और सामाजिक

कृतज्ञता जैसे दिव्य गुणों की अतीव आवश्यकता है। उसे तो मानव-मात्र का हितैषी (सेवक) बनना है, सबके कष्टों को सुन कर दूर करने का उद्योग करना है, सुख तथा शान्ति के मार्ग पर चलाना है। जो नेता इस नियम को भंग करता है वह घृणा तथा स्वार्थ का शिकार बनता है। जनता का सहयोग छल, कपट, धोखे या जादू से सम्भव नहीं है जनता बड़ी कटु आलोचक है। वह नीर-क्षीर-विवेक करना जानती है। अतः आप जिस किसी के सम्पर्क में आयें उसी को अपने मृदु, सहानुभूतिपूर्ण, शब्दों से अपना बनाइये। इन दैवी तत्त्वों का चुम्बक स्रोत दूसरों के मन में भी सर्वत्र समान रूप से प्रवाहित हो उठेगा। दीर्घ आशा और विश्वास जागृत होगा, विपरीत आलोचनाएँ स्वयं नष्ट हो जायेंगी।

विश्व-कार्य में नेतृत्व ग्रहण करना, जीवन-कर्तव्यों का सम्यक् सम्पादन करना, प्रतिकूल परिस्थिति के विषम प्रभाव से ऊपर उठना, भय का निर्वासन करना—यह सब आप की मिलनसारी, सहानुभूति, कृतज्ञता एवं प्रेम पर निर्भर हैं। आपका प्रेम फलता-फूलता है। प्रकट किया हुआ प्रेम दुगुना-चौगुना होकर लौटता है।

विजय का चमत्कारी रहस्य

संसार के अधिकांश विजेताओं की सफलता का रहस्य यह है, कि उन्होंने अपने शत्रु पर सीधा आक्रमण नहीं किया, प्रत्युत टेढ़ा—तिरछा होकर इस युक्ति से किया कि शत्रु को उनके आक्रमण का पता तब लगा जब कि उनके पीठ के पीछे से शत्रु सिर पर चढ़ आया और उन्हें प्राण बचाने कठिन हो गये, हार माननी पड़ी।

एक उदाहरण लीजिए। सिकन्दर महान् ने नाना युद्धों में विजय प्राप्त की थी। उन्होंने शत्रु पर सीधा आक्रमण कभी नहीं किया। सिकन्दर जानता था कि सामने शत्रु की फ़ौज की सब से अधिक शक्ति रहती है। सामने से आक्रमण का दूसरा अर्थ पराजय होता है। अतएव वह शत्रु के पिछले भाग पर आक्रमण कर उसे तोड़ डालता था। पोरस से युद्ध करने में ऐसा ही हुआ। नदी के दूसरी ओर कुछ सैनिक आग जलाते रहे, ढोल बजाते रहे। पोरस की सेना समझती रही कि शत्रु आक्रमण की तैयारी सामने कर रहा है। इसी बीच सिकन्दर की सेनाएं नदी के एक उथले भाग से पुल बना कर उसे पार कर गई और उन्होंने पोरस की सेना के पिछले भाग पर आक्रमण कर दिया। पिछली ओर से होने वाले धावे को पोरस न सम्हाल सका, उसकी पराजय हुई। यदि सिकन्दर सामने से आक्रमण करता, तो कदापि वीरवर पोरस को न हरा सकता था।

यही रहस्य नैपोलियन का था। वह शत्रु के किसी एक भाग पर आक्रमण किया करता था। सीधा धावा बोलने की उसने कभी नहीं सोची।

जीवन में हमें नाना प्रसंग ऐसे आते हैं जिनमें यदि हम उन पर सीधा धावा करें, तो आसपास के सब व्यक्ति हम से अप्रसन्न हो सकते हैं, हमारे शत्रु बन कर हमारा विरोध कर सकते हैं। यदि उन्हीं समस्याओं पर हम सीधे आक्रमण न कर टेढ़े तरीकों से करें, तो वे न केवल सरल हो जाते हैं, वरन् उनमें सफलता निश्चित होती है।

लोक-व्यवहार में सफलता

यश, प्रतिष्ठा एवं नेतृत्व आपके लोक-व्यवहार की सफलता पर निर्भर हैं। यदि आप सफल व्यक्तियों के आचरण और बातचीत का निरीक्षण करें तो आपको विदित होगा कि वे उन कार्यों या व्यवहारों को काम में नहीं लाते जिन से पारस्परिक कटुता उत्पन्न होती है। वे अपनी मानसिक विद्युत् शक्ति इतनी तीव्र रखते हैं। कि उसी स्वभाव, रुचि और स्तर के व्यक्ति स्वतः उधर खिंचे चले आते हैं।

१. मैत्री भाव रखिए—वे मैत्री भाव का क्रियात्मक प्रयोग करते हैं अर्थात् सबके प्रति प्रेम, सहानुभूति, करुणा, दया, भ्रातृभाव की सूक्ष्म तरंगें फैलाते रहते हैं। "सब सुखी हों, सब आरोग्य हों, सबका कल्याण हो, सब को सब कुछ प्राप्त हो, सब सभी जगह आनन्दित रहें।" यह मूल भावना उनके आकर्षण का मुख्य केन्द्र है।

२. त्याग-वृत्ति अपनाइए—नेतृत्व उन्हीं को मिलता है, जो अपने त्याग, सेवा, योग्यता और बलिदान से जनता का हृदय जीत लेते हैं और स्वयं सतत कार्यशील रहते हैं। यदि आप ईर्ष्या, द्वेष या धोखेबाजी में लगेंगे, स्वार्थ की नीति से काम लेंगे, तो आपका मानसिक चुम्बक नष्ट हो जायगा। आप जितना ही सेवा, सहायता, प्रेम दूसरों को देंगे, वही दुगुना-चौगुना आपको प्राप्त होगा। संसार में दान का प्रति-दान मिलता है। अतः आप दूसरों को अधिक से अधिक देते

रहिए। अच्छे विचार, सुन्दर योजनाएँ, रुपया पैसा, सहायता —जिस स्थिति में हों, कुछ न कुछ अवश्य दीजिए। जो धैर्यपूर्वक अधिक से अधिक देता है, वही सच्चा नेतृत्व प्राप्त करता है तथा जनता का विश्वास भी।

३. जनता को समझिए—अपने आस-पास के व्यक्तियों का सूक्ष्म अध्ययन कीजिए। कितना रुचि-वैचित्र्य है। कितने प्रकार के व्यक्ति आपके पास हैं। प्रत्येक की आदत स्वभाव पृथक् है। अतः दूसरों को अपनी तरह विश्वास, मत, स्वभाव और नियमों के अनुसार कार्य करने को बाध्य मत कीजिये। उन पर अपना दृष्टिकोण मत थोपिये। आत्म-विकास के भिन्न-भिन्न स्तर होते हैं। सब को एक स्तर पर समझ कर कार्य करना मूर्खता है। अतः सफलता का उपाय यह है कि आप अपने सम्पर्क वालों को प्रेममय संकेत मात्र ही देते रहें, पर उनके निजी जीवन-कार्यों में अनुचित हस्तक्षेप न करें। बरबस नियंत्रण करने, डांटने या बन्धन द्वारा मानव की प्रतिभा तथा मौलिकता का ह्रास होता है। अधिक नियन्त्रण से मानसिक तनाव (Mental Tension) उत्पन्न होता है। जबरदस्ती करने से दूसरे व्यक्ति में विरोध की भावना उत्पन्न होती है। सुधारक एवं जिसका सुधार इष्ट है—दोनों का जीवन रसहीन हो जाता है, उत्साह नष्ट हो जाता है और इनके अभाव में क्रोध, असंतोष एवम् उत्तेजना का जन्म होता है। मनुष्य की यह प्रकृति है कि वह नियंत्रण एवं बन्धन के विरुद्ध विद्रोह करता है, पर प्रेममय संकेत, मुस्कराते हुए सुझाव को स्वीकार कर लेता है।

स्मरण रखिये, मनुष्य अपनी सहज वृत्तियों (Instincts)

के बल पर सांसारिक जीवन व्यतीत करता है। उसके अन्तः-करण में जो आदतें प्रारम्भ से बनी हैं, वह उन्हें पूरा करने, वैसे ही रहने और खाने-पीने में आनन्द का अनुभव करता है। हम में से प्रत्येक के आनन्द प्राप्त करने के ढंग भिन्न-भिन्न हैं। हमारा बन्धन और नियन्त्रण उसके आन्तरिक जीवन में बाधा उपस्थित करता है।

नील नामक मनोवैज्ञानिक ने "बच्चों के लिये" फ्रीडम स्कूल (अर्थात् स्कूलों में छोटे बच्चों को पूर्ण स्वतन्त्रता देकर केवल प्रेममय संकेतों द्वारा शिक्षण) की योजना रखी है। उसके अनुसार बच्चे जैसे चाहें रहें, पढ़ें या न पढ़ें, कक्षाओं में जायँ चाहे न जायँ, उनकी वृत्तियाँ कुतूहल उत्पन्न कर आत्म-विकास की ओर लगाई जायँ। उन्हें अपने आप, कम से कम बाधा उत्पन्न कर शिक्षित होने दिया जाए। यदा-कदा प्रेममय संकेत दे दिये जाया करें। इस योजना के परिणाम बड़े सफल रहे हैं। अनुचित बन्धन, डाँट-फटकार, मार-पीट, अर्थदण्ड से बचकर बच्चों में आत्म-विकास की रुचि उत्पन्न हुई है। केवल उत्साह-वर्द्धक संकेतों से उनमें खुशी-खुशी अपने कार्य अच्छी तरह समाप्त करने की आदतों का विकास हुआ है।

मनुष्य का अनुभव ही सर्वोत्तम शिक्षक है। हम अपने कटु-मृदु अनुभवों के आधार पर स्वयं ज्ञान प्राप्त करते हैं, यह ठोस स्थायी ज्ञान है। जिस व्यक्ति का सुधार करना है, उसे परोक्ष रूप से उसकी गलती का अनुभव कराइये, प्रेमपूर्ण संकेत दीजिए पर सावधान! बन्धन या अनुचित नियन्त्रण का दबाव मत आने दीजिए। वास्तव में, हम स्वयं अपने अनुभव से नाना टक्करें खा-खाकर बातें सीखते हैं।

४. अनुभव प्राप्त कीजिए—अनेक व्यक्ति स्वयं अर्जित अनुभव के बल पर ही जीवन-निर्माण कर सके हैं। यदि इन्हें साधारण स्कूलों में पढ़ाया जाता, तो सम्भव था, वे इतने स्थाई विद्वान् न बन पाते। उनकी शिक्षा में किसी बन्धन, या नियन्त्रण ने कार्य नहीं किया। शेक्सपीयर किसी स्कूल में नहीं पढ़े थे। उपन्यासकार डिकिन्स के विषय में कहा जाता है कि लंदन की गलियाँ उसकी विश्वविद्यालय थीं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे महान् कवियों के व्यक्तित्व का विकास उनके वैयक्तिक अनुभवों के बल पर हुआ था। वे प्रकृति देवी के साक्षात् संसर्ग में आये और उसी के द्वारा उन्हें संसार का वह अनुभव प्राप्त हुआ, जिसके द्वारा उनकी ईश्वर-प्रदत्त सर्वतोमुखी प्रतिभा विकसित हो सकी। मनुष्य एक जीवित पिंड है। इसे कोई नए साँचे में नहीं ढाल सकता। उसकी वैयक्तिक रुचि और अन्तः-प्रेरणा के आधार पर ही उसके व्यक्तित्व का विकास होता है।

स्वतन्त्रता मनुष्य की सुपुप्त आन्तरिक शक्तियों को जागृत करती है, बन्धन और नियन्त्रण उनका ह्रास करता है। प्रत्येक व्यक्ति का आन्तरिक जीवन, स्वभाव, आदतें, रुचि और संस्कार ही उसके जीवन का ध्रुव तारा है। फूल के समान उसे स्वयं मौलिकता से खिलने दीजिये। चतुर माली की तरह प्यार से उसे दुलराइये, प्रोत्साहित कीजिए, प्रेममय संकेत दीजिये, किन्तु सावधान! दूसरे को अपने स्वभाव या रुचि के अनुसार जीवन व्यतीत करने को बाध्य मत कीजिए। बन्धन और नियंत्रण उसकी कार्य-शक्तियों को पंगु कर देगा।

५. दूसरों पर अपने विचार न ठोंसिए—आप स्वयं जैसा चाहें कार्य करें, जैसे चाहें जीवन व्यतीत करें, खाँय पीएँ, किन्तु

दूसरों को उनके स्वभाव एवं आदत के अनुसार जीने दीजिये। दूसरों के आनन्द प्राप्त करने के उपाय पृथक्-पृथक् हैं। उन्हें इतना अवसर दीजिए कि वे अपने ढंग से जीवन का नशा लूट सकें, स्वच्छन्द वायु में विचरण कर सकें, जहाँ चाहें फिर सकें, उठ-बैठ खेल-खा सकें। यदि इसमें कुछ भी परिवर्तन की इच्छा है, तो प्रेममय सुझाव के रूप में एक मित्र की तरह अपना संकेत आने दीजिये।

संक्षेप में, दूसरों को सुधार कर अपने स्वभाव, रुचि, शिक्षा, उन्नति या आदर्शों के अनुकूल बना लेने का प्रयत्न करने की मूर्खता मत कीजिए। बरबस सुधार थोपने से न सुधार ही होता है, न आपका ही मन प्रसन्न रहता है। प्रत्युत दूसरा व्यक्ति मित्र से शत्रु बन जाता है।

किसी महानुभाव के ये शब्द कितने मार्मिक हैं, "तू अपने रास्ते पर चल और दूसरों को अपनी राह चलने दे, व्यर्थ हस्तक्षेप कर झगड़ा न कर। सभी को आँखें मिली हैं और अपना रास्ता हरेक स्वयं चुन सकता है। रास्तों के लिये झगड़ा जंगली दिनों का सूचक है। मुहम्मद कहा करते थे कि ठीक रास्ता गलत रास्ते से अपने आप साफ होता है। उसके लिए जबरदस्ती या जिद की जरूरत नहीं है।"

कुछ व्यक्तियों की यह धारणा है कि व्यक्तिगत उन्नति दूसरों के अधिकारों को कुचलने, अपहरण करने अपने से नीचे वालों को व्यक्तिगत हानि पहुँचाने या दबाने, धमकाने, डांटने, फटकारने से प्राप्त होती है। यदि हम अमुक व्यक्ति को दबाये रखेंगे, तो अवश्य परोक्ष रूप में हमारी उन्नति हो जायगी; अमुक व्यक्ति हमारी उन्नति में बाधक है; अमुक

हमारी चुगली करता, दोष निकालता, मान-हानि करता अथवा अवनति का कारण है। अतः हमें अपनी उन्नति न देखकर पहले अपने प्रतिपक्षी को रोके रखना चाहिये। ऐसा सोचना और दूसरों पर अपनी असफलताओं का कारण थोपना, भयंकर भूल है।

६. दूसरों पर दोष न लगाइए—दूसरों को अपनी अवनति या पीछे पड़े रहने का दोषी मत बनाइये। उन पर अपनी असफलताएँ या दुर्बलताएँ मत थोपिये। दूसरों के अधिकारों को दबाने से उनको व्यर्थ ही हानि पहुँच जायगी। और स्वयं आप को कुछ व्यक्तिगत लाभ न होगा। सम्भव है, हानि पहुँचने वालों में आपके कोई हितैषी मित्र सुहृद् हों, जो आपके अनुचित व्यवहार से क्रुद्ध होकर उलटे हानि पहुँचाए।

व्यक्तिगत उन्नति की आधार शिला मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक विशेषताएँ ही हैं। दूसरों को दबाना, चुगली करना या कुचलना तो आपकी ईर्ष्या, क्रोध एवं उत्तेजना की प्रतिक्रियाएँ हैं। जो व्यक्ति ईर्ष्या, क्रोध आदि मानसिक विकारों की अपेक्षा उनके कार्य—दुष्टों को दबाना चुगली आदि के तुच्छ दमन के कार्य में लगा रहता है, उलटे उसकी ही एकत्रित शक्तियों का क्षय हो जाता है। अन्दर ही अन्दर ईर्ष्या की अग्नि सुलगती रहकर समस्त मौलिकता, साहस एवं नवोत्साह को मार डालती है। अपनी अच्छी बुरी अवस्था के जिम्मेदार हम स्वयं ही हैं। दूसरों पर व्यर्थ कलंक-कालिमा पोतने की भूल कदापि न करें। स्वयं अपनी उन्नति करें दूसरों को अपने मार्ग का कंटक कदापि न समझें।

जो स्खलितिएँ, प्रतिकूलताएँ, खराबियाँ और हानियाँ दूर नहीं की जा सकतीं, जो तीर हाथ से निकल चुका है जिसके बारे में आप बेबस हैं, उस पर बैठे-बैठे चिन्ता करना, पछताना आत्मग्लानि के शिकार रहना, बार-बार घूम फिर कर उसी का शोक मनाते रहना एक भयंकर भूल है। इस चिन्ता की आदत को त्याग देना ही श्रेष्ठ है।

तनिक सोचिये, यदि आपका मित्र, परिवार का कोई सदस्य स्वर्गवासी हो गया है, तो अब उसके विषय में चिन्तित होने से क्या लाभ ? आपके पुत्र-पुत्री का पत्र काफी दिनों से नहीं आया है, आप कई पत्र भी लिख चुके हैं पर उत्तर का अभाव ! अब आप क्या करें ? तार दे दीजिये, साथ ही एक लम्बा पत्र लिख दीजिये। बस अब चिन्ता छोड़ दीजिए। आपने अपना-सा सब कुछ कर दिया। अब व्यर्थ की चिन्ता से क्या लाभ ?

७. चिन्ता न कीजिए—चिन्ता छोड़िये, कहने का तात्पर्य यह नहीं कि आप प्रयत्न न करें। आप पूरी कोशिश कर डालिए, कोशिश में कोई कसर मत छोड़िये। उसके उपरान्त चिन्ता छोड़ दीजिये। जो विधि का विधान बदला नहीं जा सकता, जो सुधार की सीमा के बाहर है, उस पर व्यर्थ चिंतित होने से क्या लाभ ? चिन्ता में फँसकर व्यर्थ शक्ति-क्षय करने की भूल मत कीजिए।

मरा हुआ व्यक्ति चिता से वापस नहीं आयगा। व्यापार में हुई आर्थिक हानि, या हारा हुआ मुकदमा चिन्ता से नहीं जीता जा सकता। घर से भागा हुआ लड़का कलपने, रोने, पीटने से वापस नहीं आ सकेगा। चोरी हुआ माल चिन्ता से

पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता। गिरता हुआ स्वास्थ्य चिन्ता से और भी जल्दी गिरता जायगा। परीक्षा में फेल होकर आत्म-हत्या करने से क्या पास हो सकेंगे? कदापि नहीं। घर में छोटे-बड़े झगड़े, टंटे हरएक के यहाँ चलते हैं जो समय पाकर स्वयं ठीक हो जाते हैं। जहाँ आपका कोई वश नहीं, उन बातों पर व्यर्थ चिंतित होना एक भूल है।

८. हठी न बनिए—चरित्र में दृढ़ता और अपने कार्य के प्रति लगन बहुत उत्तम गुण हैं, किन्तु ज़िद्दीपन से अपने ही मत, विचारधारा या आदर्श पर डटे रहना एक भूल है। जिस गुण की सर्वाधिक आवश्यकता है, वह चरित्र की परिस्थितियों के अनुकूल लचक (Flexibiliity) अर्थात् परिवर्तित हो जाना है। आपका अफसर न जाने किस प्रकृति का व्यक्ति हो। उसकी धारणाएँ भी विभिन्न हो सकती हैं। यदि आप लचक कर अपने को उसके अनुसार ढाल सकें, अपने को बदल कर अपना काम निकाल सकें, ज़िद न करें, तो आप व्यवहार-कुशल हैं। काँच लचक नहीं सकता; टेढ़ा होते ही टूट जाता है, बेंत लचकीली होने से ही प्रत्येक स्थिति में सफल होती है। संसार में काँच की तरह दृढ़ रहने से आप टूटेंगे, इधर-उधर बुरे बनेंगे, संसार में असफल, ज़िद्दी, सनकी कहे जायेंगे। बेंत की तरह लचकीले, परिस्थिति के अनुसार ढलने का गुण धारण कर आप सर्वत्र प्रेम तथा आदर के पात्र बनेंगे। हो सकता है, बाद में आपके व्यक्तिगत मत या धारणाएँ भी दूसरे स्वीकार कर लें, किन्तु पहले तो आपकी लचक ही आप की सहायक होगी।

ज़िद्दी और अड़ियल स्वभाव के मत बनिए। विद्वान् भी

जिद से सनकी कहलाता है। आज आप जिस बात पर जिद कर रहे हैं; कल सम्भव है वह आपको स्वयं ही गलत प्रतीत होने लगे। यदि आप लचक कर कुछ दूसरों की सुनें, तो उनका सार तत्त्व ग्रहण कर सकेंगे और अपनी विचारधारा को स्थिर बना सकेंगे।

जब हम चरित्र में लचक धारण करने को कहते हैं, तो हमारा तात्पर्य यह नहीं कि आप दूसरों के अनुचित, त्रुटिपूर्ण तर्कपूर्ण मन्तव्य को स्वीकार कर ही लें। आप कुछ देर के लिये उसके सामने उसका मन्तव्य स्वीकार कर लीजिए पर कीजिए अपने मन की बात। इससे दूसरे व्यक्ति के अहंभाव की रक्षा हो जायगी और वह आपका मित्र बन जायगा।

एक व्यक्ति ने एक विद्वान् की पुस्तक की पाण्डुलिपि में कुछ त्रुटियां निकालीं और उन्हें सुधारने को कहा। विद्वान ने उस व्यक्ति के समक्ष काटकर उसके अनुसार लिख लिया। वह प्रसन्न हो उठा पर उसके चले जाने के उपरान्त पुनः ज्यों का त्यों कर दिया! ज़रा-सी लचक से वह व्यक्ति भी प्रसन्न हो उठा, विद्वान् का कुछ न बिगड़ा।

दूसरों के मनोभावों का आदर कीजिए

१. प्रत्येक व्यक्ति आदर्श है – क्या आपको विदित है कि एक बड़ा चोर, पक्का डाकू, अनुभवी हत्यारा भी अपने आपको निंद्य नहीं समझता ? अपनी बुद्धि सभी को सर्वोत्कृष्ट लगती है। अपने किये हुए कार्य ही युक्तिसंगत प्रतीत होते हैं। अपना दृष्टिकोण सबसे अधिक श्रेयस्कर लगता है। एक हत्यारा हत्या करने के पश्चात् यह नहीं मानता कि उसने कोई बड़ा अपराध किया है, न चुराते समय चोर के मन में ही यह बात आती है कि वह कोई असुन्दर कार्य कर रहा है। हत्यारे की दृष्टि से हत्या करना, चोर के विचार से चोरी करना युक्तिसंगत है। हममें से प्रत्येक के कार्य हमारे निजी दृष्टि-कोणों से सर्वोपरि हैं। दूसरे के काम में हम छिद्रान्वेषण कर सकते हैं, सुन्दर सुन्दर आदर्श दिखा सकते हैं, उत्तम पथ का निर्देश भी कर सकते हैं किन्तु हम यह मान लेते हैं कि हम स्वयं आदर्श हैं, जो कार्य करते हैं वह सब से उत्तम होता है। हमें छोड़कर दूसरा उस कार्य को इतनी उत्कृष्टता, कलात्मकता, एवं परिपूर्णता से नहीं कर सकता जितनी उत्तमता से हमने किया है।

२. स्वत्व की स्वयंभू वृत्ति—हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को आदर्श का नमूना मानता है। अपनी निर्बल-ताओं एवं क्षुद्रताओं में भी हम अपने-आपको पूर्ण मानते हैं। हमें अपनी बुराइयां सुननी अप्रीतिकर लगती हैं। हम नहीं

चाहते कि दूसरे उसका निर्देश करें या उसकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करें। हम नेत्र खुले रखकर भी निर्बलताओं की ओर से आंखें नीची रखना चाहते हैं। अपनी सम्मति, वस्त्र, घर, दृष्टिकोण, विचार, बुद्धि और श्रेष्ठता के लिए मनुष्य को स्वाभाविक पक्षपात है।

३. स्पर्द्धा एवम् ईर्ष्या का प्रवेश—जब मानव जीवन सैंकड़ों कठिनाइयों और खतरों से भरा होता है, तब उसकी असहाय अवस्था की देन स्वत्व की स्वयंभूवृति है।

जो वस्तु अपनी है उसकी रक्षा के लिये मनुष्य कुछ भी उठा नहीं रखता। 'स्वत्व-अहं' की स्वयंभूवृत्ति सभ्यता के उन्नत युग में स्वत्व की होड़, दूसरे को नीचा दिखाना और स्वयं अपने दृष्टिकोण को ही सर्वोपरि प्रमाणित करना के रूपों में प्रकट होकर सामाजिक वैषम्य का प्रधान कारण बन गयी है। स्पर्द्धा एवं ईर्ष्या अहंवृत्ति में रुकावट आने से समाज में प्रविष्ट हुई हैं।

समाज में आज ईर्ष्या है तो इसीलिए कि हम एक दूसरे के दृष्टिकोणों को नहीं समझना चाहते और यदि समझते भी हैं तो उसके अनुसार कार्य नहीं करते। जो व्यक्ति दूसरे के मनोभावों के मार्ग में विघ्न डालता है, वही ईर्ष्या का कारण बनता है। समाज में फैले हुए अनेक झगड़ों, समस्याओं, एवं प्रतियोगिताओं के मूल में एक दूसरे के मनोभावों का विभ्रम है। परदोष-दर्शन में भी अपने स्वत्वों को दृढ बनाने, उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से (Indirectly) दूसरे से ऊंचा सिद्ध करने का प्रपंच है।

४. आलोचना स्वत्व को ठेस पहुँचाती है—दैनिक जीवन में आलोचना से जो भयंकर कृत्य होते हैं उनसे प्रत्येक व्यक्ति थोड़ा बहुत परिचित है। माता-पिता अपने छोटे शिशुओं की आलोचना करते नहीं थकते; मालिक नौकर की शिकायत करते-करते नहीं अघाता; अध्यापक विद्यार्थियों की टीका-टिप्पणी करता है; दूकानदार ग्राहकों की मूर्खता के ढोल पीटता है; वक्ता सुनने वाले की नासमझी पर आठ-आठ आँसू रोता है, जज हत्यारे, चोरों की अज्ञानता पर क्षोभ प्रकट करता है और हस्पताल में रोगियों की दशा देखता हुआ डाक्टर रोगियों को मन्दबुद्धित्व का उपहास बनाता है। पागलखाने का रक्षक अनेक पागलों को देख-देखकर सोचता है—"काश ये व्यक्ति अपने दृष्टिकोणों में परिवर्तन कर पाते ?" किन्तु हम यह नहीं सोचते कि छोटे-छोटे शिशु, नौकर, ग्राहक, श्रोतागण, हत्यारे रोगी, पागल—कोई भी अपने-आपको न मूर्ख समझता है और न इस बात को स्वीकार करने के लिए ही प्रस्तुत है। वह जैसा भी है, अपने आदर्शों से सर्वोत्तम है। उसके मनोराज्य में सब से ऊँचे जीवन का जो चित्र वर्तमान है उसके अनुसार वह अपना आत्मनिर्माण कर रहा है।

५. मनोभाव व्यक्तिगत हैं—प्रत्येक का मनोभाव आंतरीय है। उसे आप देख नहीं सकते। वह व्यक्तिगत (Personal) है, उसमें दूसरे का हिस्सा नहीं। भाव मनमें (हृदय में नहीं जैसा कि हम समझा करते हैं) उत्पन्न होते हैं। एक ही वस्तु को देखकर उसका प्रभाव भिन्न-भिन्न व्यक्तियों पर भिन्न-भिन्न पड़ सकता है। यदि हम सूर्यास्त का सुन्दर दृश्य देखें तो हमारे मनोभाव एक दूसरे दर्शक से भिन्न होंगे। एक कवि उसे

कुछ और ही समझेगा। किसान, मजदूर उसे किसी और ही रंग में लेंगे। सुन्दर चित्र, मनोहर प्राकृतिक दृश्य, गाना—इन सभी में कुछ के मनोभाव कुछ होंगे कुछ के दूसरे। एक हब्शी भी अपने विचित्र रंग, रूप, पोशाक, आभूषणों को सर्वोत्कृष्ट समझता है। सभ्यसमाज नित नया फैशन बदलता है। इनमें से प्रत्येक अपने आनन्द को अपने आदर्श को, अपने दृष्टिकोण को सबसे ऊँचा समझता है और दूसरे को ठहरा कर अपने 'अहं" भाव को प्रकट करता है।

६. संसार मनोभावों का बना है—"दुनियाँ बहुत बुरी है, समय बहुत खराब है, ईमानदारी का युग चला गया, चारों ओर बेईमानी छाई हुई है, सब लोग धोखेबाज हैं, धर्म धरती पर से उठ गया"—ऐसी उक्तियां जो व्यक्ति पुनः-पुनः उच्चारण करता है, समझ लीजिये कि वह स्वयं धोखेबाज है, बेईमान है। उसके मनोभावों का ही वह प्रकाश है जो उसके संसार का निर्माण पल-पल में कर रहा है। उसके मनोभाव ही चारों ओर इकट्ठे हो गये हैं। जो आदमी यह कहा करता है कि "दुनियां में कुछ काम नहीं है, बेकारी का बाजार गर्म है, उद्योग-धन्धे उठ गये, अच्छे काम नहीं मिलते", समझ लीजिये कि उसकी अयोग्यता उसके चेहरे पर छाई है और जहां वह जाता है अपने मनोभावों के दर्पण में ही सब वस्तुएँ निहारा करता है।

क्रोधी व्यक्ति जहां जायगा, कोई-न-कोई लड़ने वाला उसे मिल ही जायगा। घृणा करने वाले को कोई-न-कोई घृणित व्यक्ति मिल ही जायगा। अन्यायी मनुष्य को सब बड़े असभ्य और दण्ड देने योग्य दिखाई पड़ते हैं।

वास्तव में होता यह है कि अपनी मनोभावनाओं (Feelings) को मनुष्य अपने सामने वालों पर थोप देता है और उन्हें वैसा ही समझता है जैसा वह स्वयं है। जिसे दुनियां स्वार्थी, कपटी, गन्दी, दुखमय, कलुषित, दुर्गुणी, असभ्य दिखाई पड़ती है, समझ लीजिये कि इसके अन्तर में स्वयं दुर्गुणों, निर्बलताओं तथा न्यूनताओं का बाहुल्य है।

संसार एक अत्यन्त विशाल दर्पण है जिस में हम नित्य-प्रति के जीवन में अपनी भावनाओं की प्रतिकृति देखा करते हैं। जो व्यक्ति जैसा है उसके लिये इस सृष्टि में से वैसे ही तत्व आकर्षित होकर प्रकट हो जाते हैं। सतयुगी आत्माएँ प्रत्येक युग में रहती हैं और उनके पास सदैव सत्ययुग वर्तता रहता है।

७. दूसरे के मनोभावों को अपनाइए—आप जिस स्थिति जिस कार्य या जिस क्षेत्र में हों, अपने से काम पड़ने वाले व्यक्तियों के स्वभावों का अच्छी तरह अध्ययन कीजिये, उनके आदर्शों, दृष्टिकोणों, सम्बन्धों, भावों से परिचय प्राप्त कीजिये। उनके प्रत्येक कार्य को गहरी अन्तर्दृष्टि से निहारिये और उनका मनोविश्लेषण कीजिये।

आप अपने आप से पूछिये—आखिर यह व्यक्ति चाहता क्या है? इसके मस्तिष्क में वस्तुओं का आदर्श-स्वरूप कैसा है? यह किस-किस वस्तु से घृणा करता है और किस-किस को उत्तम मानता है? अपने नौकरों से यह कैसा काम लेना चाहता है? इसकी प्रिय वस्तुएँ (Hobbies) क्या हैं? इसके अन्तःकरण में सौंदर्य का क्या परिमाण (Standard) है?

आचार-क्षोभों (Moral emotions) का सम्बन्ध मनुष्य

की नित्यप्रति की क्रियाओं से होता है और उन्हीं के सूक्ष्म अध्ययन से अच्छाई या बुराई का निर्धारण किया जा सकता है। आचारक्षोभ हमारे नित्यप्रति के कार्यों के न्यायाधीश हैं। उन्हीं के अवलोकन से हमें व्यक्तियों के स्वभावों का ज्ञान प्राप्त होता है। हमारी जांच जितनी अच्छी होगी, उतने ही अंशों में हम समाज से हिलमिल कर निर्वाह कर सकेंगे।

आप किसी व्यक्ति से उसके निजी आदर्शों के विषय में बातचीत कीजिये और उसके मनोभावों के प्रति सहानुभूति दिखाइये, उसके विचारों की श्रेष्ठता जताइये। बस, आप उसे अपने वश में कर सकेंगे। वह आपसे अपने विषय में बातें करते नहीं थकेगा।

यदि तुम किसी को नाराज़ कर अपना शत्रु बनाना चाहते हो तो उसके मनोभावों को कुचल दो, उसकी बातें काटो और अपनी ही अपनी हाँको।

अतएव जब तुम समाज में दूसरे व्यक्तियों से वार्त्तालाप या व्यवहार करने निकलो तो यह स्मरण रखो कि तुम मिट्टी के पुतलों से बातें नहीं कर रहे हो प्रत्युत ऐसे मनुष्यों से व्यवहार कर रहे हो जिनमें भावों का प्रभुत्व है। भाव के उस जलाशय में तुम्हारी प्रत्येक बात अद्भुत लहरें उत्पन्न करती हैं, भिन्न-भिन्न क्षोभ उठकर मन के समरांगण में युद्ध करते हैं। मध्य में ऐसी मनःस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं जिनके कारण कार्यशैली कुछ और की और बन जाती है।

८. दूसरों के गर्व की रक्षा कीजिये—स्मरण रखिये, प्रत्येक व्यक्ति अपने गर्व के भङ्ग होने पर लड़ने मरने को

तैयार हो सकता है। गर्व (Pride) ऐसी ही प्रिय भावना है। हम प्राण देकर भी इसकी रक्षा करना चाहते हैं। दूसरों के सामने अपनी हेठी नहीं कराना चाहते। हमारी यही धारणा रहती है कि हमारा मस्तक ऊँचा रहे। कोई हमारी ओर ऊँगली न उठा सके। हमारी निर्बलताओं या न्यूनताओं की चर्चा न करे।

उदाहरणार्थ, आपकी पत्नी आज स्वादिष्ट भोजन नहीं बना सकी। मिर्च ज्यादा पड़ गई है, दाल कच्ची है, रोटियां भी जल गई हैं। आप उससे यह न कहिये कि तुम्हें भोजन बनाना नहीं आता, तुम दाल-रोटी तक बनाना नहीं सीख सकीं। इसके स्थान पर आप कहिये कि "आपके भोजन का स्टैन्डर्ड उतना ऊँचा नहीं है जितना नित्य रहता है। तुम्हारे हाथ के भोजन के सामने हमें दूसरे के हाथ का अच्छा नहीं लगता। इस कला में तुम्हारे समान निपुण बहुत कम हैं।" इस प्रकार के वाक्यों से पत्नी के गर्व की रक्षा हो सकेगी और वह आप को प्रसन्न करने के लिये ऊँचे स्टैन्डर्ड का भोजन तैयार किया करेगी।

दूसरे के गर्व को उत्तेजना तथा बढ़ावा देने से तथा स्तुति करने से उसका मान बढ़ता है और प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न होता है। बड़े-से-बड़ा और छोटे-से-छोटा व्यक्ति अपने गर्व की रक्षा करना चाहता है। दूसरों की दृष्टि में अपना अतिशयोक्तिपूर्ण स्वरूप देखने को लालायित रहता है।

९. यदि आप अध्यापक हैं तो—विद्यार्थियों के गर्व की रक्षा कीजिये। सीधी-सादी भाषा में उनकी त्रुटियां बतलाने के स्थान पर इस प्रकार घुमा-फिरा कर आलोचना कीजिए कि

उन्हें यह प्रतीत न हो कि आप उनकी मानहानि कर रहे हैं। एक मित्र की तरह कहना प्रारम्भ कीजिये। अपने शिष्यों के दिल को पकड़ लीजिये। उनकी गहराइयों में प्रवेश प्राप्त कीजिये। यदि आपने एक बार उनका विश्वास (Confidence) प्राप्त कर लिया तो आप उन पर खूब अच्छी तरह राज्य कर सकते हैं। विश्वास तब मिलेगा जब आप उनके गर्व को फुलाते रहेंगे। उनके सामने उन्हीं का अतिरंजित स्वरूप प्रस्तुत कर सकेंगे।

१०. यदि आप पत्नी हैं तो—स्मरण रखिये कि स्त्री जितनी ही कोमल, सौम्य, मधुर हो वह पुरुप को उतनी ही प्रिय लगती है। जो स्त्री पति के मनोभावों की रक्षा करती है, उसकी किसी प्रकार पौरुप-श्रेष्ठता के गर्व को फुला देती है, उसका बढ़ा-चढ़ा रूप दिखाती है, अपने आप एक ऐसा दर्पण बन जाती है जिसमें पति अपने पुरुपोचित गुणों का पूर्ण विकास पाता है—वही स्त्री पुरुप को पसन्द आती है। पुरुप की यह इच्छा होती है कि उसकी पत्नी उसकी श्रेष्ठता जताये, साहसिक कार्यों की प्रशंसा करे, विफलताओं में समवेदना प्रकट करे, गर्व को उत्तेजित करती रहे और अपनी डींग न मारे। पति पत्नी को अपने से नीचा ही देखना पसन्द करता है, क्योंकि ऊँचा उठने पर उसकी पौरुप-श्रेष्ठता, गर्व, अहंभाव को धक्का लगता है।

११. यदि आप पति हैं तो—यह याद रखिये कि पत्नी का सौंदर्य, गृह-निपुणता, प्रेम की प्रशंसा करना, स्तुत्य वाक्यों का प्रयोग, बढ़ावा देना, चाटुकारिता, बात बनाना पति के लिये वैसे ही आवश्यक है जैसे जीवन के लिये श्वास। इसरो

पत्नी के गर्व की रक्षा होती है। वह अपनी श्रेष्ठता का प्रतिबिम्ब देखती है। यदि आप सफल नायक बनना चाहते हैं तो यह स्मरण रखें कि बढ़ावा, प्रशंसा और बातें बनाना स्त्री-जीवन के लिये सर्वश्रेष्ठ प्रोत्साहक एवं तीव्र उत्तेजक हैं। पत्नी के गुणों का अतिशयोक्तिमय वर्णन करो, उसका आदर करो, उसके कार्यों पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करो और इन सब के लिये उसकी अकारण झूठी प्रशंसा भी करो।

१२. यदि आप दुकानदार हैं तो—अपने ग्राहकों के गर्व की रक्षा कीजिये। "आप के लिये तो यह कपड़ा ठीक है, यह तो निम्न श्रेणी वालों के लिये है।" ऐसा कहने से ग्राहक का गर्व बढ़ता है और आवेश में आकर वह बढ़िया वस्तु खरीद लेता है। मुँह-माँगे दाम दे जाता है। उसके मनोभावों को जानने की कोशिश कीजिये, फिर उसी के अनुसार उसकी भावनाओं को उत्तेजना प्रदान कीजिये। अपने माल की इस प्रकार प्रशंसा कीजिये कि ग्राहक उसे समझ न सके। उसकी भावनाएं हठात् वस्तु लेने को चंचल हो उठें। और वस्तु खरीद लेने पर ही उसको धैर्य हो। यदि आप ग्राहक से लड़ने को प्रस्तुत हो जायेंगे, या उसे छोटा समझकर उसके गर्व को उत्तेजित नहीं करेंगे तो वह क्षुब्ध होकर चला जायगा और शायद गालियां भी सुना जाय। दुकानदार को अतिकोमल, विनम्र, सौम्य भाषा का प्रयोग करना चाहिये।

ग्राहक अपनी महत्ता चाहता है। गर्व की रक्षा के लिये प्रस्तुत रहता है। अतः उसकी इन्द्रियों को, भावों को भड़काइये और बतलाइये कि बिना उस वस्तु के उसका कार्य नहीं चल सकता, न पूर्ण तुष्टि ही हो सकती है।

१३. यदि आप उपदेशक या वक्ता हैं तो—श्रोताओं की भावनाओं को उत्तेजित कीजिये, भाव के समुद्र में तूफान ला दीजिये, सुनने वालों की विचारशक्ति को दबा कर भावनाओं को भड़काइये और सामयिक रुचिकर बातें नवीन ढंग से कहिये। उत्तेजना की अधिकता (Intensity) का प्रभाव चेतना (Feelings) पर बहुत पड़ता है। साधारण उत्तेजना से हमारे ज्ञान-तन्तुओं पर भी साधारण ही प्रभाव पड़ता है। परन्तु तीव्र उत्तेजना से हमारे मनोभाव भी शीघ्र उत्तेजित हो उठते हैं। अपने व्याख्यान देते समय कभी श्रोताओं को हँसाइये, और कभी अपने भाव से उन्मत्त कर दीजिये! श्रोता उसी की बातें पसन्द करते हैं जो उनके मिथ्या गर्व को फुला देता है। अपने आपको एक ऐसा दर्पण बताइये जिस में श्रोतागण अपना बढ़ा-चढ़ा रूप देख सकें।

१४. यदि आप माता-पिता हैं तो—बालकों के गर्व को प्रेरणा दीजिये। पिता का बालकों के संस्कार-निर्माण में बड़ा भारी हाथ होता है। "पिता मेरे लिए आदर्श हो।"—बालक की यह कामना उसमें प्रबल होती है। आचार-निर्माण में एक बात जो माता-पिता को दृष्टिगत रखनी चाहिए वह यह है कि आचरण करते समय, या कोई आज्ञा देते समय बालक के गर्व को हानि न पहुँचे। सदाचार की भावनाएँ तभी स्वस्थ मन से होती हैं जब बालक के आत्म-सम्मान को विकसित होने का प्रचुर अवसर दिया जाता है। बच्चों को मार-पीट करना, कटु शब्द बोलना, उनका बार-बार अपमान करना मानसिक विश्वास में बड़ा अहितकर है।

घर में स्कूल होना चाहिये और स्कूल में घर—यह सिद्धांत व-शिक्षण का एक प्रमुख आधार है। बालक के मानसिक वेकास में घर का महान् और प्रथम स्थान है। अतः हमें शेशु के साथ एक सभ्य पुरुष का-सा व्यवहार करना चाहिये। गालियों द्वारा जो प्रेम व्यक्त होता है उसके मूल में घृणा, रोष, रुव एवं प्रतिहिंसा है। बालक की अन्तरात्मा गालियें, डांट, फटकारें पसन्द नहीं करती। वह अन्दर ही अन्दर रुष्ट होकर प्रतिशोध-सा लेना चाहती है।

बालक की जिज्ञासा, उसकी मनोभावनाओं तथा आशाओं को मत कुचलिये। पग-पग पर बालक को मत पीटिये। बल्कि निर्भय एवं निश्चिन्त रहने दीजिये। माता-पिता को सच्चा आनन्द बालक का पोषण कर, उसका मानसिक विकास करके मिलना चाहिए, उसे पद-दलित कर या दबाकर नहीं। बालक के दृष्टिकोण को समझिये और फिर बुद्धिमानी से उसमें परिवर्तन कीजिये, बर्बरता से नहीं।

आप किसी से मत डरिये

यदि आप अपनी निर्बलताओं से भयभीत होंगे, तो स्मरण रखिए वह भय द्विगुणित होकर आप को अधिकाधिक क्षुब्ध करेगा। अप्रत्यक्ष रूप से, अपनी निर्बलताओं का चिन्तन आपकी इच्छा, संकल्प, कार्य-क्षमता की शक्तियों का क्षय करेगा। दिन-रात अपनी निर्बलताओं के चिन्तन का घातक प्रभाव मानव-मन पर पड़ता है। अपने विपक्ष में सोचना, विचारना अपने पतन का मार्ग तैयार करना है।

यदि आप अपने शत्रुओं से डरेंगे, तो आप की त्रुटियां स्वतः आपके ही विपक्ष में कटिबद्ध हो जायँगी। शत्रु-भय की दूषित कल्पना कितने ही उदीयमान पुरुषों के अन्तःकरण को श्मशान भूमि में परिणत कर देती है।

मैं ऐसे अनेक व्यक्तियों को जानता हूँ जो अर्द्ध विकसित, मानसिक अवस्था में कल्पित शत्रुओं या अपनी कमजोरी की मिथ्या भावना के चंगुल में फंस कर क्रमशः अपनी कार्य-शक्तियों का क्षय कर रहे हैं। वे चुपचाप किसी के डर से आतुर हैं। प्रायः कभी न आने वाली विपत्तियों तथा कल्पित भय की भावना से वशीभूत होकर अपने साहसपूर्ण प्रयत्नों एवं महत्वाकांक्षाओं को चूर्ण-चूर्ण कर बैठे हैं।

हमारे मन की निर्बल आदतों को जन्म देने वाला सब से बड़ा विकार "भय" है। हम योंही डरा करते हैं। भय हमारे गुप्त मन में संस्कारों के रूप में बन जाता है। फलतः अविश्वास,

अकर्मण्यता, अधैर्य, ईर्ष्या, असन्तोष और मन की चञ्चलता इत्यादि मनोविकार उत्पन्न होते हैं। कल्पित भय की भावना मन से निकाल देने पर ये विकार स्वतः नष्ट हो जाते हैं। मूलोच्छेदन कर देने पर विषवृत्त की शाखाएँ-उपशाखाएँ स्वतः शुष्क एवं निर्जीव हो जाती हैं।

कितने ही व्यक्ति साधारण सी बातों या स्वयं अपने कार्य, चरित्र, या योजनाओं के बारे में दूसरों की राय लेने के बड़े इच्छुक होते हैं। अमुक व्यक्ति के मेरे विषय में क्या-क्या विचार हैं? अमुक व्यक्ति मेरे चरित्र के बारे में क्या सोचता होगा? साधारण जनता ने मुझे कैसा समझा है? जब मैं बाजार में से निकलता हूँ तो वे मेरी साख की बाबत क्या सोचते हैं? मेरे बाल-बच्चों, पत्नी, परिवार आदि की शक्ति के विषय में क्या-क्या फैला हुआ है? जब मनुष्य इस प्रकार के तर्क-वितर्कों में फँस जाता है, तो समझना चाहिये वह कल्पित मानसिक शत्रुओं के भय से ग्रसित है। उसके मन में निर्बलता की भावना छिपी हुई है और वह तज्जनित भय-चित्रों की प्रतिच्छाया मात्र यत्र-तत्र देख रहा है। जिस प्रकार दूसरों का दोष-दर्शन एक प्रकार का मानसिक विकार है, उसी प्रकार निरन्तर स्व-दोषों का चिंतन भी घृणित कार्य है।

बाईबिल में एक बड़ा उपयोगी मनोवैज्ञानिक सूत्र मिलता है—"तुम्हारे पास जो वस्तु अधिक है, वह और भी अधिक तुम्हें प्राप्त होगी, जिस वस्तु की कमी है, वह जो थोड़ी-बहुत है वह भी छीन ली जायगी।"

यदि आप में निर्बलता का आधिक्य है, तो वह निरन्तर चिन्तन द्वारा आपको और अधिक निर्बल कर सकता है।

दूषित छाया आपके कार्यों पर नहीं पड़नी चाहिए। आपका अन्तःकरणरूपी दर्पण स्वच्छ रहना चाहिए, जिसमें आप अपना अकलुष स्वरूप देख सकें। उसे आत्मश्रद्धा, विवेक और निष्ठा की रेत से रगड़ कर प्रशस्त कर डालिए। तत्पश्चात् किसी प्रतिकूल भावना का उस पर प्रभाव न पड़ेगा।

मन में आत्म-श्रद्धा, विश्वास और अपनी महानता के विचार दृढता से स्थिर कर लेने पर आप अपने जीवन में एक नया पृष्ठ खोल सकेंगे। तभी आप मानव-जीवन का दिव्य उद्देश्य समझेंगे और उसका उचित आदर करना सीखेंगे।

विज्ञान का अकाट्य सिद्धांत है कि एक ही स्थान पर दो परस्पर-विरोधी वस्तुएँ नहीं टिक सकतीं, जब आप आत्म-विश्वास के दिव्य विचारों से मनोमन्दिर को भर लेंगे, उसी भावना में तन्मय हो जाएँगे, तो कल्पित भयों का अन्धकार किस प्रकार टिका रह सकता है ?

निर्भय होकर जिएँ। अपनी दुर्बल भावनाओं को, अपने, ऊपर विजय न प्राप्त करने दें। आप ईश्वर के दिव्य अंश हैं। परमपिता परमेश्वर के राज्य में आप पूर्ण निर्भय हैं

यदि आप कभी हताश होकर भय या कृपणता का एक शब्द भी बोलेंगे, या स्थान देंगे, तो आपके विपत्तियों को मानो आप पर आधी विजय प्राप्त हो चुकी होगी। मन का वातायन खोलिए और धैर्य, दृढता आत्म-श्रद्धा का निर्मल प्रकाश अन्तःकरण में प्रविष्ट कर दीजिए। प्रकाश, आपको दिव्य प्रकाश चाहिए।

यदि आपके पास साहसकी पूंजी है तो उसके सम्पर्क से शुभ्र, पौरुषपूर्ण विचारों की और भी अभिवृद्धि होगी। जैसा मन में बीज रहेगा, वैसा ही वृक्ष एवं फल प्राप्त होगा। जो बीज थोड़ी है, उसका कारण यह है कि उसका आप उपयोग नहीं कर रहे। अतः एक समय ऐसा आ सकता है, जब इसका पूर्ण रूप से क्षय हो जाय।

यदि आप दिव्य प्रकाश से अपना अन्तरिक्ष आलोकित करना चाहते हैं, तो हृदय के गहनतम स्थल में भव्य विचार स्थिर कीजिए। उज्ज्वल भविष्य की भावना कीजिए—

"हमारा भविष्य प्रकाशमय होगा, हमें यश, प्रतिष्ठा एवं नेतृत्व का गौरव प्राप्त होगा, हम श्रेष्ठतम नागरिकों जैसे कार्य करेंगे, हम निश्चित एवं निःशंक होकर जीवन-निर्वाह कर सकेंगे, हमारा अन्तःकरण श्रद्धा एवं उत्साह से परिपूर्ण रहेगा। और हम परिपुष्ट भावना में रमण करेंगे।"

ऐसी पवित्रसंकल्पमयी विचारधारा में निवास करने से कल्पित भयों का समूल नाश हो जाता है।

तुम्हारी व्यर्थ की चिन्ताएँ, तुम्हारे कल्पित भय, तुम्हारा क्षोभ स्वयं आपके अपने उत्पन्न किये हुए मानसिक विकार हैं। प्राकृतिक रूप से, इन दुष्ट भावनाओं से आप का कोई साहचर्य नहीं है। आप पूर्ण निर्भय हैं। आपको अपने सत्पथ पर आरूढ रहना चाहिए। खिल्ली उड़ाने वाले थोथे व्यक्तियों से तनिक भी विचलित नहीं होना चाहिए। आप चाहें तो इन कंटकों को गले में हार की तरह धारण कर सकते हैं।

आप का वास्तविक स्वरूप अत्यन्त पवित्र है। आप सत्, चित्त, आनन्द-स्वरूप हैं। किसी प्रकार के अनिष्ट विचार की

उन व्यक्तियों की कुशल स्थिति का अवलोकन कीजिए, जो सिद्धहस्त व्यापारी हैं, अथवा किसी सार्वजनिक क्षेत्र में नेतृत्व कर रहे हैं। देखिए, वे किस प्रकार निःसंकोच होकर अत्यन्त साहसपूर्वक अपना दृष्टिकोण प्रकट करते हैं, कैसी प्रवीणता से बोलते हैं, उनके हाथ, आँखें और अंग-संचालन कैसा प्रभावोत्पादक होता है। उनमें कोई ज्ञान का अतुल कोष भरा हुआ हो, सो बात नहीं है, प्रत्युत उनकी बोल-चाल की कुशलता, प्रभावशालिनी वक्तृत्व शक्ति ने ही उन्हें वह श्रेष्ठता प्रदान की है। एक छात्र काम पड़ने पर अपने अध्यापक से घण्टों बात-चीत कर लेगा, किन्तु वह अपने सहपाठियों में एक छोटा सा भाषण न दे सकेगा, थर-थर काँपने लगेगा। एक सेठ जी हैं, जो अपने जिले के बड़े-से-बड़े अफसर से गम्भीर मंत्रणा कर लेंगे, किन्तु अपनी बिरादरी के दस-बीस व्यक्तियों के बीच में भाषण देते हुए उनके होश गुम हो जायंगे। मान लीजिए, आपके धर्म या जाति के व्यक्ति इकट्ठे हो रहे हैं। उनमें सभी साधारण योग्यता के आदमी हैं। आप साहस करके कुछ बोलने खड़े होते हैं और "मैं आप सज्जनों के सम्मुख कुछ कहना चाहता हूँ...खड़ा हुआ हूँ।"—यह कहते कहते लजा कर बैठ जाते हैं। आप की यह कैसी दयनीय स्थिति है। आपके विचार मन में घुट कर दम तोड़ देते हैं। लोग आपको समझ ही नहीं पाते। और कभी कभी तो ऐसा होता है कि अपने विषय के पूर्ण मर्मज्ञ होते हुए भी आप मन मारे चुपचाप एक कोने में दुबके से बैठे रहते हैं। डरते हैं कि कहीं आपसे कुछ बोलने के लिये न कह दिया जावे, जबकि वहीं आप से भी कम योग्यता वाला एक नाटा सा व्यक्ति धाराप्रवाह बोल कर सब कुछ स्पष्ट कर देता है।

आप की प्रभावशालिनी वक्तृत्व शक्ति

उग्राय तवसे सुवृक्ति प्रेरय" (ऋ. ३०)

शक्तिशाली बनना हो तो वक्ता और कर्मवीर बनो
संकोच छोड़कर उचित विचारों को निधड़क प्रकट किया करो।

जिस व्यक्ति में अपने विचार मुख द्वारा बोल कर दूसरों पर व्यक्त करने की शक्ति है, उसके मुख से एक आकर्षण शक्ति निकल कर आसपास वालों को वश में कर लेती है। बोलने के गुण वाले व्यापारी के ग्राहक चटपट बन जाते हैं, एक क्षण में लाखों के वारे-न्यारे हो जाते हैं। राजनीतिक क्षेत्रों में राष्ट्रों के वारे न्यारे कुशल वक्ताओं के हाथ में रहते हैं। वकालत, अध्यापन, आफिसरी, पार्टियों, सभाओं आदि में भाषण देने के प्रभाव से सफलता लाभ की जा सकती है। इसी के बल पर जन समुदाय में धर्म, जाति, तथा देशाभिमान की अग्नि प्रज्वलित की जा सकती है। राज्यों में से अत्याचार सदा के लिए बहिष्कृत किया जा सकता है। वक्तृत्व शक्ति समस्त संसार की राज्य कर्त्री है। अनुकूल स्थिति, सद्गुणों का प्रदर्शन और अपने दृष्टिकोणों को दूसरों के सामने प्रकट करने और दूसरों पर अपने विचारों का प्रतिबिम्ब डालकर अपना प्रभाव जमाने के लिए यह आवश्यक है कि हम सार्वजनिक भाषण करना सीखें और अपने बोलने की शक्ति का विकास करें। जब तक हम भाषण-कला में निपुण नहीं होते, तब तक हम मूक पशुओं की भांति जिह्वा पर ताला डाले जीवन व्यतीत करते रहेंगे।

उन व्यक्तियों की कुशल स्थिति का अवलोकन कीजिए, जो सिद्धहस्त व्यापारी हैं, अथवा किसी सार्वजनिक क्षेत्र में नेतृत्व कर रहे हैं। देखिए, वे किस प्रकार निःसंकोच होकर अत्यन्त साहसपूर्वक अपना दृष्टिकोण प्रकट करते हैं, कैसी प्रवीणता से बोलते हैं, उनके हाथ, आँखें और अंग-संचालन कैसा प्रभावोत्पादक होता है। उनमें कोई ज्ञान का अतुल कोष भरा हुआ हो, सो बात नहीं है, प्रत्युत उनकी बोल-चाल की कुशलता, प्रभावशालिनी वक्तृत्व शक्ति ने ही उन्हें वह श्रेष्ठता प्रदान की है। एक छात्र काम पड़ने पर अपने अध्यापक से घण्टों बात-चीत कर लेगा, किन्तु वह अपने सहपाठियों में एक छोटा सा भाषण न दे सकेगा, थर-थर काँपने लगेगा। एक सेठ जी हैं, जो अपने ज़िले के बड़े-से-बड़े अफ़सर से गम्भीर मंत्रणा कर लेंगे, किन्तु अपनी बिरादरी के दस-बीस व्यक्तियों के बीच में भाषण देते हुए उनके होश गुम हो जायंगे। मान लीजिए, आपके धर्म या जाति के व्यक्ति इकट्ठे हो रहे हैं। उनमें सभी साधारण योग्यता के आदमी हैं। आप साहस करके कुछ बोलने खड़े होते हैं और "मैं आप सज्जनों के सम्मुख कुछ कहना चाहता हूँ"'खड़ा हुआ हूँ।"—यह कहते कहते लजा कर बैठ जाते हैं। आप की यह कैसी दयनीय स्थिति है। आपके विचार मन में घुट कर दम तोड़ देते हैं। लोग आपको समझ ही नहीं पाते। और कभी कभी तो ऐसा होता है कि अपने विषय के पूर्ण मर्मज्ञ होते हुए भी आप मन मारे चुपचाप एक कोने में दुबके से बैठे रहते हैं। डरते हैं कि कहीं आपसे कुछ बोलने के लिये न कह दिया जावे, जबकि वही आप से भी कम योग्यता वाला एक नाटा सा व्यक्ति धाराप्रवाह बोल कर सब कुछ स्पष्ट कर देता है।

आप भी वक्ता बन सकते हैं। आपके मस्तिष्क में बोलने और भाषण देने की वे सभी शक्तियाँ विद्यमान हैं, जिनसे सार्वजनिक जीवन में भाषण की कला सीखी जा सकती है। इस संसार में कोई ऐसी शक्ति या पदार्थ नहीं जो आप अपनी इच्छा शक्ति और सामर्थ्य से प्राप्त न कर सकें। आप में महान् शक्तियों का केन्द्र है। आप अनन्त शक्तिशाली हैं; आपके बल का पारावार नहीं। जिन साधनों को लेकर आप पृथ्वीतल पर अधिष्ठित हुए हो, वे अचूक ब्रह्मास्त्र हैं। इनकी शक्ति इन्द्र के वज्र से अधिक है। वाक्-शक्ति आप की विशिष्ट शक्ति है, जो दूसरे मनुष्यों से ऊँचा उठाती है। आप अपने शब्द शब्द से राष्ट्रों को हिला सकते हैं। देश, जाति और समाज को जाग्रत कर सकते हैं, लड़ाई झगड़े शान्त करा सकते हैं। निष्कर्ष यह कि अपनी संभाषण कुशलता से समाज और देश में कीर्ति प्राप्त कर सकते हैं। एकाउण्टेण्ट, स्टोरकीपर, दलाल, हकीम, होटल वाले, सामाजिक कार्यकर्त्ता, व्यापारी, दवा फरोश, कारखानेदार, ठेकेदार—प्रत्येक धन्धे के तथा प्रत्येक प्रकार के व्यक्ति भाषण देने की कला सीख कर अपनी कुशलता की वृद्धि कर सकते हैं। इससे भविष्य निर्माण हो सकता है, दूर-दूर तक विशाल श्रोतृ-समूह को मंत्र मुग्ध की तरह वश में किया जा सकता है।

१. वक्तृत्व कला की शिक्षा-पद्धति—आप पूछेंगे, वक्ता की शिक्षा कितनी होनी चाहिए? इसका कोई माप-दण्ड नहीं है। यदि आप भाषण कला सीख लें, तो साधारण शिक्षा से ही काम निकाला जा सकता है। हाँ, यदि ज्ञान अधिक है आप विद्वान् हैं, तो आपका भाषण साधारण योग्यता वालों

की अपेक्षा अच्छा होगा। देखा गया है कि अनेक बार साधु, फकीर, बाजार में तमाशा करने वाले जादूगर, दवायें बेचने वाले भोली जनता को अपने भाषण में बाँध लेते हैं। कितने ही अशिक्षित गंवार ऐसे प्रभावशाली होते हैं कि जब कुछ कहने लगते हैं, तो समाँ बँध जाता है। कभी-कभी अंग-संचालन का प्रयोग कर बड़ी मार्मिकता से बोलते हैं।

वक्तृत्व-कला एक प्रभावोत्पादक कला है। इसका आधार अपने प्रति श्रोताओं के मन में विश्वास करना है। भाषण का मूल्य श्रोताओं पर पड़ने वाला प्रभाव है। बिना शिक्षा तथा अपने विषय के ज्ञान के भाषण का प्रभाव अधिक काल तक स्थिर नहीं रह सकता। जितनी ही हमारी योग्यता होगी, जितनी ही गहरी हमारी शिक्षा-दीक्षा, संस्कार होंगे, जितनी ही दीर्घ हमारी पहुँच होगी भाषण में उतनी ही गहराई होगी, उतना ही प्रभाव होगा। कला, साहित्य, इतिहास, दर्शन, राजनीति आदि का अध्ययन-अन्वेषण आप के भाषण को सजीव बनाता है।

अमेरिका के डेल कार्नेगी ने भाषण देने की परिपाटी पर एक बड़ी सुन्दर पुस्तक लिखी है। उनके उद्योग से अमेरिका में सार्वजनिक भाषण कला की शिक्षा भी दी जा रही है। उनके भिन्न-भिन्न प्रकार के शिष्य हैं। उनका कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति भाषण की कला सीख सकता है। एक बार एक खिलाड़ी लूला हो गया। तब उसने लकड़ी का सामान बेचने वाली एक फर्म में किश्तों पर सामान बेचने का काम लिया। पहले वह मूक रहता, बोलते शर्माता, सभाओं में छिपता फिरता था। इसी बीच में उसने कार्नेगी की ख्याति सुनी

और उसने यह कला सीखी। अब वह वक्तृत्व कला के बल पर एक बीमा कम्पनी के सहयोग से प्रति वर्ष इतना कमा लेता है, जितनी कि उस कम्पनी की आय है, जिसमें वह पहले कार्य करता था। एक अन्य व्यक्ति, जो किसी चावल की मिल की कार्यसमिति का सदस्य था, डाइरेक्टरों की मीटिंग में बोलते हुए वह प्रायः घबरा जाता था। निराशा की अन्तिम श्वास लेकर वह कार्नेगी की कक्षा में भरती हो गया। कुछ मास अभ्यास के पश्चात् उसने इतना सुन्दर भाषण देना सीख लिया कि अब वे व्यक्ति जो उसके उच्चारण पर फब्तियाँ कसते थे, उससे अनेक बातों में परामर्श मांगते हैं।

वाक्-चातुर्य्य के लिए अधिक शिक्षा की आवश्यकता नहीं पड़ती। साधारण शिक्षा और अनुभव वाले व्यक्ति भी सीख कर अच्छे भाषण देने वाले हो जाते हैं। आपका क्षेत्र चाहे जो कुछ भी हो, जिस स्थिति में हो प्रयत्न और अभ्यास के द्वारा आप सफल वक्ता के गुणों की वृद्धि कर सकते हैं।

२. वक्ता के गुणों का विकास—वक्ता में दो गुण प्रचुरता से होने चाहिएँ। वे हैं निडरता और संकोचशून्यता। भाषण देना शिक्षा की अपेक्षा साहस और हिम्मत का काम है। हिम्मत करने से स्वयं शब्द आने लगते हैं, बात स्वयं निकलने लगती है। अतः मन में साहस, निर्भयता और आत्म-विश्वास धारण करना चाहिए। आप यह मान कर चलिये कि दूसरे आप की अपेक्षा कम जानते हैं। आप उनसे ज्यादा समझदार हैं। आप को अपने विषय का अधिक ज्ञान है। अतः आप दुबके न रहकर साहसपूर्वक सबके सामने आयेंगे और अपना दृष्टिकोण सब के सामने रखेंगे। मन से आत्महीनता

की ग्रन्थि निकाल दीजिए। भय आपके गुप्त मन में बैठ गया है। आप यों ही अपने आपको कमजोर और भीरु समझने लगे हैं। यह अज्ञात भय निकाल दीजिए। आप साहसी हैं, पौरुषपूर्ण हैं, किसी से दबते नहीं हैं, मन से क्षुद्रत्व, कमज़ोरी, बुद्धिहीनता, डरपोकपन की सब कुत्सित कल्पनाएँ निकाल फेंकिये। खड़े हो कर जो कुछ आप के दिल में हो बेधड़क बोलिये, निःशंक बोलिये, धाराप्रवाह बोलिये। इस बात की कुछ चिन्ता न कीजिए कि आप की पौशाक कैसी है? अथवा शब्द क्या निकल रहे हैं? कैसा भाषण चल रहा है? आप निरन्तर बोलते जाइये। इस प्रकार धीरे-धीरे आपके गुप्त मन का भय निकल जायगा। आप श्रोताओं में निडर बनते जायेंगे। मन से संकोच को निकाल डालना ही आधी विजय है। किसी प्रकार की चिन्ता, डर, या अपनी निर्बलता की भावना आपके मन में नहीं रहनी चाहिए। भय निकल जाने पर और त्रुटियां स्वयं निकल जायेंगी। भाषा में भी शुद्धता और स्पष्टता आ जायगी। पांच-सात बार आपने साहसपूर्वक बोलने का अभ्यास किया कि फिर आपको किसी के प्रोत्साहन या अनुरोध की आवश्यकता न रहेगी। आप स्वयं बोलने के अवसर की तलाश में रहेंगे। साहस सार्वजनिक जीवन की मूल आवेग शक्ति है। बाइबिल में तो साहस को ही जीवन कहा है। बोजाक लिखते हैं, "मेरी माँ मुझ से कहा करती थी, बेटा मैं तुझे अपने अनुभूति कोष से एक हीरा देना चाहती हूँ। मैंने कहा—कौन-सा है वह?" वह बोली. "साहसी को ही भगवान् मिलते हैं?" उस रोज मेरी आठवीं वर्षगांठ थी।

तब से आज तक मैं प्रातःकाल इस हीरे को प्रणाम करता हूँ। अच्छे वक्ता होने के लिए अपने साहस को बढ़ाते रहिए। निम्न-लिखित बातों का ध्यान रखें—

(क) तीव्र सहृदयता—जो बातें, तर्क या दलीलें जनता की मनोवृत्तियों को सामने रख कर कही जायंगी, वह श्रोताओं को रुचिकर प्रतीत होंगी और उनमें उन्हें रस आयेगा। ऐसे वक्ता जनता के हृदय से हृदय मिला कर अपनी रागिनी सुना सकते हैं। सहृदय वक्ता साहित्य और विशेषतः कवित्व शक्ति का प्रचुर प्रयोग करता है। सहृदय वक्ता सहज ही श्रोताओं की कोमल और मृदु अनुभूतियाँ, मधुर स्मृतियाँ या अभिनव कल्पनाएँ उभाड़ लेता है और उन्हें अपने विचारानुकूल बना लेता है। जनता के कोमलभाव उद्दीप्त हो उठने से भावावेश में वे ऐसी बातें भी मान लेते हैं, जो साधारणतः वे करना न चाहेंगे। जैसे कहीं धार्मिक उपदेश या कथावार्ता में यदि कुछ भजन या मधुर गीत स्वर ताल से गाये जाते रहें, तो धार्मिक विचारधारा काफी प्रभावशालिनी हो जाती है। भाषण के मध्य में यत्र तत्र गीत, कविताएँ, दोहे, सिद्धान्त वाक्य या दृष्टान्तों का उपयोग करने का और सहृदयता को जगाने, भावनाओं को उद्दीप्त करने का वक्ता को सदैव ध्यान रखना चाहिए।

(ख) शरीर द्वारा प्रकाशनशीलता—अंग-संचालन और अभिनय बोलने को प्रभावशाली बना देते हैं। मुखमण्डल पर हाव-भावों का प्रकाशन, अंगों का इधर-उधर उठना गिरना, विशेष अवसरों पर हाथ पटकना, मुट्ठी बन्द कर ऊँचा तानना, आवाज को ऊँचा-नीचा करना करते रहना चाहिए। ऐसा करने से श्रोताओं में तदनुसार भावनाएं प्रदीप्त हो उठती

है। जितने प्रसिद्ध गवैये, अभिनय में काम करने वाले कुशल पात्र तथा प्रभावशाली वक्ता हो गए हैं, रंगभूमि, राजनीति या समाज में लोकनायक हो गए हैं, वे अपने हाव-भाव अंग-प्रत्यंग-संचालन द्वारा भावप्रकाश करते रहे हैं। आप की सफलता इस तत्त्व पर निर्भर रहेगी कि वह कितने अंशों में *आपके मन के भाव, विचार या योजनाएं मुखाकृति द्वारा* प्रकट कर सकता है।

चेहरे या शरीर के प्रकाशनशील होने के लिए आपकी मांसपेशियों का लचीला एवं स्वतन्त्र होना आवश्यक है। प्रत्येक विचार और भावना के अनुरूप *परिणाम* वह वक्ता स्पष्ट कर पाता है, जो मांसपेशियों को सचेत करता है, अर्थात् भावना के अनुसार मुख पर नाना चित्र अंकित करता है। यदि मांस-पेशियाँ लचीली होंगी, तो विचार नस-केन्द्रों में प्रवेश करेगा और ठीक उसके अनुरूप मुखाकृति हो जाएगी। दूसरे शब्दों में, जिस व्यक्ति में इस प्रकार के भाव-प्रकाशन की विशेषता रहेगी, वह प्रभावशाली वक्ता बन सकेगा।

(ग) कुशाग्र बुद्धि—तत्क्षण नई बात, नई उक्ति और नई कल्पना प्रस्तुत कर सकना, तत्काल समय के अनुसार बात कहना और सोचना, पुराने उदाहरण और दृष्टान्त इकट्ठे करना, नए तर्क प्रस्तुत करना, जनता की भावनाएँ प्रदीप्त करना तथा उन्हें अमृत वर्षा के अनुरूप श्रोताओं पर उडेलना तीव्र बुद्धि का ही कौशल है। इसके लिए वक्ता के पास विभिन्न विषयक ज्ञान तथा गहन अनुभव, कई भाषाओं के साहित्य का ज्ञान होना अनिवार्य है। किस तर्क को कहाँ प्रस्तुत करना उचित होगा, कहाँ वह सबसे अधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध होगा,

कहाँ उसकी सर्वाधिक उपयोगिता है, किन-किन उदाहरणों से वह श्रोताओं पर अपना अभीष्ट फल प्रकट करेगा—यह सब कुशाग्रबुद्धि के ही चमत्कार हैं।

(घ) उत्तर में निपुणता (हाजिरजवाबी)—कभी-कभी वक्ता से तुरन्त प्रश्न किये जाते हैं। ये प्रश्न कभी जटिल और कभी हास-परिहासमय होते हैं। जो पूछा जाय, उसका कुछ न कुछ उत्तर आप को तत्क्षण दे देना चाहिए। आप का उत्तर ऐसा हो कि श्रोतृ-समाज को आगे और पूछने के लिए कुछ शेष न रह जाय।

हाजिर जवाबी का नाम लीजिए और आपकी स्मृति में अकबर तथा बीरबल का वह स्वच्छन्द, हास-परिहासमय युग हरा हो जायगा, जिसके विषय में आज भी अनेक उक्तियाँ प्रचलित हैं। हाजिरजवाबी एक ऐसा अद्भुत गुण है, जिससे समग्र श्रोतृ-समाज हँस उठता है। आनन्द की एक लहर सर्वत्र व्याप्त हो जाती है। जिसे उत्तर दिया जाता है वह निरुत्तर हो जाता है। उत्तम हाजिरजवाबी वही है, जब पूछने वाला चुप रह जाय, और अपने बचाव के लिए कुछ भी कहने को शेष न रह जाय।

हाजिरजवाबी के लिए यह आवश्यक है कि वह तत्क्षण कहा जाय, पूछने वाला निरुत्तर हो जाय, कोई बचाव संभव न हो, समस्त श्रोता हंस उठें; क्रोध, ईर्ष्या या कटुता जैसी कोई भावना किसी के मन में उत्पन्न न हो। ऊँचे दर्जे की हाजिरजवाबी में विद्वत्ता आनी चाहिए। कोई ऐसी बात न हो, जिसका शूल चुभता हुआ रह जाय। व्यंग्योक्तियाँ शिक्षाप्रद होनी चाहिएँ और शिष्टता की सीमा का अतिक्रमण न करें।

ऐसी अनेक उक्तियों में शिष्ट और उच्चस्तर का विनोद पाया जाता है। कुछ उदाहरण देखिए—

महात्मा गांधी जैसे गंभीर प्रकृति के व्यक्ति के पास भी हाज़िरजवाबी जैसी अद्भुत कला थी। उनके इंगलैण्ड जाते समय एक अंग्रेज पत्रकार ने उनसे यकायक एक प्रश्न कर डाला, "आप इंगलैण्ड में कौन वस्त्र पहनियेगा?" महात्मा जी ने तत्काल उत्तर दिया, "आप लोग प्लस फोर पहनते हैं, मैं माइनस फोर पहनूंगा।"

इसी प्रकार एक बार कोई गाँधी जी से पूछ बैठा, "बापू, आप रेल के तीसरे दर्जे में क्यों सफर करते हैं?" गांधी जी ने तुरन्त उत्तर दिया, "क्योंकि चौथा दर्जा नहीं है।"

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस पर एक बार सभा में भाषण देते समय किसी ने जूते फेंके। सुभाष जानते थे कि वक्ता को उत्तेजना या क्रोध कदापि न करना चाहिए। उत्तेजित भीड़ में भी शान्त रह कर मानसिक संतुलन स्थिर रखना चाहिए। जब विरोधी पक्ष के जूतों की वर्षा समाप्त हो गई, तो एक नया सा जूता हाथ में लेकर बोले—

"देखिए सज्जनो! कितना सुन्दर जूता है। यह अभी एक दम नया है, मेरे फिट भी आता है। मैं इसके मालिक से प्रार्थना करता हूँ कि इसका दूसरा जोड़ा भी फेंक दे, जिससे वह मेरे पहिनने के काम आता रहे।" यह उत्तर सुनकर जूता फेंकने वाले महाशय कट कर रह गए।

मौलाना मुहम्मद अली जब केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य थे, तब एक लम्बा चोगा पहन कर प्रायः जाया करते थे। यह

सभी गुण प्राप्त कर लिए हैं। इसके बाद आप को प्रत्येक अच्छे भाषण के लिए कुछ न कुछ तैयारी या श्रम करना पड़ेगा।

४. अपने विषय की सामग्री संकलित कीजिए—जब आप भाषण देने की सोचें, तो उसी विषय पर श्रम करें। कुछ पढ़ें, विद्वानों के वचन एकत्रित करें। उस विषय का जितना सम्भव हो ज्ञान प्राप्त करें। यह आप पुस्तकें पढ़कर, समाचार-पत्रों से अथवा अनुभवी विद्वानों के सत्परामर्श से अनायास ही प्राप्त कर सकते हैं। जिस वक्ता के पास जितनी एकत्रित सामग्री होगी, जितना ज्ञान-विस्तार होगा, वह जितना ही दूसरों की अपेक्षा अधिक जानता होगा, भाषण करते समय उसकी उतनी ही निडरता और संकोच-शून्यता रहेगी।

वकील जब अपने मुकदमे की पैरवी करने निकलता है, तो सभी प्रकार की सामग्री से सम्पन्न होकर कोर्ट में जाता है। प्रोफेसर उच्च कक्षाओं में घुसने से पूर्व घर पर घण्टों अध्ययन करता है; शब्दकोष में शब्दों के अर्थ ढूंढता है; विषय से परिपूर्ण होकर कक्षा में प्रविष्ट होता है। इसी प्रकार कुशल वक्ता को भी अपने भाषण के विषय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर भाषण देना प्रारम्भ करना चाहिए। प्रसिद्ध वक्ता सिसरो और सुकरात का कथन है, "मनुष्य को जिस विषय का पूर्ण ज्ञान न हो, जब तक पूरे ज्ञान के कारण आत्म-विश्वास न हो जाय, तब तक उस पर बोलना उसे कभी नहीं आता।"

टली नामक विद्वान् लिखता है, "वक्ता बनने के इच्छुकों को अनेक विषयों की आवश्यक-आवश्यक शाखाओं का पूर्ण परिचय

अवश्य प्राप्त करना चाहिए, अन्यथा भाषण देते समय वह झिझकेगा और एक गुपचुप न्यूनता उसके अव्यक्त मन में छुपी रहेगी। वह संशय में पड़ सकता है और कभी-कभी अपने विषय को छोड़ कर व्यर्थ की बातों में बहक सकता है। अतः जिस विषय पर वक्ता को भाषण देना है, उसका अधिक-से-अधिक ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए।"

अतः भाषण से पूर्व जितनी भी सम्भव हो तैयारी कीजिए, लोगों से मिलिये; विषय पर उनकी सम्मति लीजिए; पुस्तकों, समाचार-पत्रों की फाइलों, एलबमों, कटिंग इत्यादि जहाँ तक सम्भव हो—कहीं से भी अपने काम की बातें ले लीजिए; ध्यानपूर्वक खूब समझदारी से इसे पचाइये। चतुर वक्ता अपने पास इतना ज्ञान-कोष संचित रखते हैं कि कमी नहीं पड़ती। उसकी नोट-बुक में अनेक ऐसे विषय, सूत्र, तथा रेफरेन्स-बुकों का हवाला दर्ज रहता है, जिससे सामग्री संकलन में प्रचुर सहायता मिल जाती है।

अच्छा तो यह है कि आप एक बार अपना समूचा भाषण लिख डालें। इससे एक तो विचार सुलझ जायेंगे, दूसरे भाषा पर भी अधिकार हो जायगा। विचार भी सुव्यवस्थित हो जायेंगे। सम्भव हो तो कुछ भाग कंठस्थ ही कर लीजिए। प्रथम भाषण तो पहले कंठस्थ ही कर लेना उचित है। ठीक तरह बोल देने से वक्ता का आत्म-विश्वास बढ़ जाता है। शीशे के सन्मुख खड़े होकर दीर्घकाल तक अभ्यास करना चाहिए। वक्तृत्व शक्ति अध्ययन से नहीं आती। यह तो निरन्तर दीर्घकालीन अभ्यास और लगन का विषय है। फिर भी नोट या संकेत वाक्य लिख कर आप अपने पूरे भाषण का एक

ढांचा या रूपरेखा तैयार कर लें, तो सुविधा रहेगी। ज्यों-ज्यों आपका अभ्यास बढ़ता जायगा, आपका आत्म-विश्वास भी बढ़ता जायगा; हिम्मत आ जायगी। आपको स्वयं विश्वास होने लगेगा कि आपमें वाक्-शक्ति है। बोलना भी एक आदत है। उपयुक्त अवसर निकाल कर अधिक से अधिक बोलने का अभ्यास करना चाहिए।

अवश्य प्राप्त करना चाहिए, अन्यथा भाषण देते समय वह झिझकेगा और एक गुपचुप न्यूनता उसके अव्यक्त मन में छुपी रहेगी। वह संशय में पड़ सकता है और कभी-कभी अपने विषय को छोड़ कर व्यर्थ की बातों में बहक सकता है। अतः जिस विषय पर वक्ता को भाषण देना है, उसका अधिक-से-अधिक ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए।"

अतः भाषण से पूर्व जितनी भी सम्भव हो तैयारी कीजिए, लोगों से मिलिये; विषय पर उनकी सम्मति लीजिए; पुस्तकों, समाचार-पत्रों की फाइलों, एलबमों, कटिंग इत्यादि जहाँ तक सम्भव हो—कहीं से भी अपने काम की बातें ले लीजिए; ध्यानपूर्वक खूब समझदारी से इसे पचाइये। चतुर वक्ता अपने पास इतना ज्ञान-कोष संचित रखते हैं कि कमी नहीं पड़ती। उनकी नोट-बुक में अनेक ऐसे विषय, सूत्र, तथा रेफरेन्स-बुकों का हवाला दर्ज रहता है, जिससे सामग्री संकलन में प्रचुर सहायता मिल जाती है।

अच्छा तो यह है कि आप एक बार अपना नमूना भाषण लिख डालें। इससे एक तो विचार सुलझ जायेंगे, दूसरे भाषा पर भी अधिकार हो जायगा। विचार भी सुव्यवस्थित हो जायेंगे। सम्भव हो तो कुछ भाग कंठस्थ ही कर लीजिए। प्रथम भाषण तो पहले कंठस्थ ही कर लेना उचित है। ठीक तरह बोल देने से वक्ता का आत्म-विश्वास बढ़ जाता है। शीशे के सन्मुख खड़े होकर दीर्घकाल तक अभ्यास करना चाहिए। वक्तृत्व शक्ति अध्ययन से नहीं आती। यह तो निरन्तर दीर्घकालीन अभ्यास और लगन का विषय है। फिर भी नोट या संकेत वाक्य लिख कर आप अपने पूरे भाषण को एक

शब्दों का बृहत् भण्डार रहना चाहिए, कारण उसे हर प्रकार के श्रोताओं का ध्यान रखना पड़ता है। एक ही बात को कभी साहित्यिक और कभी सरल जनभाषा में दोहराना पड़ता है। शब्दों के वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक अर्थों की भिन्नता बड़े महत्व की है। वह सुन्दर भाषण है, जिसमें शब्द-चयन भी सुललित हो और मनोभावों की मार्मिक अभिव्यक्ति हो। अभिव्यक्ति को ही व्यंग्य अर्थ कहते हैं। व्यंग्य का नाम ही ध्वनि है और वही काव्य का सर्वस्व है। वाच्य अर्थ में प्रायः वह आनन्द नहीं आता, जो ध्वनि में है, लक्ष्य अर्थ तो व्यंग्य के बिना अधूरा है। कोमल ध्वनि हृदय को मुग्ध कर देती है। अतः अपने शब्दों की ध्वनि (श्रुति-माधुर्य) पर ध्यान रखिये। कोमल-कान्त-पदावली से श्रोता चित्र लिखित से बैठे रहते हैं। जिस वक्ता का शब्द कोष जितना विशाल है, वह अपने भाषण में उतना ही चमत्कार ला सकेगा।

महर्षि पतञ्जलि ने कहा है—"एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग् भवति। महाभाष्य—६,१,४।" अर्थात् एक भी शब्द यदि अच्छी तरह जान कर प्रयोग किया जाय, तो प्रयोक्ता के लिए वह स्वर्ग लोक में कामधेनु बनकर इच्छित फल प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में यों कहें कि जिसे शब्दों का उचित प्रयोग आता है या जो उपयुक्तता का सदा ध्यान रख शब्द-चयन करता है, उसके लिए यही लोक स्वर्ग बन जाता है। उसके शब्द ही कामधेनु के समान चमत्कारी फल देने वाले हैं।

उपर्युक्त गुणों की वृद्धि कर लेने से भाषण देने की एक पद्धति पूरी हो जाती है। मान लीजिए आपने ऊपर लिखे

सभी गुण प्राप्त कर लिए हैं। इसके बाद आप को प्रत्येक अच्छे भाषण के लिए कुछ न कुछ तैयारी या श्रम करना पड़ेगा।

४. अपने विषय की सामग्री संकलित कीजिए—जब आप भाषण देने की सोचें, तो उसी विषय पर श्रम करें। कुछ पढ़ें, विद्वानों के वचन एकत्रित करें। उस विषय का जितना सम्भव हो ज्ञान प्राप्त करें। यह आप पुस्तकें पढ़कर, समाचार-पत्रों से अथवा अनुभवी विद्वानों के सत्परामर्श से अनायास ही प्राप्त कर सकते हैं। जिस वक्ता के पास जितनी एकत्रित सामग्री होगी, जितना ज्ञान-विस्तार होगा, वह जितना ही दूसरों की अपेक्षा अधिक जानता होगा, भाषण करते समय उसकी उतनी ही निडरता और संकोच-शून्यता रहेगी।

वकील जब अपने मुकद्मे की पैरवी करने निकलता है, तो सभी प्रकार की सामग्री से सम्पन्न होकर कोर्ट में जाता है। प्रोफेसर उच्च कक्षाओं में घुसने से पूर्व घर पर घण्टों अध्ययन करता है; शब्दकोष में शब्दों के अर्थ ढूंढता है; विषय से परिपूर्ण होकर कक्षा में प्रविष्ट होता है। इसी प्रकार कुशल वक्ता को भी अपने भाषण के विषय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर भाषण देना प्रारम्भ करना चाहिए। प्रसिद्ध वक्ता सिसरो और सुकरात का कथन है, "मनुष्य को जिस विषय का पूर्ण ज्ञान न हो, जब तक पूरे ज्ञान के कारण आत्म-विश्वास न हो जाय, तब तक उस पर बोलना उसे कभी नहीं आता।"

टली नामक विद्वान् लिखता है, "वक्ता बनने के इच्छुकों को अनेक विषयों की आवश्यक-आवश्यक शाखाओं का पूर्ण परिचय

शब्दों का वृहत भण्डार रहना चाहिए, कारण उसे हर प्रकार के श्रोताओं का ध्यान रखना पड़ता है। एक ही बात को कभी साहित्यिक और कभी सरल जनभाषा में दोहराना पड़ता है। शब्दों के वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक अर्थों की भिन्नता बड़े महत्व की है। वह सुन्दर भाषण है, जिसमें शब्द-चयन भी सन्तुलित हो और मनोभावों की मार्मिक अभिव्यक्ति हो। अभिव्यक्ति को ही व्यंग्य अर्थ कहते हैं। व्यंग्य का नाम ही ध्वनि है और यही काव्य का सर्वस्व है। वाच्य अर्थ में प्रायः वह आनन्द नहीं आता, जो ध्वनि में है, लक्ष्य अर्थ तो व्यंग्य के बिना अधूरा है। कोमल ध्वनि हृदय को तृप्त कर देती है। अतः अपने शब्दों की ध्वनि (श्रुति-माधुर्य) पर ध्यान रखिये। कोमल-कान्त-पदावली से श्रोता चित्र लिखित से बँधे रहते हैं। जिस वक्ता का शब्द कोष जितना विशाल है, वह अपने भाषण में उतना ही चमत्कार ला सकेगा।

महर्षि पतञ्जलि ने कहा है—"एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग् भवति। महाभाष्य—६,१,८४।" अर्थात् एक भी शब्द यदि अच्छी तरह जान कर प्रयोग किया जाय, तो प्रयोक्ता के लिए वह स्वर्ग लोक में कामधेनु बनकर इच्छित फल प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में यों कहें कि जिसे शब्दों का उचित प्रयोग आता है या जो उपयुक्तता का सदा ध्यान रख शब्द-चयन करता है, उसके लिए यही लोक स्वर्ग बन जाता है। उसके शब्द ही कामधेनु के समान चमत्कारी फल देने वाले हैं।

उपर्युक्त गुणों की वृद्धि कर लेने से भाषण देने की एक मंजिल पूरी हो जाती है। मान लीजिए आपने ऊपर लिखे

सभी गुण प्राप्त कर लिए हैं। इसके बाद आप को प्रत्येक अच्छे भाषण के लिए कुछ न कुछ तैयारी या श्रम करना पड़ेगा।

४. अपने विषय की सामग्री संकलित कीजिए— जब आप भाषण देने की सोचें, तो उसी विषय पर श्रम करें। कुछ पढ़ें, विद्वानों के वचन एकत्रित करें। उस विषय का जितना सम्भव हो ज्ञान प्राप्त करें। यह आप पुस्तकें पढ़कर, समाचार-पत्रों से अथवा अनुभवी विद्वानों के सत्परामर्श से अनायास ही प्राप्त कर सकते हैं। जिस वक्ता के पास जितनी एकत्रित सामग्री होगी, जितना ज्ञान-विस्तार होगा, वह जितना ही दूसरों की अपेक्षा अधिक जानता होगा, भाषण करते समय उसकी उतनी ही निडरता और संकोच-शून्यता रहेगी।

वकील जब अपने मुकद्दमे की पैरवी करने निकलता है, तो सभी प्रकार की सामग्री से सम्पन्न होकर कोर्ट में जाता है। प्रोफेसर उच्च कक्षाओं में घुमने से पूर्व घर पर घण्टों अध्ययन करता है; शब्दकोष में शब्दों के अर्थ ढूंडता है; विषय से परिपूर्ण होकर कक्षा में प्रविष्ट होता है। इसी प्रकार कुशल वक्ता को भी अपने भाषण के विषय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर भाषण देना प्रारम्भ करना चाहिए। प्रसिद्ध वक्ता सिसरो और सुकरात का कथन है, "मनुष्य को जिस विषय का पूर्ण ज्ञान न हो, जब तक पूरे ज्ञान के कारण आत्म-विश्वास न हो जाय, तब तक उस पर बोलना उसे कभी नहीं आता।"

टली नामक विद्वान् लिखता है, "वक्ता बनने के इच्छुकों को अनेक विषयों की आवश्यक-आवश्यक शाखाओं का पूर्ण परिचय

अवश्य प्राप्त करना चाहिए, अन्यथा भाषण देते समय वह झिझकेगा और एक गुपचुप न्यूनता उसके अव्यक्त मन में छुपी रहेगी। वह संशय में पड़ सकता है और कभी-कभी अपने विषय को छोड़ कर व्यर्थ की बातों में बहक सकता है। अतः जिस विषय पर वक्ता को भाषण देना है, उसका अधिक-से-अधिक ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए।"

अतः भाषण से पूर्व जितनी भी सम्भव हो तैयारी कीजिए, लोगों से मिलिये; विषय पर उनकी सम्मति लीजिए; पुस्तकों, समाचार-पत्रों की फाइलों, एलबमों, कटिंग इत्यादि जहां तक सम्भव हो—कहीं से भी अपने काम की बातें ले लीजिए; ध्यानपूर्वक खूब समझदारी से इसे पचाइये। चतुर वक्ता अपने पास इतना ज्ञान-कोष संचित रखते हैं कि कमी नहीं पड़ती। उसकी नोट-बुक में अनेक ऐसे विषय, सूत्र, तथा रेफरेन्स-बुकों का हवाला दर्ज रहता है, जिससे सामग्री संकलन में प्रचुर सहायता मिल जाती है।

अच्छा तो यह है कि आप एक बार अपना समूचा भाषण लिख डालें। इससे एक तो विचार सुलझ जायेंगे, दूसरे भाषा पर भी अधिकार हो जायगा। विचार भी सुव्यवस्थित हो जायेंगे। सम्भव हो तो कुछ भाग कंठस्थ ही कर लीजिए। प्रथम भाषण तो पहले कंठस्थ ही कर लेना उचित है। ठीक तरह बोल देने से वक्ता का आत्म-विश्वास बढ़ जाता है। शीशे के सन्मुख खड़े होकर दीर्घकाल तक अभ्यास करना चाहिए। वक्तृत्व शक्ति अध्ययन से नहीं आती। यह तो निरन्तर दीर्घकालीन अभ्यास और लगन का विषय है। फिर भी नोट या संकेत वाक्य लिख कर आप अपने पूरे भाषण का एक

ढांचा या रूपरेखा तैयार कर लें, तो सुविधा रहेगी। ज्यों-ज्यों आपका अभ्यास बढ़ता जायगा, आपका आत्म-विश्वास भी बढ़ता जायगा; हिम्मत आ जायगी। आपको स्वयं विश्वास होने लगेगा कि आपमें वाक्-शक्ति है। बोलना भी एक आदत है। उपयुक्त अवसर निकाल कर अधिक से अधिक बोलने का अभ्यास करना चाहिए।

आपकी बातचीत दूसरों को मोह सकती है!

सम्भाषण कला का सर्वप्रथम नियम यह है कि दूसरे को "अहं" के विस्तार या फैलाव का खुला अवसर मिले। हममें से प्रत्येक अपने "अहं" के प्रकाश का अवसर देखा करता है। उसके मन में नाना प्रकार के कटु और मधुर अनुभव, भांति-भांति की स्मृतियां, अपनी दिलचस्पी, खूबियाँ या मजबूरियां प्रकट करने की गुप्त इच्छा वर्तमान रहती है। जब आप बातें करें, तो यह ध्यान रखिये कि दूसरे को भी अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त हो। अपनी ही अपनी मत हांकते रहिये, प्रत्युत दूसरे की भी सुनिये। दूसरे के "अहं" को कुचल कर आप बातें आगे नहीं चला सकते। यदि आप दूसरे की न सुनेंगे तो कुछ काल पश्चात् उसका ढाढस विलुप्त हो जायगा और वह आपकी बातचीत में रुचि न रखेगा।

अपना दृष्टिकोण इस प्रकार प्रकट कीजिए कि दूसरे पर अनावश्यक जोर न पड़े। वह उन्मुक्त गति से बोलता रहे। अपनी व्यथा का भार हलका कर सके।

आप दूसरों की सुनिये। संसार में सब लोग अपनी बात दूसरों को सुनाने के लिए आतुर हैं। दूसरों को सुनाने से वे एक संताप, एक हलकेपन का अनुभव करते हैं। उन्हें इस हलकेपन का अनुभव करने दीजिये। इसके लिए यह आवश्यक है कि आप उनसे ऐसे प्रश्न पूछें जो उन्हीं से सम्बन्धित हों।

जिनमें उनकी थकी हुई मनोवृत्तियां तथा गुप्त अनुभव आपके सामने प्रकट हो सकें। दूसरे की सब बातों को ध्यान से सुनिये। समवेदना और सहानुभूति का शीतल जल उनके घावों पर छिड़किये। उनकी वीरता, तर्क, बुद्धिमता, न्यायप्रियता, और विश्वास की उच्चता पर प्रसन्नता प्रकट कीजिये। सत्यता और यथार्थवादिता की प्रशंसा कीजिये। ज्ञान, विज्ञता और अध्ययन को स्वीकार कीजिये। उदारता, कुलीनता और प्रचुरता का मान कीजिये। जितनी रुचि आप उनकी आत्म-निर्भरता, स्थिरता, संतुलन-सुस्थिरता में लेंगे, उतने ही आप उसे आकर्षक प्रतीत होंगे। चुपचाप दूसरे की सुनना वातचीत की कला की सफलता का एक गुर है। यदि आप शान्ति से दूसरों के दुःख, पीड़ा, पारिवारिक समस्याएँ और कठिनाइयाँ सुनेंगे, तो सदैव उनके प्रिय बन सकेंगे।

प्रत्येक व्यक्ति अपनी आयु, स्वभाव, पेशा, रुचि, काल, परिस्थिति, और मनोभाव के अनुसार वातचीत करना पसन्द करता है। बच्चों से गम्भीर दर्शन शास्त्र का विवेचन व्यर्थ है। विद्वान् से बच्चों जैसी सरल बातें करना मूर्खता है। आनन्द में आनन्द और दुःख-निराशा में समवेदना तथा सहानुभूति-पूर्ण बातें ही रोचक प्रतीत होती हैं। अतएव सर्वप्रथम यह अनुमान लगाइये कि दूसरा व्यक्ति किस मनःस्थिति में है। उसकी मुखमुद्रा, अनुभव, अंग-संचालन, देख कर आप यह अनुमान बहुत अंशों में कर सकते हैं। यदि मूड पहिचानने में आप भूल नहीं करते हैं, और उसी से मेल खाने वाले विषय का प्रतिपादन करते हैं, तो बात आगे चलेगी अन्यथा दूसरा व्यक्ति एक संक्षिप्त उत्तर के पश्चात् चुप हो जायगा।

आपकी बातचीत संक्षिप्त, मर्मस्पर्शी, वाग्-वैदिग्ध्ययुक्त हो और मुख्य विषय को आगे बढ़ाने वाली हो। उसमें क्रमानुसार चढ़ाव हो तथा वह एक चरम सीमा पर परिसमाप्ति प्राप्त करे।

बातचीत में स्वाभाविकता की नितान्त आवश्यकता है। ऐसे शब्दों का प्रयोग मत कीजिये जो अतिगूढ़, साहित्यक या जटिल हों, या ऐसे अवतरणों का प्रयोग मत कीजिये जिसे दूसरा व्यक्ति न समझता हो। यदि आप विद्वान् हैं, तो अपनी विद्वत्ता कठिन, भारी भरकम जटिल शब्दावलि द्वारा प्रदर्शित न कीजिए प्रत्युत सरल, सीधी, तथा प्रतिदिन की भाषा का प्रयोग कीजिये।

यह ध्यान रखिये कि आपकी बातचीत वाद-विवाद का रूप ग्रहण न कर ले। वहस होने से कटुता और क्रोध की उत्पत्ति हो सकती है। इसी प्रकार यह भी ध्यान रखिये कि कहीं आप उपदेशक का रूप ग्रहण कर व्याख्यान न झाड़ने लगें, जिससे आपके वक्तव्य लम्बे और निष्प्राण न हो जाँय।

मित-भाषण के साथ आपकी उक्तियों और विषय प्रति-पादन में तड़प व मर्मस्पर्शिता अनिवार्य है। आपका प्रत्येक वाक्य छोटा होते हुए भी अपना निजी महत्त्व रखता हो, चुस्त और सजीव हो, आपके चरित्र, तथा मनोभावनाओं का, प्राणों का उसमें स्पंदन हो।

दूसरों को विचारानुकूल बनाना

जो व्यक्ति दैनिक जीवन तथा व्यवहार में मनोविज्ञान के नियमों का प्रयोग करता है तथा दूसरों की भावनाओं से परिचित है, वह सर्वदा समाज में प्रिय बना रहता है। लोकप्रियता अनायास ही नहीं आ जाती, प्रत्युत वह व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक प्रयोग पर निर्भर रहती है।

आधुनिक मनोविज्ञान ने मानव-समाज में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। अब मनोविज्ञान का इतना विकास हो चुका है कि दूकानदार, आफिसर, अध्यापक, एजेंट, व्याख्याता, माता-पिता प्रत्येक व्यक्ति को दूसरों के मनोभावों के अनुसार व्यवहार करना पड़ता है। अमेरिका के प्रसिद्ध लेखक डेलकार्नेगी ने इस विषय पर बड़ा सुन्दर लिखा है। उनकी पुस्तक का शिक्षित संसार में बड़ा आदर हुआ है। उस पुस्तक के मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन इस लेख में किया जायेगा। इन १२ सिद्धान्तों के अन्तर्गत सभी महत्वपूर्ण बातें आ जाती हैं।

१. बहस मत करिये—जब हम बहस करते हैं, तो दूसरे व्यक्ति को अपनी समस्त बुद्धि, तर्क तथा कौशल द्वारा अपनी प्रतिष्ठा एवं गर्व की रक्षा करने पर विवश होना पड़ता है। यदि हम दूसरे से अधिक योग्य हुए, तो उसके लिए विषम स्थिति उत्पन्न हो जाती है—उसके अहं को बड़ी ठेस पहुँचती है। बहस हमारी महत्ता तथा दूसरे की निर्बलता पर आश्रित होती है। स्मरण रखिये, बहस से आप दूसरे को कभी विचारानुकूल

नहीं बना सकते। अतः बहस छोड़िये। यदि कभी अवसर भी आये तो उसे शिष्टता से बचा जाइये। दूसरे को भी अपनी बातें खुलकर कहने का अवसर प्रदान कीजिये।

२. दूसरों को झूठा न बताइये—दूसरा व्यक्ति चाहे कैसा भी झूठा, चोर या दुष्ट हो, वह आपके मुँह से यह नहीं सुनना चाहता कि वह चोर, मूर्ख या दुष्ट है। वह आपसे आदर और प्रतिष्ठा चाहता है। यदि आप यह आदर उसे देना चाहते हैं, तब वह आप से बातें करने को तैयार रहेगा; यदि आप उसकी बुराइयाँ बखानते हैं, तो वह कान फेर लेगा। साधारण बात में रुखाई, कठोरता, आक्षेप, उद्दण्डता और जल्दबाजी न होनी चाहिये। यदि आपको कोई अप्रिय बात कहनी भी है, तो उसे बड़े कौशल से कहिये। सदा दूसरे की प्रतिष्ठा और अहं के पोषण का विशेष ध्यान रखिये।

३. अपनी भूल तत्काल स्वीकार कर लीजिये—जब कोई व्यक्ति भूल कर बैठता है तो उसे अपनी भूल स्वीकार करते हुए बड़ा भय प्रतीत होता है। वह सोचता है कि अपना दोष और अपराध स्वीकार कर लेने पर मैं दूसरों के सामने अपराधी समझा जाऊँगा; मेरा अपमान होगा; लोग मुझे बुरा-भला कहेंगे और भूल का दण्ड मुझे भुगतना पड़ेगा। वह सोचता है कि इन सब झंझटों से बचने के लिए यह अच्छा है कि अपनी भूल को स्वीकार ही न करूँ; उसे छिपा लूँ या किसी दूसरे के सिर मढ़ दूँ।

यह मनुष्य की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया है। किन्तु हमें इस प्रकार की निर्बलताओं पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। दूसरा

अपनी गाये जाते हैं वे दूसरे की बातें सुनना नहीं चाहते। यदि उन्हें ऐसा अवसर आ जाय, तो वे रुष्ट हो जाते हैं और उखड़ बैठते हैं।

अनेक व्यक्ति ऐसे अक्खड़ और क्रोधी होते हैं, या घमण्ड में इतने चूर रहते हैं कि उनसे बातचीत प्रारम्भ करना ही कठिन होता है। किस प्रकार उनसे बातचीत आरम्भ की जाय। आप उनसे इस प्रकार वार्त्तालाप प्रारम्भ कीजिये मानों आप की पुरानी मित्रता है, बहुत दिनों के पश्चात् आप उनसे मिले हैं। बातचीत में 'महाशय', 'जनाब', 'श्रीमान', 'मित्र', 'मेहरबान', 'साहिब', 'बाबू', 'भाई' आदि शिष्टाचारसूचक शब्दों का यथायोग्य व्यवहार करें। मान्य पुरुषों के साथ शिष्टतायुक्त शब्दों में शांति और नम्रता के साथ अत्यन्त बुद्धिमानी से बातचीत करनी चाहिये, ऐसा न हो कि आप उनकी दृष्टि में उद्दण्ड, मूर्ख, अथवा घमण्डी ठहरें।

दूसरे के स्वभाव को परख लीजिये और उसी के अनुसार अधिक या कम गम्भीर बातें कीजिये।

५. अहंकार-तृप्ति का ध्यान रखिये—बीसवीं सदी के एक मनोवैज्ञानिक का कथन है कि मनुष्य के सभी कार्यों और व्यवहारों के मूल में प्रधानतः अहंवृत्ति रहती है। अहंवृत्ति क्या है ? डेली साहब के अनुसार, अहंवृत्ति का अर्थ है 'महत्त्व-पूर्ण बनने की आकांक्षा।' मनुष्य अपने-आपको बड़ा देखना चाहता है। वह मान, इज्जत और बड़प्पन का भूखा है। प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी रूप में अपने को बड़ा सिद्ध करने की चेष्टा कर रहा है। उसका 'अहं' किसी-न-किसी रूप में प्रकट हो रहा है। अब्राहम लिंकन ने कहा है 'दुनिया में कौन ऐसा

है, जो यह न चाहता हो कि दुनिया उसका सम्मान करे!' विलियम जेम्स ने अहंकार की रक्षा के विषय में लिखा है, "मानव स्वभाव की गहनतम प्रवृत्ति है - महत्त्वपूर्ण बनने की ख्वाहिश."

आप इस अहंभाव की उपेक्षा कर किसी के प्रिय-भाजन नहीं बन सकते। प्राचीन वैराग्यवादियों ने 'अहंवृत्ति' की कड़ी-तीखी आलोचना की है और उसे मनुष्य की एक बड़ी दुर्बलता बताया है। मनुष्य चाहे कितना भी विद्वान्, धनी बड़ा क्यों न हो जाय, वह अपने को महत्त्वपूर्ण समझने और बनने की भावना में मग्न रहता है। महत्त्वपूर्ण बनने की आकांक्षा से ही सभ्यता और संस्कृति का विकास होता है। प्रत्येक साधारण व्यक्ति असाधारण बनने की प्रबल आकांक्षा से प्रेरित होकर उच्चपद प्राप्त कर सका है।

आप अपने वार्त्तालाप में दूसरे को महत्त्वपूर्ण सिद्ध करते चलिये और उसके हृदय की अहंवृत्ति की रक्षा करते रहिये। आत्म-प्रशंसा और अहंवृत्ति की रक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण ढंग निकालिये।

अनेक बार 'अहं' की तृप्ति के लिए मनुष्य पागल तक हो जाते हैं। पागलखाने के अध्यक्षों का कथन है कि पचास प्रतिशत व्यक्ति केवल अहंकार-तृप्ति के लिए उन्माद के शिकार बनते हैं। पागलपन के जगत में उन्हें अपनी इस प्यास को तृप्त करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। कई बार बीमारी में लोग अपनी महत्ता की प्रवृत्ति को शांत करते पाये जाते हैं।

श्री अटल ने आगरे के पागलखाने की एक स्त्री की आप-बीती लिखी है। 'एक सुशिक्षित स्त्री पागल हो गई। वह एक

बड़े गरीब और निर्धन घर में पैदा हुई थी, लेकिन भाग्य से वह पढ़-लिख गई थी और उसके सपने बहुत ऊँचे हो गये थे। वह चाहती थी कि किसी बड़े घर में उसका विवाह हो; उसका पति उसे उपन्यास के नायकों की भांति प्यार करे; उसके बच्चे हों और समाज में उसकी प्रतिष्ठा बढ़े। किन्तु जीवन ने उसके सभी सपने तोड़ दिये। निर्धनता के कारण उसका विवाह एक अपढ़ लड़के से हुआ जो बहुत ही दुश्चरित्र था और पत्नी की तनिक भी परवाह नहीं करता था। थोड़े दिनों बाद वह पागल हो गई। अपने पागलपन में वह अपनी व्यस्त भावना को तृप्ति किया करती थी। उसने कल्पना कर ली थी कि उसका विवाह एक प्रोफेसर से हो गया है; वह बहुत धनी है; उसके तीन बच्चे हैं। जब कभी डाक्टर उसे देखने आता था तो वह एक विचित्र काल्पनिक मातृत्व के गर्व से मुस्करा कर कहती थी—'डाक्टर, मेरे बच्चे खेलने गए हैं, अभी आते होंगे!' उसने अपने मन में ही अपने उस व्यक्तित्व के एक काल्पनिक जगत् का निर्माण कर लिया था, जिससे उसके अहंभाव की सन्तुष्टि हो सके। इस कथा से स्पष्ट है कि केवल पुरुषों में ही नहीं, स्त्रियों में भी अहंकार-तृप्ति की भावना प्रबलतर होती है।

आप किसी भी व्यक्ति के अहंभाव को ऊँचा उठाइये, फिर देखिये, वह आपका बन जाता है। अपनी बातचीत या अपने कार्यों को ऐसा सँवारिये कि आप दूसरों के अहंभाव को सन्तुष्ट कर सकें। अहंभाव को पुष्ट करने का व्यवहार आपकी कुशलता पर निर्भर है।

दूसरे व्यक्तियों की रुचि और अहंभाव की तुष्टि के लिए अवसर ढूंढ निकालिये, उनके अच्छे गुणों तथा कार्यों,

उनकी प्रत्येक उन्नति तथा सफलता की हार्दिक प्रशंसा कीजिये।

अहंकार तृप्ति, एवं महत्त्वपूर्ण बनने की स्वाभाविक वृत्ति की पूर्ति के दो मार्ग हैं—(१) ऊर्ध्वमुखी अर्थात् उच्च स्तर के कलात्मक मार्गों द्वारा महत्ता प्राप्ति, जैसे साहित्य, संगीत कला प्रतियोगिताओं या अधिकारी वर्ग में सम्मिलित होकर महान् कार्य करना। बड़े-बड़े कवि, लेखक, चित्रकार, संगीतज्ञ, शिल्पकार, राजा, महाराजा, विचारक, विद्वान् आदि अहंकार एवं अपने को महत्त्वपूर्ण बनाने की अतृप्त पिपासा में ही उन्नति कर सके हैं। बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ, ताजमहल जैसी कलात्मक कृतियां, राम-चरितमानस, मेघदूत जैसे काव्यग्रन्थ, रूजवेल्ट, ट्रूमैन या महान् नेतागण सभी महत्ता के कारण उन्नत हुए हैं। मनुष्य जो भी साधारण कार्य करता है उसके लिए उसकी यही आकांक्षा रहती है कि आप उसकी प्रशंसा कर अहंतृप्ति या महत्ता को स्वीकार कर लें।

अहंकार का अधोमुखी मार्ग यह है कि मनुष्य महत्ता के लिए लुटेरा, चोर, डकैत बन जाए। रावण, कंस, दुर्योधन इत्यादि भी अहंकार की तृप्ति कर रहे थे पर उनका मार्ग अधोमुखी था। यदि उन्हें उच्च मार्गों द्वारा अहंतृप्ति मिल जाती तो कदाचित् वे इस मार्ग का अनुसरण न करते। न्यूयार्क के पुलिस कमिश्नर ने एक स्थान पर बताया है कि जब कभी कोई भी अपराधी पकड़ा जाता है तो सबसे पहिले समाचार पत्र मांगता है, ताकि उसमें निकली हुई अपने सम्बन्ध में खबरें पढ़े तथा उनमें देखे कि किस प्रकार अखबारों ने उसे एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बना दिया है। उसके चित्र तत्सामयिक

महापुरुषों के साथ छपते हैं। उस समय उसकी अहंवृत्ति का नशा इतना तीखा हो जाता है कि वह अपनी सत्ता के विषय में भी सब कुछ भूल जाता है।

अहंवृत्ति विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न साधनों के अनुरूप विभिन्न रूप ले लेती है। यदि पूंजीपति को इस बात में महत्ता प्रतीत होती है कि उसके घर के आगे मोटर खड़ी रहे, हाथी बंधें और दिन-रात रेडियो बजता रहे तो किसी दूसरे व्यक्ति को इस बात में आत्म-संतोष प्राप्त हो सकता है कि वह डाकू बने और लूट-मार करे। नेता को इस बात में महत्ता प्रतीत होती है कि जनता उसका व्याख्यान सुने, उसके कहने के अनुसार कार्य करे, उसे सार्वजनिक-प्रतिष्ठा मिले। माता को अपने पुत्र-पुत्रियों की उन्नति देखकर सर्वाधिक आत्म-संतोष प्राप्त हो सकता है। अभिनेत्री अपने रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा सुनने को लालायित रहती है। कलाकार अपनी कृतियों की प्रशंसा के अतिरिक्त कुछ नहीं सुनना चाहता।

६. इस प्रकार बातें कीजिए कि दूसरा आपकी बातों को स्वीकार करता चले—पहले ऐसी साधारण-सी बात लीजिये, जिसे आप समझते हों कि दूसरा व्यक्ति बिना किसी झिझक और शङ्का के स्वीकार कर लेगा। ऐसा करने से उसका स्वभाव कुछ नर्म हो जायेगा और वह आपकी और बातें भी क्रमशः स्वीकार करता चलेगा। अपनी प्रत्येक बात को तर्क और बुद्धि से धीरे-धीरे समझाते चलिये। स्मरण रखिये, यदि दूसरा व्यक्ति अस्वीकार करने के मानसिक भाव (Mood) में आ गया तो वह आपकी तर्क-सम्मत बात भी अस्वीकार कर देगा।

७. दूसरों को अधिक बातें करने का अवसर दीजिये—प्रत्येक मनुष्य अपनी रामकहानी कहना चाहता है। अतः आप इस प्रकार बातें कीजिये कि दूसरा उत्साहित होकर आप से अपनी गूढ़-से-गूढ़ बातें स्पष्ट रूप से कह दे। थोड़ी-सी रुचि रखने और धैर्यपूर्वक दूसरे की बातें सुनने से यह काम हो सकेगा। धैर्य से दूसरे की बातें सुनना भी एक कला है। प्रत्येक व्यक्ति यह गुर नहीं जानता। जब दूसरा बोलता है और अपने हृदय की गुत्थियाँ खोलना चाहता है, तो वह अपनी हाँकने लगता है। यह अत्यन्त बुरा व्यवहार है। आप यदि दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हैं तो दूसरों को अधिक बातें करने का अवसर दीजिये।

८. दूसरों को यह अनुभव कराइये कि यह सूझ उन्हीं की है—यदि अपनी ओर से आप कुछ योजनाएं दूसरों पर लादने की चेष्टा करेंगे, तो दूसरे उसे स्वीकार करने में आना-कानी करेंगे, बुरा भी मानेंगे; किन्तु यदि आप बातें इस प्रकार करें जिससे ऐसा प्रतीत हो कि सूझ उन्हीं की है, तो वे चटपट वह कार्य करने को प्रस्तुत हो जाएंगे। यह कुशलता अभ्यास और बुद्धि के ठीक प्रयोग से आ सकती है।

९. दूसरे के दृष्टिकोण से देखिये—अपने दृष्टिकोण से प्रत्येक व्यक्ति आदर्श है; सर्वोत्कृष्ट शक्तियों का पुंज है; कोई भूल नहीं करता; ठीक ही कार्य करता है। अतः आप यदि किसी को उसकी त्रुटि समझाते भी हैं, तो उसे उसके दृष्टिकोण से देख कर समझाइये। अपने को उसकी स्थिति में रखिये,

और तब अपने मार्ग का निर्णय कीजिये। दूसरों के दृष्टिकोण से सहानुभूति रखकर हम अनेक उलझनों से बच सकते हैं।

१०. दूसरों के उच्च विचार जागृत कीजिये—प्रत्येक मनुष्य के मन की दो भूमिकाएं हैं—एक निम्न, दूसरी उच्च। खराब-से-खराब व्यक्ति भी अपने चिन्तन के क्षणों में उच्च भूमिका में प्रवेश करता है। उसमें आत्म-शक्ति निवास करती है। अतः कभी-कभी उसका विवेक, उसकी शुद्ध बुद्धि, उसका तर्क जाग्रत हो उठता है। आपका व्यवहार एवं बातचीत ऐसी तर्कपूर्ण और युक्तिसंगत होनी चाहिए कि दूसरे का विवेक जाग्रत हो उठे। इस चेतनावस्था में आकर वह व्यक्ति आपकी योजनाओं एवं विचारधाराओं में विशेष रुचि लेने लगे।

११. अपने विचारों का जादू चलाइये—आप में जो विचार सर्वश्रेष्ठ हैं जो योजनाएं उत्तम और पुष्ट हैं—उन मौलिक योजनाओं और विचारधाराओं को दूसरों पर समय और उपयुक्त अवसर देख कर अवश्य प्रकट कीजिये। यदि आपके विचारों में शक्ति है, तथा आप में विश्वास भरा है, तो अवश्य आपके विचारों का दूसरे पर जादू जैसा प्रभाव पड़ेगा, वह आपके दृष्टिकोण के वशीभूत हो जायेगा। हिप्नोटिज्म या सम्मोहन-विज्ञान कुछ नहीं केवल पुष्ट संकेतों (Suggestions) का ही अद्भुत खेल है।

इन्टरव्यू की कला सीखें !

मान लीजिए कि, आपने नौकरी के लिए प्रार्थना-पत्र भेजा है तथा आपको 'इन्टरव्यू' (भेंट) के लिए बुला लिया गया है। इन्टरव्यू करने वाला विशेषज्ञों का बोर्ड बैठा है तथा एक-एक कर अनेक उम्मीदवार उनसे भेंट करने जा रहे हैं। शीघ्र ही आपकी बारी आने वाली है। आपको कई विशेषज्ञों के सम्मुख जाकर अपनी योग्यता, मानसिक विकास एवं व्यक्तित्व की परीक्षा देनी है। शंका, भय, लज्जा और अपने ज्ञान के प्रति सन्देह की भावना का उत्थान-पतन निरन्तर आपके मानस-उद्धि में चल रहा है।

प्राय: देखा जाता है कि नौकरी या परीक्षा की पहली रात्रि में परीक्षार्थियों को निद्रा तक नहीं आती; मन भारी-भारी सा रहता है और आशा-निराशा का द्वन्द्व निरन्तर चलता रहता है। इन्टरव्यू या भेंटों के अनेक प्रकार हैं—बड़े आदमियों, नेताओं, अफसरों, फिल्म स्टारों, मिल मालिकों तथा उच्चाधिकारों से भी भेंट करनी पड़ती है। इन भेंटों में भी इन्टरव्यू करने वाले व्यक्ति के मन में नाना प्रकार के संशयों का उद्वेग चलता रहता है। विवाह से पूर्व कभी-कभी कन्याओं को भावी पति से भेंट करनी पड़ती है। नौकरी की तलाश में संस्थाओं के विभिन्न अधिकारियों से भेंट करनी होती है। वास्तव में सफल भेंट करना भी एक कला है। आइये, इस कला पर विस्तार से विचार करें।

१. इन्टरव्यू-ग्रन्थि (Complex)—हमारे भय का कारण

गुप्त मन में रहने वाली भय की ग्रन्थि है। जिस प्रकार किसी लज्जा-शील स्त्री के मन में दूसरों के सामने बोलने, बातचीत करने और खुल जाने में गुप्त लज्जा का भाव रहता है, उसी प्रकार दूसरों से मिलने-जुलने, बातचीत करने, सामाजिक रूप से मिलने जाने में कुछ व्यक्ति स्वभावतः एक गुप्त लज्जा के भाव का अनुभव करते हैं। इन्टरव्यू-ग्रन्थि से ग्रसित व्यक्ति लजीले स्वभाव का अन्तर्मुखी व्यक्ति होता है। उसे जब कभी दूसरों से मिलने का अवसर आता है तो, वह पीछे फिर जाता है। इन व्यक्तियों का कुछ स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे सामाजिक सम्पर्क से बचने में प्रयत्नशील रहते हैं। समाज से दूर भाग कर एकाकी जीवन व्यतीत करने वाले, दब्बू, डरपोक, लजीले, नारीसुलभ लज्जा से विभूषित व्यक्ति, इसी दुर्बल ग्रन्थि के शिकार होते हैं।

स्त्रियों में भी लज्जा नाम के गुण की प्रशंसा की जाती है, किन्तु उसकी भी एक मर्यादा है। उस सीमा का अतिक्रमण करने पर लज्जा दुर्गुण बन जाती है। अधिक शर्माने वाले स्वभाव का युवक सामाजिक व्यवहार में तो असफल होता ही है, अपने हृदय की बातें भी दूसरों से खुल कर नहीं कह पाता।

आवश्यकता इस बात की है कि दूसरों से बचने की एकाकी वृत्ति का उन्मूलन किया जाय, तथा लोगों से मिल कर सामाजिकता, मिलनसारी, लेन-देन, दूसरों के सामने अपनी बात कहने, अपना दृष्टिकोण उन्हें समझाने का स्वभाव डाला जाय। धीरे-धीरे मित्रों में इस ग्रन्थि के निवारण का उद्योग और अभ्यास किया जाय।

२. नौकरी सम्बन्धी भेंट—इन्टरव्यू बोर्ड के सामने

नौकरी या पद के निमित्त भेंट करने के लिए यह ध्यान रखिए कि जिस व्यवसाय के लिए आपका चुनाव होने वाला है, या जिस विभाग में आपकी नियुक्ति होने वाली है, उसी के सम्बन्ध में अधिक जानकारी आपसे चाही जायगी। तदनुसार ही प्रश्न आप से पूछे जायंगे। इन्टरव्यू के लिए जाने के पूर्व अच्छी तरह उस पेशे, विभाग तथा उससे सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन कर लीजिये। मित्रों से पूछकर आने वाले प्रश्नों के सम्बन्ध में जानकारी बढ़ाइये। तत्सम्बन्धी पुस्तकें पढ़कर इतना सामान्य ज्ञान संचय कर लीजिये कि आवश्यकता के अनुसार सब बातों पर आप कुछ बोल सकें। पुराना ज्ञान भी स्मृति पर आ सके। भिन्न-भिन्न तथ्य परस्पर सम्बद्ध होते हैं। इन ज्ञान-तन्तुओं को इस प्रकार संयुक्त कर लीजिए कि आवश्यकता के समय स्मरण हो सकें।

यदि आपको किसी विशेष बात की पक्की जानकारी नहीं है, तो इन्टरव्यू बोर्ड के सम्मुख हिचकिचाहट, संदेह, आत्म-हीनता की भावना मन में न आने दीजिए। ज्ञान के अतिरिक्त वे व्यक्तित्व सम्बन्धी अन्य तत्वों, जैसे शिष्टाचार, बोलने, बैठने, पोशाक पहनने के ढंग भी देखते हैं। हाजिर जवाबी का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। चुस्ती, चालाकी, हिम्मत, स्फूर्ति—ये मनुष्य के ऐसे अलौकिक गुण हैं, जिनसे व्यक्तित्व का आकर्षण बढ़ता है। अतः इन पर भी पर्याप्त ध्यान रखिए।

३. भावना-जनित उद्वेग—आपका शत्रु—प्रायः देखा गया है कि विद्यार्थी या उमीदवार के मन में उद्वेग, चिंता तथा घबराहट से एक विलक्षण तरह की धुकधुकी उत्पन्न हो जाती है। इस घबराहट (Nervousness) में न केवल पुराना

संचित ज्ञान विलुप्त हो जाता है, प्रत्युत साधारण सरल सीधे प्रश्नों का उत्तर, जो आपको आता है, वह भी विलुप्त हो जाता है।

घबराहट का अर्थ यह है कि युवक किसी विषम परिस्थिति का मुकाबला कर सकने के योग्य नहीं है। यदि कभी आवश्यकता आ पड़े तो वह अस्त-व्यस्त हो उठेगा। अतः ऐसे व्यक्ति को कभी नहीं चुना जाता। बोर्ड यह देखता है कि व्यक्ति में उस पेशे या स्थान के उपयुक्त सामाजिकता, मिलनसारी, हँसी-खुशी, दूसरों के सम्मुख अपने विचार प्रस्तुत करने की योग्यता और साहस का विकास हुआ है, या नहीं ? यदि आपमें घबराहट का दुर्गुण है, तो धैर्य और साहस की वृद्धि कीजिए। अपनी हिम्मत बढ़ाइये। घबराहट दूर करने के लिए ज्ञान-संचय एक उपकारी तत्त्व है।

इन्टरव्यू बोर्ड में बैठे हुए व्यक्तियों के ज्ञान के बारे में ऊँची-ऊँची कल्पनाएँ मत बनाइये। आप थोड़ी देर के लिए यह मान लीजिए कि अन्य व्यक्ति भी आपके स्तर के ही हैं। थोड़ा-सा अन्तर दूसरी बात है। उसकी चिंता न करें। उत्साह-सम्पन्न सदा बाजी मार लेता है।

४. उत्तर में निपुणता सीखिये—प्रश्न का उत्तर तुरन्त दे देना एक अद्भुत कला है। इससे दूसरे पर बड़ा अच्छा प्रभाव उत्पन्न होता है*।

५. सतर्कता—इस गुण की सामाजिक जीवन और कार्यालयों में—सर्वत्र बड़ी आवश्यकता होती है। प्रायः आने

*नोट—इस विषय पर विशेष रूप से इसी पुस्तक में पृष्ठ ७८ पर देखें।

के स्थान पर, या समीप ही इधर-उधर कोई ऐसी वस्तु डाल दी जाती है, जिस पर आने वाले की दृष्टि पड़ जाय। जो व्यक्ति जितना सतर्क और तीव्र बुद्धि होता है, वह वस्तुओं के निरीक्षण में उतनी ही सूक्ष्म सतर्कता का परिचय देता है। इसके अतिरिक्त इधर-उधर की साधारण जानकारी, जन्म-तिथियां, रुचि के विषय, हलचल, चलते प्रश्न, विशिष्ट त्योहारों तथा राजनीति सम्बन्धी अनेक साधारण बातें पूछ कर सतर्कता एवं सामयिकता की परीक्षा की जाती है।

६. प्रेस इन्टरव्यू—मान लीजिए, आप किसी पत्र के प्रतिनिधि हैं, या स्वतन्त्र पत्रकार हैं और देश के गणमान्य नेताओं से समाचार तथा उनके विचार प्राप्त करने के लिये आपको भेंट करनी पड़ती है; या आपको कोई पत्र विशेष रूप से बड़े लेखकों, अभिनेताओं, पहलवानों, सैनिकों के पास जानकारी प्राप्त करने को भेजता है।

ऐसी स्थिति में अपनी पोशाक, बोलचाल का ढंग और प्रश्नावलि ऐसी बनाइये, जिससे कम से कम समय में आप अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकें। आपका सम्पूर्ण व्यक्तित्व आकर्षक होना चाहिये। दूसरा गुण भिन्न-भिन्न प्रश्नों द्वारा, उन्हें अपनी गुप्त बातें उगल जाने के लिए उत्साहित करना है। आपको मनुष्य के स्वभाव की दुर्बलताओं का अच्छा ज्ञान होना अपेक्षित है। बातचीत ऐसे करें कि दूसरा ऊब न उठे, प्रत्युत उत्साहित होकर आपसे आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित कर ले। भेंट लेने की कुशलता अभ्यास द्वारा प्राप्त की जा सकती है। वाक्पटुता और मनोविज्ञान की जानकारी—ये दो तत्त्व इसके लिए अतीव आवश्यक हैं।

जन-समुदाय को अपने विचार का बनाने की रीति

यदि आप उच्च पदासीन हैं, उपदेशक, वक्ता या अध्यापक का कार्य करते हैं, तो आपको जनता और जन-समुदाय (Mob psychology) की मनोवृत्तियों से अवश्य परिचय प्राप्त करना चाहिये। जनता जब भीड़ के रूप में एकत्रित रहती है, तो उसकी मन की कार्य-प्रणाली कैसे कार्य करती है ? उनकी इच्छाएँ, मनोभावनाएँ क्या होती हैं ? उन पर प्रभाव डालने के क्या गुप्त उपाय हैं ? उनकी प्रवृतियों को किस प्रकार उत्तेजित करना चाहिये ?—ये सब बातें अत्यन्त आवश्यक हैं। राष्ट्रीय क्षेत्र में कार्य करने वाले सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं को जनता की अन्तःचेतना की जानकारी प्राप्त करना अतीव आवश्यक है।

जनता में तथा एकत्रित जन-समुदाय में विचारशक्ति दबी हुई रहती है। कई मनोवैज्ञानिकों का मत है कि जनता की विचारशक्ति कल्पना तथा भाव (Feelings) द्वारा आच्छादित होकर पंगु हो जाती है। जनता पर वक्तृता का एक हिप्नोटिक प्रभाव इसलिए पड़ता है क्योंकि उसकी सोचने-विचारने की शक्ति निर्बल पड़ जाती है, तथा अन्य मानसिक शक्तियाँ जैसे—तर्कशक्ति, तुलनात्मकशक्ति, स्मरणशक्ति, उद्योगशक्ति भी कुछ काल के लिए मंद हो जाती हैं। उनके मन में एक निष्क्रिय (Passive) भाव की स्थापना रहती है।

जन-समुदाय विवेक-शून्य होता है। उसके मन में जो पूर्व-संचित धारणाएँ होती हैं, प्रायः वह उनके विरुद्ध कुछ भी स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं होता। उसका उदाहरण देखिये। पुराणपंथी हिन्दू जन-समुदाय नवीन विचार-धारा को स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं होता यद्यपि पृथक्-पृथक् उन्हें समझाया जा सकता है।

जन-समुदाय भाव-प्रधान (Full of feelings) होता है। उसके भाव तथा विकार (Emotions) सरलता से उत्तेजित किये जा सकते हैं। वह एकदम भावावेश में आ सकता है और उत्तेजित हो कर उचित अनुचित सब कुछ करने को प्रस्तुत हो जाता है। फ्राँस की राज्य-क्रांति में जनता को भड़का कर जो भयावह रक्तपात किया गया था, उसे प्रत्येक इतिहास का विद्यार्थी जानता है। भावना की भूखी जनता भगवान् श्री रामचन्द्र जी के साथ किस प्रकार वनवास के लिए चल पड़ी थी, इससे प्रत्येक हिन्दू परिचित है।

जो वक्ता हाथों के इशारों, आवाज़ के उतार-चढ़ाव, नेत्र व मुँह के विविध हावभावों से जनता की भावना को उत्तेजित कर लेता है, वह उनसे मनचाही बात करा सकता है। भक्ति-भाव, करुणा और हास्य का प्रभाव बड़ी तेजी से पड़ता है। भक्तिभाव से प्रेरित होकर जनता झूमने लगेगी। प्रत्येक व्यक्ति गा उठेगा, ताली पीटने लगेगा और उसके मुख से प्रेमभाव प्रकट होने लगेगा। क्रोध से उन्मत्त होकर जनता हथियार निकाल लेगी और दाँतों से कच्चा चबा जाने तथा लड़ने-मरने को प्रस्तुत हो जायेगी। दुःख से अभिभूत होकर जनता रो उठेगी; पत्थर का हृदय भी जनता में मिलकर अपने आप को

न सम्हाल सकेगा। हास्य की तरंग में आकर जनता प्रत्येक उचित अनुचित बात पर मजाक बनावेगी, पागलों की तरह विविध क्रियाएँ करने लगेगी। होली के दिनों में हास्य-विनोद के भाव में जनता के सामने कैसे ही साफ-सुथरे वस्त्रों वाला व्यक्ति क्यों न आ जाये, अवश्य विनोद का शिकार बन जायगा।

जन-समुदाय अनुकरण-प्रिय है। जैसा एक व्यक्ति करता है, उसी के अनुकरण से दूसरा भी वैसा ही करने लगता है। उदाहरणार्थ—यदि जनता में से एक व्यक्ति पत्थर उठा कर फेंकने लगे, तो अन्य व्यक्ति भी उसी प्रकार उसी ओर पत्थर फेंकने लगेंगे। जैसा उपदेशक गायेगा, जनता भी वैसा ही गायेगी। जनता में खड़ा हुआ विचारशील व्यक्ति भी कभी-कभी पाशविक वृत्तियों का शिकार हो जाता है। वह जैसी संगति में बैठता है, दूसरों को करते देखता है वैसा ही करता है।

जन-समुदाय जैसा पुनः-पुनः सुनता है, वैसा ही क्रमशः विश्वास करने लगता है। ये ही सुनी हुई बातें लोगों के विश्वास को बनाती हैं। निश्चित भावनाएँ बनने के पश्चात् नष्ट नहीं होतीं। जिस महात्मा, अध्यापक या सार्वजनिक कार्यकर्ता पर उनका विश्वास जम जाता है, वह उन्हें जिधर चाहे ले जा सकता है। जिस देवी-देवता, जादू-मन्त्र, झाड़-फूंक की उपयोगिता में उनकी निश्चित धारणाएँ बन चुकी हैं, वे वैसे ही रहेंगी।

विशाल जन-समुदाय को प्रभावित एवं उत्तेजित करने के लिए धर्म बड़ा बलवान् उत्तेजक है। क्योंकि अधिकतर जनता

अशिक्षित होती है, उसमें वीर की पूजा (Hero worship) का भाव दृढ होता है। धर्म और भावना पुरानी संस्कृति, उज्ज्वल इतिहास और बड़प्पन की भावना को उत्तेजित कर जनता को वश में किया जा सकता है। जनता पर महान् व्यक्तियों के सम्मोहन (हिप्नोटिज्म) का उनके आत्मतेज का बड़ा प्रभाव पड़ता है।

जनमत किसी भी व्यक्ति, संस्था या वस्तु के विषय में स्थायी रूप से निश्चित और चिर-काल तक प्रकाशित होने वाले विचारों का परिणाम है। जिन विचारों को जनता के समक्ष किसी प्रकार पुनः-पुनः लाया जाता है, जनता उन पर धीरे-धीरे विश्वास करने लगती है। कालान्तर में ये मान्यताएँ अन्तःकरण में इतनी गहनता से जम जाती हैं कि उनका उन्मूलन कठिनता से होता है।

दवाइयों की प्रसिद्धि किसी फर्म के माल की श्रेष्ठता अथवा सुन्दरता, किसी विशेष मार्के की वस्तु, किसी वक्ता, उपदेशक, नेता, महापुरुष या संस्था की साख एक बार स्थिर हो जाने पर सुगमता से नष्ट नहीं होती है। सामाजिक जीवन में साख का बड़ा महत्व है। धन-सम्पत्ति से वह स्थायी लाभ नहीं होता, जो कि साख से निकलता है। व्यक्ति की योग्यता, चरित्र की महत्ता, दृढता, बलिदान या शक्तिमत्ता की साख एक बार जनता को मिलने पर जीवनपर्यन्त लाभदायक होती है।

जनमत-निर्माण के साधन—आपके विषय में जनमत का निर्माण करने वाले तत्वों में प्रथम साधन है वक्तृता। जो मनुष्य दूसरे के सामने सभा, सोसायटी, भीड़ या कक्षा में लेक्चर देकर निज विचारों का प्रतिपादन कर सकता है, वह दूर-दूर तक अपने विचारों की लहरें भेजता है। सभी बड़े

व्यक्ति अच्छे वक्ता हुए हैं तथा अपने विचारों को जनता के समक्ष सुन्दरता तथा प्रभावशाली ढंग से रख सके हैं। अच्छा वक्ता बनना योग्यता, आत्मविश्वास तथा अवसर पर तो निर्भर है ही, अभ्यास पर भी निर्भर है। अस्सी प्रतिशत व्यक्ति केवल अभ्यास के बल पर ही वक्ता बने हैं। आपको जो भी अवसर प्राप्त हो, उसे हाथ से न जाने दें, वरन् अधिक से अधिक बोलें। प्रारम्भिक वक्तृता बनाकर भी प्रयोग किया जा सकता है। यह समझना भारी मूर्खता है कि बोलने की शक्ति किसी खास व्यक्ति में ही होती है। अभ्यास तथा प्रयत्न वह साधन है, जिसके बल पर प्रत्येक व्यक्ति अपने विषय में जनमत का निर्माण कर सकता है।

दूसरा साधन अपने विचारों को लेख-बद्ध कर जनता के समक्ष प्रस्तुत करना है। हमें चाहिये कि अपने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक या आध्यात्मिक विचार, दृष्टिकोण या अनुभव छोटे-बड़े लेखों के रूप में पत्र-पत्रिकाओं द्वारा जनता के समक्ष रखें। कागज पर छपे हुए शब्दों का अपेक्षाकृत अधिक महत्व है। वे दूर-दूर तक विशाल जन-समूह के सम्मुख जाते हैं, उन पर विचार-विमर्श, टीका-टिप्पणी, आलोचना, प्रत्यालोचना की जाती है। आपको ऐसे अवसर की खोज में रहना चाहिए कि आपके लेखों की रिप्रिण्ट या छपी हुई कुछ प्रतियां भी आपको प्राप्त हो सकें जिन को वितरण किया जा सके। आपकी भाषा ऐसी सरल तथा स्पष्ट होनी चाहिए कि जिससे विचारों में दुरूहता न हो।

तीसरा साधन रेडियो है। रेडियो पर दी हुई वक्तृता संसार भर में फैल जाती है। यद्यपि यह साधन बहुत थोड़े व्यक्तियों के लिए खुला है, किन्तु जो इससे लाभ उठा सकते हैं, इन्हें उससे उठाना चाहिये।

यदि आप जनता में प्रसिद्ध होना चाहते हैं तो छोटे-छोटे क्लबों, मित्रों की बैठक, या जान-पहचान के व्यक्तियों में अपने विचार प्रकट किया कीजिए। बातचीत में ही आप अपने ज्ञान का प्रदर्शन कर दूसरों के प्रिय पात्र बन सकते हैं।

आजकल जनता को सबसे अधिक रुचि राजनीति से है। राजनीति का ज्ञान आप दैनिक समाचार-पत्र से पढ़कर प्राप्त कर सकते हैं। प्रायः देखा जाता है कि संसार तथा देश में चार-छः महत्वपूर्ण विचारधाराएँ ही चल रही होती हैं। इन समस्याओं की बाबत यदि आप जनता को कुछ भी नई बात बता सकें, तो वे आपकी बात सुनने को प्रस्तुत हो जायेंगे। इन्हींमें आप अपना व्यक्तिगत मत भी बताकर अपने या देश के विषय में जनमत का निर्माण कर सकते हैं।

आपके व्यक्तित्व का सामाजिक भाग आपके ज्ञान पर विशेष रूप से निर्भर करता है। जनता चाहती है कि आप व्याख्यान करें, कुछ समझायें, सुलझायें या उन्हें आगे बढ़ाएँ। अपने दैनिक कार्यों में फँसे रहने के कारण उन्हें इतना अवकाश प्राप्त नहीं होता कि वे प्रतिदिन समाचार-पत्र पढ़ें अथवा जीवन की अन्य समस्याओं पर गहनता से चिन्तन करें। यह चिन्तन वे आप से चाहते हैं। क्लबों तथा मुहल्ले की बैठकों में उस व्यक्ति के समीप सब से अधिक व्यक्ति एकत्रित रहते हैं, जो नये विचार या पुरानी गुत्थियों पर नया दृष्टिकोण दूसरों के सम्मुख उपस्थित करता है। यदि आपके पास सामयिक ज्ञान का बृहत् भण्डार है, तथा प्रत्येक विषय पर कुछ बातें कर लोगों का ज्ञान-वर्द्धन कर सकते हैं, तो निश्चय मानिये आपके विषय में जनमत अच्छा ही रहेगा।

आप दूसरों के दृष्टिकोण से अपने आपको देखिये,

सोचिये, "अमुक व्यक्ति मुझे क्यों पसन्द करे? उसके लिए मेरे व्यक्तित्व में क्या आकर्षण है? अमुक व्यक्ति को मैं किस प्रकार मुग्ध कर सकता हूँ?"

अतः जब आप दूसरों से व्यवहार करने निकलें तो अपनी बातचीत, सम्बोधन, कार्य तथा अवयवों के संचालन में दूसरे की अहंकारवृत्ति का विशेष ध्यान रखिये। उनकी बातों को रुचि-पूर्वक सुनिए। उनके जीवनसमस्याओं, दुःख तथा सुखों में जितनी भी अधिक अभिरुचि आप लें, उतना ही दूसरे आप को आकर्षण का केन्द्र समझेंगे; उतने ही आपकी ओर आकृष्ट होंगे। जनमत आपके पक्ष में रहेगा।

यथासम्भव दूर रहें—जिन लोगों के हाथ में शक्ति होती है—नेता, विद्वान्, राजा, राजनीतिज्ञ, सेनापति, पूंजीपति तथा इसी तरह के अन्य व्यक्ति उनका अखबार वाले तथा समाज इतना अधिक विज्ञापन करते हैं और उनकी स्तुति का कुछ ऐसा पुल बाँधा जाता है कि जन साधारण को उनके विचार तथा कार्य असाधारण तथा देवताओं जैसे प्रतीत होते हैं। उनके चारों ओर एक प्रकार का प्रकाश का घेरा दिखलाई पड़ने लगता है और अपने अज्ञान तथा पूजा-भावना के कारण हम उनमें बहुत से ऐसे गुणों की कल्पना कर लेते हैं, जिनका उनमें अस्तित्व भी नहीं होता। घनिष्ठ परिचय में आने या समीप से देखने में ये साधारण-से व्यक्ति निकलते हैं।

कोई व्यक्ति, यदि चाहे तो संसार पर थूक सकता है, संसार की कोई हानि नहीं होगी। लेकिन स्मरण रखिये, दुनिया उस पर थूकने लगे तो वह उसमें डूब ही जायेगा? जनमत में बड़ी शक्ति है।

असहमत को यों सहमत करें

व्यवसाय के क्षेत्र में ग्राहकों को सहमत करने पर विक्रेता की सफलता निर्भर है। प्रायः देखा जाता है कि कुशलविक्रेता अपने वाक्-कौशल तथा ग्राहक के मनोविज्ञान से परिचित होने के कारण साधारण वस्तुओं को भी बेचकर लाभ उठाता है। प्रत्येक सफल विक्रेता को यह जानना आवश्यक है कि असहमत ग्राहकों को कैसे सहमत करें कि वे उसकी बात का विश्वास कर लें। यह कैसे सम्भव हो सकता है ?

मान लीजिए, आप दुकानदार हैं और आपको २०) रुपये का एक कीमती जूता ग्राहक को बेचना है। आप जानते हैं कि जूते के दाम अधिक हैं। यदि आप आरम्भ में ही ग्राहक से कह डालें कि जूते का मूल्य २५) रु० है, तो संभव है, वह जूता न खरीदे। आप टेढ़े तरीके का प्रयोग करें। अर्थात् ऐसे तर्क उपस्थित करें कि ग्राहक के मन पर यह बात अच्छी तरह जम जाय कि जूता जरूरी है, उपयोगी है, टिकाऊ है और सुन्दर बना हुआ है। जब अप्रत्यक्ष-रूप से उस पर जूते की महत्ता जम जाय, तब आप अपना मूल उद्देश्य २५) रु० बता कर उसे बेच सकते हैं।

आपका पुत्र या पुत्री किसी भयंकर व्यसन का शिकार हो जाती है। प्रत्यक्ष-रूप से आप उस पर डर या दबाव डाल कर उससे दुर्गुण नहीं छुड़ा सकते। आप अप्रत्यक्ष रूप से उसे उस दुर्गुण की हानियों और घिनौनेपन का अनुभव कराइए। आप अधिक से अधिक तर्क और विवेचन द्वारा

उसे यह समझाइए कि अमुक दुर्गुण या व्यसन से उसकी कितनी बड़ी हानि हो सकती है। बाद में आप उससे छोड़ने के लिए कहेंगे, तो वह बुरा न मानेगा और दुर्गुण का सम्भवतः परित्याग कर देगा।

आपकी पत्नी आभूषणों के लिए हठ कर रही है। आप अनुभव करते हैं कि आप आभूषणों पर व्यय न करेंगे तो भयंकर कलह होगी। अतः अपने मन के इस भाव को स्पष्ट रूप से व्यक्त न करके कोई प्रसंग छेड़ कर अप्रत्यक्ष रूप से यह सिद्ध कीजिए कि आर्थिक परिस्थितियों तथा अन्य विवशताओं के कारण आप आभूषण नहीं बनवा सकेंगे। इस घुमाव-फिराव के प्रकार से आप देखेंगे कि आपकी विरोधी बात भी मान ली गई है।

नेताओं तथा उपदेशकों को अप्रत्यक्ष रूप से मूल उद्देश्य की ओर बढ़ने के नियम से बड़ा लाभ होता है। वे जिस मत या विचारधारा का प्रतिपादन करते हैं, वे यदि घुमा-फिरा कर अपने सम्पूर्ण तर्क द्वारा विरोधी तत्त्वों का उद्घाटन करें, तो यह तथ्य मान लिया जाएगा।

आप जिस मूल उद्देश्य पर आना चाहते हैं, उसे अनायास ही स्पष्ट मत कह बैठिए। स्मरण रखिए, जिस निष्कर्ष या अंतिम निर्णय पर आपको आना है, वह जनता से छिपा रहे। उस तक आने के लिए अपने तर्क की सीढ़ियों पर चढ़िए। एक एक सीढ़ी पर चढ़ कर आप जब अपने अंतिम परिणाम पर आ जाएं, तब ही अपने मूल निर्णय को स्पष्ट कीजिए। धीरे-धीरे एक विशेष मन्तव्य पर आने से पूर्व यथेष्ट तर्क उपस्थित करना अपने दृष्टिकोण को मनवाने का सरल साधन है।

मनुष्य की मानसिक शक्तियों में "अहम्" का भाव बड़ा जटिल है। "अहम्" की रक्षा के लिए मनुष्य बड़े से बड़े खर्चे कर डालता है, लड़-झगड़ बैठता है, जीवन भर किसी कार्य में तन, मन से जुट जाता है। "अहम्" को तनिक सी चोट पड़ती है, तो स्वभावानुसार प्रत्येक व्यक्ति उत्तेजित हो उठता है। उत्तेजना में वह तर्क और बुद्धि को भी कुण्ठित कर बैठता है। आवेश, क्षणिक-भावुकता तथा अहम् की रक्षा के प्रयत्न प्रायः असहमत व्यक्तियों की निर्बलता के कारण हैं।

नब्बे प्रतिशत ग्राहक झूठी भावुकता के शिकार होते हैं। जो दृष्टिकोण या तर्क एक बार अपना लेते हैं, उसे छोड़ना नहीं चाहते, चाहे उनका तर्क कितना ही खोखला क्यों न हो। कुछ व्यक्ति एक बार भूल कर बैठते हैं तो दर्प की रक्षा के कारण उसे सुधारते हुए शर्माते हैं और एक के बाद दूसरी भूल करते चलते हैं। झूठी प्रतिष्ठा के कारण अपने हठ पर डटे रहते हैं। प्रायः देखा गया है कि एक पीढ़ी के अन्ध-विश्वास निरन्तर चलते रहते हैं। लोग नई चीज को कठिनता से ग्रहण करते हैं।

सहमत करने के लिए यह देखिए कि दूसरे व्यक्ति की भावुकता उद्दीप्त है, या वह तर्क का आश्रय ग्रहण कर रहा है। जहां तर्क और शुष्क बुद्धिता का राज्य है, वहां भावना की, (सहानुभूति, करुणा, दया, प्रेम आदि) की विजय होगी। प्रायः स्त्रियों में इस प्रकार की निर्बलता है। असहमत होते हुए भी यदि उनकी भावुकता को उद्दीप्त किया जाय, तो वे अनेक विषयों पर सहमत हो जाती हैं। घरेलू जीवन में, जब आप अपने समस्त तर्कों से पत्नी, भगिनी, माता, पुत्री

आदि को सहमत न कर सकें तो उनकी भावना को उद्दीप्त कीजिए। कभी सहानुभूति, कभी करुणा, प्रेम या वात्सल्य भावना को भड़काइए। आप देखेंगे जो बात वे तर्क से न मानती थी, वह सहज ही में भावना से हो जायगी।

मान लीजिए, आपका हाथ तङ्ग है। उधर पत्नी, भगिनी, पुत्री आदि बढ़िया वस्त्रों के लिए हठ कर रही हैं? आप अपने तर्क से उसे यह बतला रहे हैं कि ऋण नहीं लेना चाहिए। इस पर भी वह असहमत बनी हैं तो आप अपनी कल्पना से उनके सामने ऋणग्रस्त व्यक्ति का दयनीय चित्र खींच दीजिए। यह दिखाइए कि किस प्रकार ऋण के बोझ से ऋणग्रस्त व्यक्ति के बच्चे तरस रहे हैं, दाने-दाने को मुहताज हैं, कुर्की हो रही है···आदि। फल की भयङ्करता का प्रभाव यह होगा कि वह आपके निष्कर्षों से सहमत हो जायंगी। इसी प्रकार किसी उच्च उद्देश्य की ओर प्रेरित करने के लिए आप उसके सामने ऐसा आकर्षक चित्र खींच दीजिए कि वह उसी के मोह में बड़े परिश्रम तथा बलिदान के जीवन को सहर्ष अपना ले।

सहमत करने के लिए प्रलोभन दे सकते हैं, किन्तु यह शुभकार्यों के लिए ही करना उचित है। जो किसी व्यक्ति के लिए अच्छा साबित होगा, उसे करने के लिए आप उसे रुपए पद, यश, प्रतिष्ठा का प्रलोभन दिखा सकते हैं। छोटे बच्चों को अध्ययन तथा परिश्रम की प्रेरणा देने के लिए आप उनके सामने उनके उज्ज्वल भविष्य का चित्र खींचिए, समय-समय पर उन्हें पुरस्कार दीजिए। आप देखेंगे कि वे परिश्रम के मार्ग को पार करने के लिए सहमत हो जायेंगे।

सहमत करने के लिए प्रशंसा का उपयोग किया जा सकता है। यत्र तत्र असहमत के प्रति मृदु सहानुभूति दिखाते हुए समवेदना प्रगट करते हुए अपने दृष्टिकोण का प्रतिपादन करना चाहिए। अपनी बातों को बलात् दूसरों पर मत लादिए। कोई व्यक्ति आपकी शिक्षा उपदेश आदि पसन्द नहीं करता। इसके विपरीत यदि आप अपने दृष्टिकोण को धीरे-धीरे क्रमानुसार दूसरे के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए प्रकट करेंगे तो निश्चय जानिए आप अपने मत का प्रतिपादन सही रूप में कर सकेंगे। प्रत्येक व्यक्ति के मानसिक संस्थान में एक ऐसा क्षण आता है जब वह अपनी भूल स्वीकार कर ही लेता है। असत्य अधिक देर तक नहीं ठहर सकता। मनुष्य का हठ मन की उग्र अवस्था है। वह दूर होते ही सहमति प्राप्त की जा सकती है।

दवाओं या पुस्तकों के एजेन्टों को देखिए, या रेल के डिब्बों में बेचने वाले विक्रेताओं के भाषणों का अध्ययन कीजिए। भरे डिब्बे में किसी को दन्त मञ्जन या सुरमे, चूरण दवाई या मरहम आदि किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु फिर भी दवाफरोश खड़ा होता है। अपना भाषण प्रारम्भ करता है। एक व्यक्ति पर उसका प्रभाव पड़ता है, वह दन्तमञ्जन खरीदता है। उसी की देखा-देखी और भी दो-चार व्यक्ति दवाई ले बैठते हैं। हम इन चूरण या दन्तमञ्जनों में ठगे जाते हैं, किन्तु भाषण के प्रवाह और दूसरों के अनुकरण के वश में आकर हम यह फजूलखर्ची कर ही बैठते हैं। प्रायः ऐसी-ऐसी वस्तु खरीद ली जाती है, जिनकी, हमें तात्कालिक आवश्यकता भी नहीं होती। इसका कारण यह है कि हम विक्रेता के तर्क से धीरे-धीरे सहमत हो जाते

हैं। उसकी बातें सुनते-सुनते एक क्षण ऐसा आता है जब हमारी बुद्धि उसके द्वारा प्रतिपादित सत्यों को अप्रत्यक्ष रूप से ग्रहण करने लगती है और अन्ततः पूर्ण-रूप से मान लेती है।

हमें चाहिए कि अपने दृष्टिकोण पर डटे रहें दूसरे के मन के क्षणिक व्यापारों को सूक्ष्मता से निहारते रहें। जब मनुष्य प्रसन्नता या हास्य मनःस्थिति (मूड) में रहता है, तो वह उन बातों को भी मान लेता है, जिनपर वह असहमत था। सदैव मनःस्थिति को देखिए। अच्छी मनःस्थिति देखकर ही अपने दृष्टिकोण को प्रकट कीजिए। आपका प्रतिपादन तर्कपूर्ण और न्यायसङ्गत होना चाहिए। जो व्यक्ति दूसरे के मूड या मनः-स्थिति को देख कर अपने तर्क प्रस्तुत करता है वह असहमत को भी सहमत बना लेता है। उद्विग्नता के क्षणों से दूर हटकर असहमत की आन्तरिक वृत्ति को शान्त होने का अवसर प्रदान कीजिए। शान्त चित्त में बुद्धि का प्रभाव तीव्रता से होगा। भावना का आवेश न्यून हो जायगा।

यह ध्यान रखिये कि आपके तर्क बुद्धिसंगत और न्यायपूर्ण हों। तर्क और न्याय की विजय निश्चित है, चाहे वह देर में ही क्यों न हो। पुनः-पुनः अपने मत को भिन्न-भिन्न रूपों में दूसरे के समक्ष प्रस्तुत करने से असहमत व्यक्ति भी बात मान लेता है।

आप यदि देखते हैं कि किसी विषय पर आपका दूसरे से मतभेद है, तो कुछ काल के लिए उससे उस विषय पर बातचीत न कीजिए। कोई ऐसा विषय उठा लीजिए, जिस पर वह तथा आप दोनों कुछ देर बातें कर सकें। इस नए विषय पर बात-चीत करने से भावना का आवेश कम हो जायगा। तब आप कौशल से पुनः पहले विषय पर आ सकते हैं। पुनः उसी विषय पर आने में बड़ी सतर्कता की आवश्यकता है।

प्रायः लोग मारपीट, गाली-गलौच तथा अनुचित प्रभाव डाल कर अपनी बात मनवाने का उद्योग किया करते हैं। बल-प्रयोग द्वारा यह संभव है कि कुछ काल के लिए निर्बल व्यक्ति आपकी बातें स्वीकार करले, किन्तु नियन्त्रण के हटते ही वह पुनः आपके दृष्टिकोण से असहमत हो जायगा। संभव है आपका शत्रु भी बन जाय। बल का प्रयोग पशुता का द्योतक है। अतः इस शस्त्र का उपयोग न करना ही उत्तम है। प्रेम, सहानुभूति, त्याग, बलिदान, वात्सल्य आदि ऐसी दैवी विभूतियाँ हैं, जिनका प्रभाव स्थायी होता है। जो व्यक्ति आपके सत्य और वास्तविक दृष्टिकोण या विचारधारा से असहमत है, वह आपके क्रोध का पात्र नहीं, दया का पात्र है। उस पर दया का ही व्यवहार रखिए, जब तक कि वह प्रकाश में न आ जाय। उसका विवेक जागृत होते ही उसे स्वयं अपने दुर्व्यवहार और विचार पर आत्मग्लानि प्रतीत होगी।

अधिकारी जनों का व्यवहार प्रायः बड़ा असंगत सा प्रतीत होता है। पद के मद में वे अधीनस्थ से जो चाहें कराते हैं, अनुचित जोर डालते हैं। ऐसे अवसरों पर यही श्रेष्ठ है कि कुछ काल के लिए उनकी आज्ञा के अनुसार कार्य किया जाय। जब उनकी मनःस्थिति शान्त हो तथा सद्विवेक जागृत हो, तब उन्हें सच्ची स्थिति समझाई जाय। अधिकारी प्रशंसा के भूखे होते हैं; अतः उन्हें प्रसन्न कर उचित तथ्यों को समझाने का प्रयत्न करना चाहिए। बड़े आदमियों के 'अहम्" को उभारने से उन्हें प्रसन्न किया जा सकता है।

मूर्खों की उपेक्षा करें

आपने अपनी उन्नति का जो क्षेत्र चुना है, अथवा जिन अल्प साधनों से अपनी उद्देश्यपूर्ति के लिए निकले हैं, उन्हें देख कर ईर्ष्यावश समाज के कुछ व्यक्ति आपकी खिल्ली उड़ाने लगें अथवा मार्ग में अप्रत्याशित बाधाएँ उपस्थित कर दें। प्रत्येक उन्नतिशील क्रान्तिकारी को ऐसे विरोधियों का सामना करना पड़ता है। नई विचारधारा को सरलता से संसार स्वीकार नहीं करता। उसे कटु आलोचना और निर्मम व्यंग्य से परखता है। इस परख में जो सच्चा सोना निकलता है अपने मार्ग पर डटा रहता है, वही संसार का नेतृत्व करता है।

नीच प्रकृति के मनुष्यों से व्यवहार करना बड़ा बेढब है। यदि आप उनसे मिलते जुलते हैं, तो वे सर पर चढ़ जाते हैं, और यदि आप उनसे दूर रहते हैं, वे बुरा मानते, नाराज होते और आपके शुभकार्य में बाधा पहुँचाते हैं। इनमें से कितने ही मूर्ख बुद्धि में हीन, चरित्र में दुर्बल और हृदय से कमजोर होते हैं। अतः सज्जनों के मार्ग में अड़चनें उपस्थित करने में ही उन्हें आनन्द आता है। सस्ती उपहासवृत्ति के वशीभूत होकर ये उत्साही व्यक्तियों का उपहास किया करते हैं।

जब महात्मा ईसा को धर्म का मर्म समझने वाले उद्दण्ड नास्तिकों ने सूली पर चढ़ा दिया, तो भी ईसा महान् ने कहा था, "हे ईश्वर, अबोध व्यक्तियों के पाप को क्षमा करना, क्योंकि ये मूर्ख नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं।" इस प्रकार ईश्वर

के नाम पर एक पक्ष ने दूसरे पक्ष को प्रायः अपनी विचारधारा बरबस मनवाने की कोशिश की और बड़े कठोर अत्याचारों द्वारा अपने विचार दूसरों के मस्तिष्क में बरबस उतारने का प्रयत्न किया है और बदले में समझते रहे हैं, कि हम जनता की सेवा कर रहे हैं। ईश्वर के नाम पर असंख्य निर्मम हत्यायें हुई हैं और अविनाशी आत्मा को बचाने की बात करते हुए इन्होंने नाशवान् शरीर को, मनुष्य की आशा, आकांक्षा, हास्य, प्रेम, करुणा, वात्सल्य तथा सुखसमृद्धि को भस्म कर देने में तनिक भी संकोच नहीं किया है। अपने आपको सब मामलों में सर्वज्ञ समझना और दूसरे को मूर्ख की पदवी देकर उपहास करना एक भारी भूल है।

आप चाहे किसी क्षेत्र में क्यों न हों, आपका दृष्टिकोण न समझकर खुले या चुपचाप उपहास करने वालों के असंख्य रूप आपको मिल जायेंगे। आप पर टीका-टिप्पणी होगी, शायद हँसी मखौल उड़ाया जायगा, किन्तु उत्तम यही है कि आप चुपचाप अपने इष्ट मार्ग पर बढ़े चलें और अपनी साधुता, तथा शालीनता न छोड़ें। उनसे व्यर्थ का झगड़ा मोल न लें। उनके अपने प्रति व्यवहार की उपेक्षा करदें।

जब कोलम्बस एक साधारण से जलयान से अमेरिका की खोज करने निकला था, तो मूर्खों ने उसका उपहास किया। गेलिलियो ने जब ग्रह और नक्षत्रों के संचालन के नियमों का पता लगाया, अपनी दूरबीन के द्वारा जनता के सामने नए विचार प्रस्तुत किए तो जनता ने उसका विरोध किया। चर्च के पादरियों ने उसे धर्म का विरोधी होने का फतवा दे डाला; उसे कारावास में दंड मिला, सात वर्ष कारावास में कठोर यंत्र-

णाएँ पाकर नौ वर्ष पश्चात् गेलीलियो मर गया। उसने फिर भी जनता की मूर्खता की उपेक्षा की। न्यूटन ने पृथ्वी के आकर्षण का पता लगाया। लोगों के अविश्वास का ध्यान न कर अपना कार्य करते रहे। मैक्सवल ने रेडियो की प्रारम्भिक खोज की थी। जर्मन वैज्ञानिक हर्टज ने विद्युत्-तरंगों के विषय में कुछ लाभ दायक खोजें की हैं। मार्कोनी ने विद्युत्-कम्पनों का पता चलाया! प्रारम्भ में अनेकों व्यक्ति इन वैज्ञानिकों पर हँसते रहे, पर अन्त में संसार को अपनी मूर्खता का ज्ञान हुआ। जब राइट बन्धुओं ने चिड़ियों की भाँति गगन में विहार करने का स्वप्न देखा था, जब बैलून में यात्रा करने के प्रयोग हुए, तो अनेक व्यक्ति हँसते थे। पर अन्त में हवा में तैरने वाली मशीनों का आविष्कार हो ही गया। तब तो लोगों को ऐसी प्रसन्नता हुई कि वे आनन्द से लुढ़कने लगे उन्हें स्वयं अपनी मूर्खता पर क्षोभ हुआ। यह तो सार्वजनिक जीवन की बात है। संभव है आपको स्वयं अपने परिवार ही में किसी मूर्ख से पाला पड़ जाय। टाल्स्टाय तथा लिंकन जैसे विद्वानों को मूर्ख पत्नियों का संग करना पड़ा था। कहते हैं टाल्स्टाय की पत्नी उनके विरुद्ध रही, अनेक बार उनसे लड़ती झगड़ती रही तथा दोनों के दाम्पत्य सम्बन्ध कटु रहे। एक दिन तो आवेश में आकर उसने पानी से भरी बाल्टी टाल्स्टाय के मुँह पर दे मारी थी। टाल्स्टाय ने केवल यही कहा "रोज तो बादल गरजते थे। आज बरस भी पड़े।" वे सदा मूर्ख पत्नी की उपेक्षा करते रहे। इसी प्रकार लिंकन की पत्नी ने गर्म चाय का प्याला लिंकन पर दे मारा था। उन्होंने इसकी कोई परवाह नहीं की। इनके प्रति उपेक्षा भाव मन में रख अपने कार्य को करते चले गए। डेल कार्नगी ने नैपोलियन बोनापार्ट की पत्नी के विषय में देखिए क्या लिखा है:—

"नैपोलियन बोनापार्ट के परिवार का एक व्यक्ति नैपोलियन की पत्नी जेसिफिन के साथ बिलियर्ड खेलता था। वह कहता था कि यद्यपि मैं उनकी अपेक्षा खेल में बहुत निपुण था, तथापि मैं हमेशा ही हार मान लेता था और उन्हें ही जिता देने की कोशिश किया करता था। अर्थात् इस बात का ध्यान रखता था कि इसका उसे पता न चले कि मैं जानबूझ कर उसे जिता रहा हूँ।"

मूर्खों से लड़ने या बहस करने की अपेक्षा यह अच्छा है कि उन्हें प्रसन्न करने के लिए झूठमूठ हार मान ली जाय। मूर्ख प्रियजनों, ग्राहकों, पति को पत्नी या पत्नी को पति से उलझने का अवसर ही न आने देना चाहिए। अनेक बार प्रेम, आदर और सहानुभूति से मूर्खों को वश में किया जा सकता या अपना कार्य निकाला जा सकता है।

मूर्खता के और भी अनेक रूप हो सकते हैं। सुप्रसिद्ध रूसी कथाकार एंटन चैखव की शवयात्रा में कठिनता से सौ व्यक्ति थे। उन्हें काले कपड़े पहन कर जाना चाहिए था, पर दो वकील तो नए जूते और रंगीन टाइयां पहिन कर आए थे और इस करुण दृश्य में भी दूल्हे से लग रहे थे। इनमें से एक कुत्तों की बुद्धिमता पर बहस कर रहा था और दूसरा अपने गाँव के घर के आराम तथा आसपास के दृश्यों का बखान कर रहा था।

अपनी विद्यार्थी दशा में नैपोलियन को कुछ दिन आक्सोनी गाँव में एक नाई के यहाँ निवास करना पड़ा था। उस समय तक नैपोलियन प्रसिद्ध नहीं हुआ था। साधारण सा व्यक्ति था। आकृति से सुन्दर और सुकुमार था। संयोग से नाई की चंचल पत्नी उस पर मुग्ध हो गई और उन्हें आकर्षित करने का

प्रयत्न करने लगी, किन्तु नैपोलियन को तो अपनी पुस्तकों से ही अवकाश नहीं था। जब भी वह देखती, उन्हें अपने अध्ययन में निमग्न पाती।

यही नैपोलियन जब देश के प्रधान सेनापति चुने गए, तब फिर उस स्थान पर एक बार गए। नाई की पत्नी दूकान पर बैठी थी। वह उनसे बोले "तुम्हारे यहाँ नैपोलियन बोनापार्ट नाम का युवक भी रहता था, कुछ स्मरण है तुम्हें उसका ?"

नाई की पत्नी झुंझला कर बोली, "रहने भी दीजिए। ऐसे नीरस व्यक्ति की चर्चा मैं करना नहीं चाहती। किसी से मुँह भर मीठी बात करना या हँसना तक उसे नहीं आता था। वह मूर्ख तो बस पुस्तकों का ही कीड़ा था।"

उत्तर सुनकर नैपोलियन हँस पड़े। बोले—"ठीक कहती हो, देवी ! बोनापार्ट तुम्हारी रसिकता में उलझ गया होता, तो देश का प्रधान सेनापति होकर आज तुम्हारे सामने खड़ा नहीं हो सकता था। संयम ही मनुष्य को महान् बनाता है।"

मूर्खों से अड़ने पर, या व्यर्थ के वाद-विवाद में लग जाने से कटुता और शत्रुता की भावनाएं बढ़ती हैं, शत्रुओं की संख्या बढ़ जाती है। डेलकार्नेगी ने ऐसे व्यर्थ के वाद-विवादों से बचने की सलाह दी है। शत्रुता के ऐसे अवसर सदा ही टालने चाहिए। लेखक अपने अनुभव की एक कहानी इस प्रकार सुनाता है जो अति मार्गदर्शक है—

"मुझे वाद-विवाद करने का बहुत शौक था। अपनी बात सच है, यह सिद्ध करने के लिए मैं सदा दूसरों की बातें झूठ प्रमाणित करने और अपनी बात उनके सर मढ़ने का प्रयत्न करता था, परन्तु मेरी इस बुरी आदत को दूर करने

के लिए एक बार एक बहुत अच्छा गुरु मिल गया। हम दोनों एक बार एक प्रीति भोज में गए थे। वहाँ एक सज्जन बहुत ही मजेदार बातें लोगों को सुना सुना कर हंसा रहे थे। बोलने के आवेश में उन्होंने एक ग्रन्थकर्त्ता के सुप्रसिद्ध वाक्य का उच्चारण करते हुए कहा, "यह वाक्य बाइबिल का है।"

मुझे पूर्णतः ज्ञात था कि यह शेक्सपीयर के एक नाटक का है। मैंने बड़े ही ताव के साथ कहा, "यह वाक्य बाईबिल का नहीं, शेक्सपीयर का है।"

फिर भी उसने दृढ़तापूर्वक कहा, "यह वाक्य बाईबिल का ही है।"

बस देर किस बात की थी! बहस छिड़ गई। मेरा एक परम मित्र पास ही बैठा था। उसने झट मुझे पैर से दबा कर चुप रहने का इशारा किया और उससे कहने लगा, "हां ठीक है, यह सज्जन जो कहते हैं, वह बाईबिल का ही वाक्य है।"

भोजन समाप्त हो जाने पर घर जाते समय मैंने अपने मित्र से कहा, "सुनो वह वाक्य शेक्सपीयर का ही है।" इस पर मेरा मित्र बोल उठा, "तेरा कहना बिल्कुल सत्य है। वह वाक्य शेक्सपीयर का ही है। 'हेम्लेट" नाटक के पांचवें अंक के दूसरे दृश्य में है। मुझे निश्चित मालूम है, परन्तु भाई हम दूसरे के यहां भोजन करने गए थे, वहाँ किसी व्यक्ति को झूठा साबित करने से हमें क्या मिलता ? उसकी चार आदमियों में अप्रतिष्ठा करने में तुम्हें कुछ नहीं मिलता, प्रत्युत तुम एक नया शत्रु अवश्य बना लेते। ऐसे अवसरों पर जहाँ तक संभव हो टेढ़े मेढ़े रास्तों पर चलना या बात को टाल देना बहुत लाभदायक होता है।"

मेरा वह प्रिय मित्र कुछ दिनों बाद दुनिया से चल बसा, परन्तु उसके उपदेश ने मेरे मन पर इतना गहरा प्रभाव डाला कि आगे चल कर मैंने ऐसी भूल कभी नहीं की। वाद-विवादों में पड़ कर हम अपने शत्रुओं की संख्या बढ़ा लेते हैं। प्रत्येक व्यक्ति हर प्रकार के प्रयत्न से अपना कहना सच प्रमाणित करने के लिए हर प्रकार का प्रयत्न करता है। उसके मन में भले ही कोई दूसरी बात हो, किन्तु वह बाहर से उसे प्रकट नहीं करता। वह दूसरों का कहना तो जानता तक नहीं, वरन् वाद-विवादों से व्यर्थ का मन-मुटाव अवश्य हो जाता है। जिस किसी से भी बहस कीजिए, वह अपना शत्रु हो जाता है, क्योंकि वाद-विवाद में जीते जाने से उसके स्वाभिमान को ठेस पहुँचती है। आपकी जीत से एक प्रकार से उसकी मान-हानि हो जाती है और उसका कारण चाहे कुछ भी हो वह द्वेष करने लगता है।

अमेरिका की चेन म्यूचल बीमा कम्पनी ने तो अपने विक्रेताओं के लिए एक नीति बना दी है, जिसमें कहा गया है कि उन्हें ग्राहकों से वाद-विवाद करने की कोई आवश्यकता नहीं है। सच्ची विक्रयकला में, अड़ने, झगड़ने, बहस करने या वाद-विवाद के लिए कोई स्थान नहीं रहता है।

आप बाजार में बैठते हैं, तो आपको मूर्ख ग्राहक भी मिलेंगे। आप अफसर हैं, तो संभव है आपके दफ्तर में दो चार सनकी, अड़ियल मूर्ख मातहत हों, लेकिन उत्तम यही है कि उनकी उपेक्षाकर झगड़ा मोल न लिया जाय।

कवि "दिनकर" ने ईर्ष्यालू मूर्खों के सम्बन्ध में बड़े पते की बात लिखी है, जिस का प्रयोग करना चाहिए :—

"सज्जन प्रायः सोचा करते हैं कि अमुक व्यक्ति मुझसे क्यों जलता है? मैंने तो उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ा है। मैं तो पाक-साफ हूँ। मुझ में किसी के प्रति दुर्भावना नहीं है, प्रत्युत अपने शत्रुओं के लिए भी मैं भलाई की बात ही सोचा करता हूँ, फिर भी ये मेरे पीछे क्यों पड़े हुए हैं? मुझ में कौन से ऐसे दोष हैं, जिन्हें दूर करके मैं इन दुष्टों से निपट सकता हूँ?"

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जब इस अनुभव से गुज़रे तो उन्होंने एक बहुमूल्य सूत्र कहा था—"तुम्हारी निंदा वही करेगा, जिसकी तुमने भलाई की है।"

नीत्से नामक राजनीतिज्ञ जब इस कूचे से हो कर निकला, तब मूर्खों के प्रति व्यवहार के लिए उसने जोरों का ठहाका लगाया और कहा, "मित्र, ये तो बाज़ार की मक्खियां हैं, जो अकारण ही हमारे चारों ओर भिनभिनाया करती हैं। ये सामने प्रशंसा और पीठ पीछे निन्दा करते हैं। हम इनके दिमाग पर बैठे हुए हैं। ये मूर्ख मक्खियाँ हमें भूल नहीं सकतीं चूंकि ये हमारे बारे में बहुत कुछ सोचा करती हैं, इसलिए ये हमसे डरती हैं और हम पर शंका भी करती हैं। ये मक्खियाँ हमें हमारे गुणों, हमारी प्रतिभा और बुद्धि के लिए हमें सज़ा देती हैं। बुराई को तो ये क्षमा कर देंगी, क्योंकि बड़ों की बुराइयों को क्षमा कर देने में भी एक शान है, जिस शान का स्वाद लेने को ये मक्खियाँ तरस रही हैं।"

उपर्युक्त उपचार उचित हैं। हमारे विरोधी ये मूर्ख, ये दुष्ट, ये अल्पबुद्धि बेचारे निम्नस्तर पर हैं, नासमझ हैं, और ईर्ष्या के शिकार हैं। उन मूर्खों की बातों में या वाद-

विवाद में उलझने की अपेक्षा तो इनके प्रति उपेक्षा का भाव ही सर्वश्रेष्ठ है। जो इनके प्रति उपेक्षा भाव रख कर अपना काम निकालता है, वही व्यवहारकुशल रहता है।

नीत्से आगे कहते हैं, "इन बाजार की मक्खियों को छोड़ कर एकान्त की ओर भागो। जो कुछ अमर तथा महान् है, उसका निर्माण बाजार तथा सुयश से दूर रह कर ही किया जा सकता है। जो क्रान्तिकारी नेता या सत्पुरुष नए मूल्यों का निर्माण करने वाले हैं, वे बाजारों में नहीं बसते, वे प्रतिष्ठा के पास नहीं फटकते, जहाँ बाजार की मक्खियाँ भिनकती रहती हैं। वे अपनी राह चुपचाप चले जाते हैं।"

"सोने वाले कुत्तों को सोने दीजिए, अन्यथा जागेंगे तो ये भौंकेंगे, और हो सकता है काट भी खाएँ। अपनी दुष्टता छोड़ना इनका स्वभाव नहीं है। मूर्खों को उनके स्वर्ग में ही रहने दीजिए।

"इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम् (ऋक्० १—२३।१०।५)

पराक्रम तथा ज्ञान से मूर्खों को सुधारो। दुष्टों को पराक्रम और चतुरता से ही काबू में लाया जाता है।

"मा नो दुःशंस ईशत" (ऋक्० १,२३ १२६)

दुष्टों की सेवा या सहायता मत करो। समर्थन एवं सहयोग पाकर उनकी दुष्टता और बढ़ जाती है।

"मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम्" (ऋक्० १।४१।१८)

सत्कार्यों में विघ्न उत्पन्न करने वाले दुष्टों का बहिष्कार करो। उन्हें असुरों की तरह घृणित समझो, जो सत्कार्यों में रोड़े अटकाते हैं।

सारी दुनिया आप की है यदि....

"हमने दिल्ली, बम्बई और कलकत्ता में अपनी कोठियाँ बना ली हैं; एक हरिद्वार में तैयार हो रही है; इलाहाबाद में बनाने का विचार है। इस प्रकार इन नगरों में हम जब जाएंगे, हमें घर जैसा पूरा आराम मिल जाया करेगा।" एक ने कहा।

दूसरे ने उत्तर दिया, "हमने कहीं भी मकान नहीं बनवाए, फिर भी आपकी अपेक्षा हमें दो दर्जन नगरों में घर जैसा आनन्द और आराम मिल जाता है।

"सो कैसे ?"

"बात यह है कि हमने भारत में अनेक स्थानों पर मित्र बनाए हैं। हम चाहें जिसके यहाँ चले जाएं, उसी का घर हमारे लिए सहर्ष प्रस्तुत रहता है। उसी के यहाँ ठहरते हैं, उसी के परिवार के एक सदस्य बन जाते हैं। बिना मकान बनाए ही, प्रत्येक मित्र का मकान हमारा ही है। प्रत्येक नए मित्र मिल जाने का तात्पर्य यह है कि हमारा एक नया मकान बन गया। मित्रों की संख्या का निरन्तर बढ़ते जाना नए-स्थानों पर नए-नए मकान बनते जाने जैसा सुविधाजनक है। मैं अपरिचित को भी परिचित बनाने की अपूर्व शक्ति रखता हूँ। फिर मुझे क्या आवश्यकता है कि ईंट चूने पत्थर के मकान स्थान-स्थान पर बनवाता फिरूँ।"

उपर्युक्त उत्तर में एक बड़ा लाभदायक सूत्र छिपा है।

सार्वजनिक जीवन में सफलता चाहने वालों को मित्रभाव की उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहना चाहिए। अरस्तु प्रायः कहा करते थे—"जीवन की श्री-वृद्धि के लिए उत्तम स्वास्थ्य और प्रखर प्रतिभा से भी अधिक मित्रों की आवश्यकता होती है। मित्रों की संख्या में निरन्तर अभिवृद्धि किए जाना सार्वजनिक सफलता के लिए आवश्यक ही नहीं, प्रत्युत उसे अधिक शक्तिशाली और स्थायी बनाने के लिए भी आवश्यक है।" आप चाहें रामायण को लीजिए, अथवा महाभारतयुग को, जहाँ कहीं भी देखें मित्रता के अद्भुत् चमत्कार मिलते हैं। राम, कृष्ण, गांधी आदि महान लोकनायकों की सफलता, महत्ता, शक्ति और प्रभाव के पीछे मैत्री-विस्तार का ही गुर है। प्रत्येक मित्र आपकी शक्ति में कुछ जोड़ता है। आप उसकी कुछ शक्ति चुपचाप अपने में जोड़ लेते हैं।

सैमुएल जॉन्सन की सफलता का यह रहस्य था—"मैं जिस दिन कोई नया परिचय नहीं बढ़ाता हूँ, उस दिन को निरर्थक समझता हूं।" उनके मित्र सभी क्षेत्रों के थे तथा सभी वर्गों से थे। तिस पर उनकी सीमा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। जॉन्सन कहा करते थे, "जीवन को जानने और पहचानने में व्यक्ति तब तक असमर्थ रहता है, जब तक वह प्रत्येक प्रकार के व्यक्ति को नहीं जान पाता। मित्रता एक दिव्य वरदान है, जो मनुष्य के व्यक्तित्व को निखार देता है।"

मित्रता एक शृङ्खला सी है। एक मित्र के मित्र भी आपके मित्र बनते जाते हैं। इस प्रकार परिचय और पारस्परिक सहयोग की सीमा लगातार बढ़ती रहती है। जो लोग चुपचाप घर में बैठे रहते हैं, वे छोटी-छोटी सीमाओं में बन्द रहते

हैं। उनका प्रभाव और शक्ति भी सीमित ही रह जाती है। हमारे यहां वेदों में स्थान-स्थान पर मित्रभाव की वृद्धि का उपदेश दिया गया है:—

"सखायाविव सचावहै"—अथर्व० ६।४२।१

परस्पर मित्रों की तरह रहें। साथियों की वृद्धि करें और आत्मीयता बढ़ाएँ।

"अन्यो अन्यमभिहर्यत"—अथर्व० ३।३०।१

एक दूसरे को प्यार करो। प्यार में परमात्मा का प्रत्यक्ष निवास है।

"सहृदयं सांमनस्यम् अविद्वेषं कृणोमि वः—अथर्व० ३।३०।१

सहृदयता, एकता और प्रेम की भावना उत्पन्न करो। व्यक्तित्व का विकास इन्हीं से होता है।

"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् (ऋग्० १०।१६१।२)

साथ-साथ बढ़ो, मिलकर बोलो, हृदयों में एकता रखो।

पाश्चात्य विचारक भी इसी प्रकार की सम्मति देते हैं। ए० जे० क्रोनिन ने एक स्थान पर कहा है, जिस का तात्पर्य यह है कि किसी व्यक्ति के मित्रों की संख्या जितनी ही अधिक होगी, उसका जीवन उतना ही सफल और प्रगति की ओर अग्रसर होगा। जीवन की सफलता का यह सूत्र हम सभी की पकड़ के निकट है, किन्तु कितने हैं ऐसे व्यक्ति जो अपने दैनिक जीवन में इसका व्यवहार करते हैं। मित्रों की संख्या को निरन्तर बढ़ाये जाना जीवन का चिह्न है, लेकिन खेद है बहुत से व्यक्ति जीवन के चौथेपन तक पहुँचते-पहुँचते ही यह घोषणा कर देते हैं कि वे बूढ़े हो चले हैं, अब आगे दोस्ती क्या बढ़ायें। अपने कुछ

मित्रों, पड़ोसियों तथा व्यापार के कुछ साथियों के साथ ही वे अपना शेष जीवन व्यतीत कर डालना चाहते हैं, किन्तु जीवन और आयु की इस से अधिक निराशाजनक तथा मिथ्या कल्पना और क्या हो सकती है। सामाजिक आदान-प्रदान को सीमित बनाने का प्रयत्न सचमुच जीवन के दायरे को तंग करके काल-कोठरी जैसा बना लेना है।

मित्र जीवन का सच्चा सहारा होता है। उसका हमारे जीवन पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। अतः हमें योग्य विद्वान् और सच्चरित्र मित्रों की सदा खोज में रहना चाहिए। मनोविज्ञान का नियम यह है कि हम जिस से स्नेह करते हैं, उसी की बातों का हमारे हृदय पर चिरस्थायी प्रभाव पड़ता है।

प्रत्येक मित्र एक नई पुस्तक के समान नए-नए अनुभवों का खज़ाना है, उनसे सम्बन्ध जोड़ कर हम उसके अनुभवों, विचारों और योजनाओं से अतुल लाभ उठा सकते हैं। विलयम आस्लर के अनुसार नए मित्र बनाना यौवन की निशानी है। उनके शब्द देखिए—

"कोई व्यक्ति जब नए मित्र बनाना छोड़ देता है, तभी उस की वृद्धावस्था का प्रारम्भ होने लगता है, क्योंकि नए मित्र बनाना जीवन में उत्साह और सरसता के विकास का चिह्न है।" चाहे आप किसी भी आयु में क्यों न पहुँच जाय, नए परिचय और मित्र बनाते रहिए।

अब प्रश्न होता है कि मित्रभाव की वृद्धि कैसे करें? मित्रों की संख्या कैसे बढ़े? यहां पर अनेक अनुभवी विद्वानों के विचार और योजनाएं दी जाती हैं, जिनका दैनिक जीवन में

कुशलता से प्रयोग कर हम अपने मित्रों की संख्या में वृद्धि कर सकते हैं—

डेल कार्नेगी ने मित्रता के विस्तार के लिए छः अनमोल सूत्र इस प्रकार दिये हैं। इनका प्रयोग आज से ही करना प्रारम्भ कर दीजिए—

१. दूसरों के कार्यों में सच्ची रुचि लीजिए। अन्य व्यक्तियों के कार्यों में रुचि लेने से हम दो मास में जितने मित्र बना सकते हैं, उतने दूसरे लोगों को हममें रुचि लेने वाला बनाने का यत्न करके दो वर्ष में भी नहीं बना सकते। स्मरण रखिए, लोगों को आप में रुचि नहीं; उनको मुझ में रुचि नहीं; उनको सवेरे, दोपहर और संध्या अपने में ही रुचि है। जब तक आप लोगों में रुचि न लें, तब तक अन्य व्यक्ति भला आप में रुचि क्यों लें? एल्फ्रेड एडलर ने अपनी पुस्तक "What life should mean to you" में लिखा है, "जो व्यक्ति अपने दूसरे साथी मनुष्यों में रुचि नहीं लेता, उसे ही जीवन में बड़ी से बड़ी कठिनाइयां आती हैं और वही दूसरों के लिए बड़ी से बड़ी हानि का कारण होता है। ऐसे ही व्यक्तियों से सब मानवी असफलताएं उत्पन्न होती हैं।"

२. यदि आप चाहते हैं कि लोग आपसे प्रसन्नतापूर्वक मिलें, तो आपको भी उनसे प्रसन्नतापूर्वक मिलना चाहिए।

चीनी कहावत है, "जिस मनुष्य का मुखमण्डल मुस्कराता हुआ नहीं है, उसे दूकान नहीं खोलनी चाहिए" व्यापारियों को इस गुण की सब से अधिक आवश्यकता है। जो मुस्करा कर ग्राहकों का स्वागत नहीं करते, उनके पास कोई नहीं आता। अतः सदा मुस्कराइए।

३. याद रखिए कि मनुष्य का नाम उसकी भाषा में उसके लिए सब से मधुर और सब से महत्त्वपूर्ण शब्द है। उस नाम का प्रयोग प्रचुरता से किया कीजिए।

४. धैर्य और सहानुभूतिपूर्वक दूसरों की बातें सुनिये। अच्छा श्रोता बनिये। दूसरों को उनके विषय में बात करने के लिए अधिक से अधिक प्रोत्साहित कीजिए। जिस मनुष्य से आप बातें कर रहे हैं, वह जितना आप में और आपकी समस्याओं में दिलचस्पी रखता है, उस से सैकड़ों गुना अधिक अपने में, अपने प्रयोजनों और अपनी समस्याओं में दिलचस्पी रखता है।

५. मनुष्य के हृदय में पहुँचने का राजमार्ग उस से उन चीजों के बारे में बातें करना है जिन को वह सबसे मूल्यवान् समझता है। दूसरों की रुचि की बातें ही कीजिए।

६. दूसरों की चीजों, आदतों, वस्त्रों, कार्यों, घर, बच्चों की निष्कपटता से प्रशंसा कीजिए और इससे व्यक्ति को महत्त्वपूर्ण अनुभव कराइए। प्रो. जान डीवे कहता है कि महत्वपूर्ण होने की अभिलाषा मानव-प्रकृति की गंभीरतम प्रेरणा है; हार्दिक और निष्कपट गुणग्राहिता की सच्ची प्रशंसा अद्भुत शक्ति है। प्रत्येक मनुष्य अपने को महत्त्वपूर्ण समझता है और ऐसा प्रत्येक राष्ट्र भी समझता है। किसी पुरुष से आप उसके विषय में बातें कीजिए, वह घंटों आपकी बातें सुनता रहेगा। इसलिए यदि आप लोगों का प्यारा बनना चाहते हैं तो दूसरों को उनकी महत्ता का अनुभव कराइए, और सच्चे हृदय से कराइए।

श्री ए० जे० क्रोनिन ने अपने अनुभव के आधार पर लिखा है कि दूसरों के साथ निकटता प्राप्त करने का उपाय उनकी

छोटी-छोटी व्यावहारिक सेवाओं की मुक्त कंठ से प्रशंसा करना है। इससे बीच की दीवारें स्वतः ढह जाती हैं और दोनों व्यक्ति एक दूसरे के निकट आ जाते हैं, और यह नूतन परिचय कभी कभी विशेष आकर्षक भी सिद्ध हो जाता है। साधारण समानता—एक सी रुचि—के आधार पर परस्पर मित्रता स्थापित करना बहुत सफल होता है। एक ही स्थान के लिए यात्रा करने वाले दो अपरिचित व्यक्तियों में इसी समानता को लेकर वार्तालाप आरंभ हो सकता है, जो बार-बार के संपर्क से घनिष्ट मैत्री में प्रतिफलित हो सकता है। मित्रता के सम्बन्ध में प्राचीन विद्वानों ने यही सम्मति दी है कि वह समान स्तर के व्यक्तियों में ही होनी चाहिए, अर्थात् मित्रता वहीं निभती है, जहाँ जीवन में समता हो अथवा अभिरुचियों में अनुरूपता हो, किन्तु इसके विपरीत यह भी देखने में आता है कि प्रायः विभिन्न क्षेत्रों वाले व्यक्तियों में घनिष्टतम मैत्री होती है, क्योंकि उनमें से प्रत्येक अपने साथी की नव्यता तथा मौलिकता से प्रभावित और आकर्षित होता रहता है।

कुछ व्यक्तियों की यह धारणा है कि मित्रता निरन्तर मिलने-जुलने का परिणाम है और जिन्हें जीवन में इस प्रकार की सुविधाएं सुलभ नहीं, उनके या तो मित्र होते ही नहीं और यदि होते भी हैं, तो बहुत थोड़े। यह विचार कुछ अंश में भ्रान्तिमूलक है। मित्रता यथार्थ में विश्वास, अनुभव, तथा सहानुभूति के मुक्त विनिमय का ही नाम है। प्रत्यक्ष संपर्क मित्रता के लिए अनिवार्यरूप से आवश्यक नहीं। डेविड लिविंगस्टोन प्रत्यक्ष रूप से हमेशा दूर रहे, लेकिन उनके मित्रों की कोई गिनती नहीं थी। उनकी सबसे छोटी पुत्री उनके विषय

में लिखती है, "मुझे उनकी एक ही मुद्रा का स्मरण है कि जैसे वे हमेशा पत्र ही लिखते रहे हैं।" प्रतिवर्ष वे सैकड़ों पत्र दुनिया भर में फैले अपने मित्रों को लिखा करते थे और उनमें से बहुत से तो ऐसे मित्र हैं जिनसे उनका परिचय केवल आकस्मिक या क्षणिक मात्र था। पत्रों के आदान-प्रदान ने उनके एकान्त जीवन की सीमाएं तोड़ कर मैत्री-विस्तार के लिए अनेक द्वार खोल दिए थे।

"मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे"—यजुर्वेद ३६।१८

सब प्राणियों को मित्रता की ही दृष्टि से देखना चाहिए। किसी भी व्यक्ति से नहीं प्रत्युत, उसके दुष्कर्मों से ही आप घृणा कर सकते हैं।

आप भी लोकप्रिय बन सकते हैं

लोकप्रिय मनुष्य के व्यक्तित्व में एक ऐसी गुप्त वस्तु है, जिसका फोटोग्राफर चित्र नहीं खींच सकता; चित्रकार अपनी तूलिका के द्वारा उसे चित्रपट पर भी अंकित नहीं कर सकता और मूर्तिकार अपनी छेनी से गढ़कर उसका निर्माण नहीं कर सकता। इस गुप्त भाव का हम अपने हृदय में अनुभव करते हैं, किन्तु कोई इसका वर्णन नहीं कर सकता तथा कोई जीवन-चरित्र लेखक इसे शब्दों में अभिव्यक्त नहीं कर सकता। इसी गुप्त-शक्ति से मनुष्य को जीवन तथा समाज में यश, प्रतिष्ठा एवं नेतृत्व प्राप्त होता है।

जब हम श्री राधाकृष्णन, श्री जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती सरोजनी नायडू इत्यादि भारतीय नर-रत्नों तथा स्लन, लिंकन, रूजवेल्ट, चर्चिल इत्यादि यूरोपीय पुरुषों के विषय में सोचते हैं, तो हमें ज्ञात होता है कि उनमें कुछ ऐसी गुप्त मानसिक एवं चुम्बकीय शक्तियां थीं और हैं, जिनका अलक्षित प्रभाव हम पर पड़े बिना नहीं रहता। कुछ ऐसे व्यक्ति हुए हैं, जिनकी महत्ता असंदिग्ध है, किन्तु वे जनता में उत्साह और अपने प्रति आदर उत्पन्न न कर सके। उन में वह मानवीय विद्युत् न थी। मानवीय चुम्बक अनेक तत्वों का सम्मिश्रित योग है। इसमें व्यक्तिगत सम्पर्क, मिलनसारी, मस्तिष्क की शक्ति एवं शिक्षा के साथ-साथ अन्य भी अनेक तत्त्व सम्मिलित हैं। हम देखते हैं कि अनेक व्यक्ति साधारण योग्यता के होकर भी व्यक्तिगत दृष्टि से अनेक आकर्षण लेकर आते हैं। वे समाज

में एक दूसरे से बातें करना जानते हैं, और अपनी मानवीय विद्युत से अनायास ही दूसरों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

इस मानवीय विद्युत् का एक अच्छा उदाहरण एक कुशल वक्ता है, जो अपनी वक्तृत्वकला से अनायास ही श्रोताओं को वश में कर लेता है। अच्छे व्यक्तित्व में एक ऐसा जादू, एक ऐसा मादक आकर्षण होता है, जो क्षण भर में हमें विमुग्ध कर लेता है और हम उनकी बातें मान लेते हैं।

अच्छे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति अपनी कुशाग्र बुद्धि और विवेक के बल पर यह मालूम कर लेते हैं कि एक विशेष अवसर पर क्या, कैसे, क्योंकर कहना चाहिए? तात्कालिक बुद्धि और सामान्य ज्ञान वे गुण हैं, जिनकी अत्यधिक आवश्यकता है। सुसंस्कृत स्वभाव, परिष्कृत एवं परिपक्व रुचि का निरन्तर विकास होना अनिवार्य है। लोकप्रिय बनने के इच्छुक होकर आप दूसरों के दृष्टिकोण पर तुषार-पात नहीं कर सकते। आपको समाज में रह कर लोकप्रियता प्राप्त करनी है। यह लोकप्रियता वह प्रसिद्धि है, जो आपको आपके बन्धु, मित्र, जान-पहिचान, के व्यक्ति, समाज के अन्य सदस्य प्रदान करते हैं। आपको अपने अधिक से अधिक सम्बन्ध बढ़ाने और उन्हें निरन्तर बनाए रखना है। आपको समय-समय पर लेन-देन बनाए रखना चाहिए। ऐसे अधिक से अधिक अवसर निकालने चाहिएँ, जिनमें आप दूसरों को प्रसन्न कर सकें।

लोकप्रियता आपके ज्ञानवर्द्धन पर बहुत कुछ निर्भर है। आपका सामान्य ज्ञान, विशेषतः राजनीति और समाज-शास्त्र ये दोनों ऐसे विषय हैं, जिनका अच्छा ज्ञान होने पर ही आप

समाज में आकर्षण होने का केन्द्र बन सकते हैं। अधिक से अधिक सामान्य ज्ञान संग्रह करें, समाचार पत्र पढ़ें, अपने ज्ञान को चिरनवीन रखें। ये ऐसे विषय हैं जिनसे आपकी यश और प्रतिष्ठा का सम्बन्ध है। जो इन विषयों पर तथा सामयिक समस्याओं पर बातें कर सकता है, वह अवश्य लोकप्रियता प्राप्त करेगा।

डेल कार्नेगी ने लोकप्रियता प्राप्त करने के जो ६ नियम बनाए हैं, उन्हें स्मरण रखिए और दैनिक जीवन में प्रयुक्त कीजिए। उनके अनुसार आप (१) दूसरों के प्रति रुचि उत्पन्न करें, सहानुभूति को फैलाएं, उनकी समस्याओं में अनुभूति उत्पन्न करें, (२) स्वाभाविक मुस्कान से सदैव दूसरों का स्वागत करें, (३) उनके नाम से स्मरण करें। दूसरों को उनके नाम से पुकारने से निकटता और आत्मीयता की अभिवृद्धि होती है। बातचीत के मध्य में कई बार उनके नाम का संकेत कीजिए, (४) अच्छे श्रोता बनिए और वक्ता के विचारों के प्रति हार्दिक सहानुभूति और प्रशंसा के भाव भी यदि श्रोता प्रकट करता चले और दूसरों को उनके दृष्टिकोण समझाने, कहने, बोलने की पूरी स्वतन्त्रता देता चले, तो वह सहज ही वक्ता के हृदय में वास कर लेता है। चार्ल्स डब्ल्यू० इलियट ने सत्य ही लिखा है—

"सफल व्यवसायिक बातचीत का कोई रहस्य नहीं है...जो व्यक्ति आप से बात कर रहा है, उसकी बातों पर पूर्ण ध्यान देना ही महत्व की वस्तु है। बातचीत करने वाले व्यक्ति की भावनाओं और विचारों को गुदगुदाने का इससे अधिक सफल

कोई दूसरा उपाय नहीं है।" जहाँ संभव हो दूसरों की प्रशंसा करें, अन्यथा सहानुभूति को प्रकट करते ही चलें।

कार्नेगी का एक नियम है कि यदि आप स्वयं आकर्षित बनना चाहते हैं, तो स्वयं भी दूसरों से ऐसे प्रश्न कीजिए जिनके उत्तर देने में वे आनन्द का अनुभव करें। उन्हें अपने विषय में कहने को प्रोत्साहित कीजिए। उनकी हृदयस्थ भावनाओं को गुदगुदाइए। आपको लोग पसन्द करेंगे।

कार्नेगी ने पुनः पुनः इस बात पर ध्यान आकृष्ट किया है, कि हम दूसरों के दृष्टिकोण से देखना सीखें, उन्हीं की रुचियों, अनुभूति की बातों के विषय में उनसे बातें करें। कार्नेगी कहते हैं—"दूसरों के हित की भाषा में बात करने से आप सहज ही दूसरों के हृदयों में स्थान बना सकते हैं। किसी मनुष्य के हृदय में प्रवेश करने का राजमार्ग उन बातों की चर्चा करना है, जिन्हें वह बहुत अधिक पसन्द करता है। अतः किसी व्यक्ति के विश्वास और प्रेम का पात्र बनने के लिए आप यह जानने का प्रयत्न कीजिए कि किस विषय में उसकी विशेष अभिरुचि है और फिर उसी विषय में उससे बातें कीजिए। उसके विचारों को गुदगुदा कर आप सहज ही उसके साथ अपनी आत्मीयता स्थापित कर सकते हैं। लोगों की प्रवृत्तियों और अभिरुचियों को पहिचानने में आप को वर्षों लग सकते हैं।"

लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए अधिक से अधिक व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित कीजिए, अपने स्वार्थ की संकुचित सीमा छोड़कर उदारता, प्रेम तथा सहानुभूति की विस्तृत सीमा बनाइये। विनम्रता एक ऐसा गुण है, जिस से जनता आपके पास खिंच कर आती है प्रत्येक से मित्रतापूर्ण व्यवहार करने

से आप एक ऐसे दर्पण बन जाते हैं, जिस में प्रत्येक व्यक्ति अपना प्रतिबिम्ब देखता है। जितने अधिक व्यक्ति आप में आत्मभाव पायेंगे, जितने आपके मधुर सम्बन्ध बढ़ते जायेंगे, उतनी ही आप लोकप्रियता प्राप्त कर सकेंगे।

प्रत्येक व्यक्ति एक बन्द पुस्तक के अनुरूप है। आप इस मनुष्य रूपी पुस्तक का एक पृष्ठ उलटिए। आप को नवीन जानकारी प्राप्त होगी। कुछ नए नए अनुभव तथा ज्ञान-तत्व प्राप्त हो जायंगे। प्रत्येक व्यक्ति के अनुभवों से लाभ उठाने, कुछ सीखने समझने, सहानुभूति प्रदान करने के लिए प्रस्तुत रहिए। प्रत्येक व्यक्ति मनोरंजन ज्ञान से परिपूर्ण है। हर एक के पास आपसे कुछ कहने, आपको कुछ प्रदान करने के लिए मौजूद है। यदि आप चतुर हैं, तो अपने काम की चीज आसानी से उनके मस्तिष्कों में से निकाल सकते हैं। ये वे रहस्य होंगे, जो आप के लिए सर्वथा नवीन और उपयोगी हैं, जीवन में कभी न कभी काम में आने वाले हैं। अतः अपने सम्पर्क में आने वाले किसी भी व्यक्ति का तिरस्कार मत कीजिए। उनसे ज्ञान आप किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं? इसका उत्तर है, स्वयं उन्हें अपना समय और सहानुभूति देकर, उनकी व्यक्तिगत समस्याओं से अनुभूति रख कर और उनके हितैषी और मित्र बन कर। संसार के अनेक व्यक्ति आप से सहानुभूति का दान चाहते हैं, आपको अपने की कहानियां दुःख-पीड़ा सुनाने के इच्छुक हैं। अपनी हिचक और मिथ्या बनावट, कृत्रिमता त्याग कर उनसे तादात्म्य का अनुभव कीजिए। व्यर्थ की लज्जा का परित्याग कर दीजिए। अधिक से अधिक व्यक्तियों से मिलिये, यथा-सम्भव बरतिये, और उनके गर्व को सन्तुष्ट रखने में प्रयत्नशील रहिए।

सबसे मिलने वाला और उनके कष्ट-पीड़ा को सुनने वाला व्यक्ति प्रत्येक अनुभव को शिक्षादान देने वाला सन्देश समझ कर ग्रहण करता है। प्रत्येक आदमी प्रसन्न, मिलनसार व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित रखने को इच्छुक होता है। जो व्यक्ति चुपचाप तथा रहस्यपूर्ण होता है, उस पर जनता का विश्वास नहीं होता। जिस व्यक्ति का हृदय आप पढ़ नहीं सके हैं, उस की सभ्यता और न्यायप्रियता पर आप कैसे विश्वास कर सकते हैं? जनता का ध्यान आकृष्ट करने वाले व्यक्ति प्रायः उदार और विशाल हृदय होते हैं। उन्हें स्वतः प्रेम करने को जी चाहता है, अनायास ही वे हमारा विश्वास प्राप्त कर सकते हैं। गोपनीयता घृणा उत्पन्न करती है, प्रेम आकृष्ट करता है। जो व्यक्ति बातों को बहुत छिपाने और चुगली करने के स्वभाव वाला होता है, उसे देख कर दूसरे व्यक्ति के हृदय में सन्देह उत्पन्न होता है। गोपनीयता धारण करने वाले, चुपचाप रहने वाले दूसरों से न मिलने तथा न बरतने वाले व्यक्ति कभी लोकप्रिय नहीं हो सकते। जो सदा आपको अपना हृदय खोल कर दिखा देता है, जिसकी उदारता और सज्जनता प्रेम से भलीभांति ओत-प्रोत है, वह अनायास ही हमारा प्रेम प्राप्त कर लेता है। अपनी त्रुटि पर वह सदैव क्षमा याचना को प्रस्तुत रहता है, हम उसे प्रसन्नता पूर्वक क्षमा कर देते हैं क्योंकि उसके सदाचार और भलमनसाहत पर हमें पूर्ण विश्वास है। आप सदाचारी, प्रेममय और उदार बनें, लोकप्रियता प्राप्त हो जायगी।

सहानुभूति के मीठे शब्दों का जादू

एक समय कवि (Charles Mackay) बहुत उदास था, कारण यह कि उसे रुपयों की बहुत आवश्यकता थी। एक धनी व्यक्ति को ज्ञात हुआ कि कवि बहुत आर्थिक संकट में है। उसे अपने धन का बहुत गर्व था। अतः उसने अपने धन द्वारा कवि की सहायता की; पर उसने जो सहायता की, वह असहानुभूति-पूर्ण और बिना मीठे शब्दों के बोले हुए थी। आर्थिक संकट टलने पर कवि ने उसे बहुत धन्यवाद दिया और रुपया वापस लौटा दिया। इस प्रकार वह धनी व्यक्ति की उदारता के अहसान से मुक्त हुआ।

कुछ समय पश्चात् वही कवि बीमार हुआ। उसके शरीर में भयंकर पीड़ा थी, सिर दर्द से फटा पड़ता था। वह शारीरिक और मानसिक पीड़ा से कराह रहा था। संयोगवश उसकी झोंपड़ी के पास से एक निर्धन व्यक्ति निकला। उसे कवि की बीमार अवस्था पर दया आ गई। उसने उसके सिर को बाँधा, दबाया, प्यार से दवा लगाई और रात-दिन रोगी की शय्या के सिरहाने बैठ कर सेवा शुश्रूषा की। सहानुभूतिभरे मीठे-मीठे शब्द बोलकर पीड़ा कम की। उसके इस मधुर व्यवहार और सहानुभूतिपूर्ण प्रेम-चिकित्सा से कवि स्वस्थ हो गया। कवि कहता है, 'प्रथम धनी व्यक्ति को रुपया वापस करके मैं उसके अहसान से मुक्त हो गया था, पर इस दूसरे उदार निर्धन व्यक्ति के सहानुभूतिपूर्ण मीठे-मीठे शब्दों का अहसान मैं कैसे चुकाऊं। रुपया, सोना, हीरे, मोती बहुमूल्य

हैं, परन्तु ईश्वर की देन के रूप में मनुष्य के हृदय में रहने वाली यह दैवी सहानुभूति रुपए-पैसों की अपेक्षा कहीं महान और प्रभावोत्पादक है। यह मानसिक रोगों की अमोघ औषध है।'

सहानुभूति वास्तव में महान दैवी औषध है! यह देने वाले को और जिसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाता है, दोनों को ही लाभ पहुँचाने वाली है। मनुष्य के गुप्त दुःखों, दलित इच्छाओं और मानसिक जटिलताओं का अन्त करने वाली है।

वास्तव में मानसिक क्षेत्र की जटिलता, दुराव-छिपाव से बनने वाली मानसिक ग्रन्थियाँ और गुप्त दुःख ही हमारी निराशा के कारण हैं। हम दुःखी इसी लिए रहते हैं कि मनमें व्यथा का भार छिपाए हुए हैं। हम अपनी व्याकुलता को जितना अधिक दूसरों से, समाज से, अपने बड़े-बूढ़ों, गुरुओं, अफसरों से छिपाते हैं, उतनी ही जटिलता हमारे मानसिक क्षेत्र में उत्पन्न होती जाती है, जैसे किसी वस्तु को छिपाकर अँधेरी कोठरी में रखने से उसमें बदबू आने लगती है और वह सड़-गल कर नष्ट हो जाती है, उसमें कीड़े पड़ जाते हैं, उसी प्रकार जिन गन्दे विचारों, वासनाओं, ईर्ष्या, तृष्णा, मोह, चिन्ता, भय आदि विकारों को आप छिपाकर रखते हैं, वे मानसिक जटिलता उत्पन्न करते हैं। दुराव-छिपाव मानसिक रोगों को उत्पन्न करता है। इसके विपरीत जो गुप्त-गुप्त छिपे मनके दुराव को दूसरों के समक्ष खोल देता है, वह उतनी ही मानसिक शान्ति प्राप्त करता है। उसकी विचारधारा उतनी ही स्पष्ट और स्वस्थ होती जाती है।

मनुष्य अपने कुचिन्तन और दुराव द्वारा मानसिक व्याधियां उत्पन्न करता है। वास्तव में जो बात छिपाई जाती है, वह स्वयं पापमय होती है। हम उसे छिपाते ही इसलिए हैं कि वह नीच है, झूठ है, पापमय है, दुष्कर्म से संयुक्त है। हमारी अन्तरात्मा हम से कहती है कि उसका फल दुःखदायी होगा। मन में किसी के प्रति कटुभाव रखना एक खतरा है। चिन्ता के समान कोई अग्नि नहीं, द्वेष के समान कोई विष नहीं, क्रोध के समान कोई शूल नहीं, लोभ के समान कोई जाल नहीं। ये दोष मन में इकट्ठे होने पर मनुष्य कुछ ही समय में पापपङ्क में डूब जाता है।

यदि मनुष्य अपने हृदय की व्यथा को दूसरों के समक्ष खोल कर रख दे और उनसे अपने आप कष्टों के लिये थोड़ी-सी सहानुभूति पा ले तो उसे मानसिक शान्ति मिलती है। मित्र उसे दूषित भावनाओं से बचाते हैं। कुचिन्तन की शृङ्खला टूट जाती है और व्याधियां दूर हो जाती हैं। जब तक मनुष्य अपनी मानसिक कठिनाइयों को दूसरों के समक्ष प्रकट करता रहता है, मित्रों से बातचीत करके सान्त्वना पाता रहता है, अपने-आप को समाज में मिलाये रहता है, तब तक वे मानसिक जटिलता और परेशानी का कारण नहीं बनतीं; किन्तु हम अपनी सभी भावनाओं को अपने मित्रों के समक्ष प्रकट नहीं कर सकते, क्योंकि वे घृणित होती हैं। हमारी अन्तरात्मा कहती है कि वे उन्हें सुनते ही हम से घृणा करने लगेंगे। इसी प्रकार हम अपने किये हुए गंदे कार्यों को दूसरों से कहते हुए डरते हैं। हम उन्हें दूसरों के समक्ष स्वीकार करके हृदय का भार हल्का कर सकते हैं; पर ऐसा उसी से कर सकते हैं, जो हमारे साथ सच्ची सहानुभूति प्रदर्शित करे।

सहानुभूति का अद्भुत कार्य ऐसे मानसिक रोगियों में स्वास्थ्य उत्पन्न करने में देखा जाता है। जो मानसिक चिकित्सक अपने मानसिक रोगियों से जितनी अधिक सहानुभूति दिखाता है, वह उतना ही उनका विश्वास प्राप्त कर लेता है और उस पर वे उतना ही गुप्त पाप या दुःख प्रकट कर देते हैं। चिकित्सक अपने मीठे-मीठे सहानुभूतिपूर्ण शब्दों और व्यवहारों से उन्हें दुश्चिन्तन से हटाकर शुभ चिन्तन में निमग्न कर देता है।

महात्मा बुद्ध ने एक बड़े पते की बात कही है, जिसको आप सहानुभूति से ही कार्यरूप में परिणत कर सकते हैं। वे कहते हैं—

'ढके हुए को खोल दो, छिपे हुए को स्पष्ट कर दो तो तुम अपने पापों से मुक्त हो जाओगे; क्योंकि छिपाने से ही पाप लगता है, उघड़ा हुआ पाप नहीं लगता।'

मनुष्य अपनी गुप्त बातें तभी प्रकट करता है, जब वह यह जान लेता है कि अमुक व्यक्ति मुझसे सच्ची सहानभूति दिखायेगा। सहानुभूति के दो मीठे शब्द पाते ही रोगी अपने जटिल भाव अपने-आप प्रकाशित करने लगता है। सहानुभूति का मृदु अवलम्ब पाते ही चेतना इनका अपना प्रकाशन नहीं रोक सकती। छिपे हुए दुःख तथा मानसिक ग्रन्थियाँ टूक-टूक होकर दूर हो जाती हैं। यदि हमारे बड़े लोग बच्चों से और अधिकारी अपने कर्मिष्टों से सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने लगें, तो सदा मानसिक आरोग्य बना रहेगा। सहानुभूति आन्तरिक दासता के बन्धन काट डालती है। जिन गुप्त भयों या पापों से मनुष्य बँधा रहता है, उनके बन्धन टूटते

ही वह मुक्त गगन में विहार करने वाले पक्षी के समान सर्वतोमुख आनन्द प्राप्त करता है।

इस प्रसङ्ग में एक मनो-विज्ञान-विशारद सत्य ही लिखते हैं—"मानसिक विकार को बाहर निकालने में सहानुभूति का भाव बहुत ही लाभकारी होता है। रोगी उस से सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति के सामने अपने मन के छिपे भाव प्रकाशित कर सकता है। जो व्यक्ति रोगी से घृणा करता है अथवा उससे तटस्थ रहता है, उसके समक्ष रोगी अपने भाव कैसे प्रकाशित कर सकता है। पागल से घृणा करनेवाले व्यक्ति को देखकर पागलका रोग और भी बढ़ जाता है। इसके प्रतिकूल सहानुभूति रखनेवाले व्यक्ति के समक्ष पागल का उन्माद कम हो जाता है।" डॉ० होमरलेन ऐसे अनेक शेलशाम के रोगियों को स्वस्थ कर सके, जो डॉ० फ्रायडकी विधि से स्वस्थ न हो सके थे। इसका प्रधान कारण डॉ० होमरलेन का रोगियों के प्रति सहानुभूति का भाव था। जहाँ डॉ० फ्रायड मनुष्य के मौलिक स्वभाव को स्वार्थी और पाशविक मानते थे, डॉ० होमरसेन उसे दैविक मानते थे। इसलिए उन्हें रोगी के साथ सहानुभूति स्थापित करना सुगम होता था। इस सहानुभूति के कारण रोगी खुलकर अपने मन की गाँठें और व्याकुलता डॉ० होमरलेन के समक्ष खोल सकता था। रोगी के मन में अन्तर्द्वन्द्व होने के कारण ही रोग की उपस्थिति होती है। जब उस अन्तर्द्वन्द्व का अन्त हो जाता है, तब रोग का भी अन्त हो जाता है। अन्तर्द्वन्द्व जब तक भीतर ही रहता है, तब तक रोग के बाहरी लक्षण नहीं दिखाई देते और जब वह बाहर आने लगता है, तब मानसिक रोग की उपस्थिति होती है। जब चिकित्सक रोगी की छिपी

भावनाओं के प्रति सहानुभूति दिखलाता है, तब वे धीरे-धीरे अपने आप बाहर आने लगती हैं। उनके बाहर आने पर उस के चेतन और अचेतन मन में एकता स्थापित होना सरल हो जाता है। वास्तव में चिकित्सक के समक्ष अपने गुप्त भाव प्रकाशित करने और उसके द्वारा सहानुभूति प्राप्त करने से ही रोग-निवारण हो जाता है।

सहानुभूति ऐसी अमोघ औषध है। पर खेद है हम अपने दैनिक जीवन और व्यवहार में इस दैवी भाव का प्रयोग नहीं करते। जब मनोवैज्ञानिक चिकित्सक इसके प्रयोग से पागल तक को अच्छा कर सकते हैं, तब तो हम अपने दैनिक जीवन में इर्द-गिर्द आने वाले व्यक्ति को इसके प्रयोग से क्यों नहीं अपना बना सकते? हमें चाहिए कि उदारता से सहानुभूति का प्रयोग करें और व्यक्ति एवं पीड़ित मानव के दुःख-दर्द को कम करते रहें।

कठोर व्यवहार से मित्र भी शत्रु हो जाते हैं; पर सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार और वातावरण से पत्थर-हृदय भी पिघल उठते हैं। कठोरता से अच्छा आदमी भी आपके विरुद्ध विद्रोह करने को उतारू हो जाता है, पर सहानुभूति से गुप्त शत्रुता के भाव भी दूर हो जाते हैं। सहानुभूति एक दैवी गुण है। इसे विकसित कीजिये।

महान् पुरुषों के पास पैसा नहीं होता, न वे इसकी इच्छा ही करते हैं; क्योंकि उनका दया और सच्ची सहानुभूति से पूर्णतः भरा हृदय उनके पास कुबेर के भंडार की तरह विद्यमान रहता है।

कहते हैं इस जगती में निर्धन का कोई ठिकाना नहीं, यह बात गलत है; क्योंकि गरीबी मानवता और सच्ची सहानुभूति के दिव्य गुणों को विकसित करने वाली है। एक गरीब दूसरे के प्रति सच्ची सहानुभूति दिखा सकता है। ईश्वर के दर्शन कौन करेगा? वही जिसके पास सहानुभूतिपूर्ण संवेदनशील हृदय है, जो दूसरों के दुःख-दर्द में काम आता है। कठोर व्यक्ति तो अपाहिज है। वह अपने समाज के इर्द-गिर्द रहने वाले व्यक्तियों तक से प्रेम नहीं कर सकेगा। कोई उसके दुःख-शोक में सम्मिलित नहीं होगा।

जिन के हृदय में दया और सहानुभूति है, वे कभी बिना मित्रों के नहीं रहेंगे। इसलिए देखो अपने मन में सहानुभूति को प्रथम स्थान दो, दूसरों के प्रति प्रेम, दया और सहानुभूति का व्यवहार करो।

तुम्हारे जीवन के जो क्षण व्यतीत हो रहे हैं, उनको मीठे प्रेममय सुन्दर और दूसरों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण विचारों से भरो।

दुखी और त्रस्त व्यक्तियों को देने के लिए यदि तुम्हारे पास रुपया नहीं है तो सहानुभूति के दो मीठे शब्द उसे दो; वह तुम्हारा हो जायगा।

कोई दूसरा उपाय नहीं है।" जहाँ संभव हो दूसरों की प्रशंसा करें, अन्यथा सहानुभूति को प्रकट करते ही चलें।

कार्नेगी का एक नियम है कि यदि आप स्वयं आकर्षित बनना चाहते हैं, तो स्वयं भी दूसरों से ऐसे प्रश्न कीजिए जिनके उत्तर देने में वे आनन्द का अनुभव करें। उन्हें अपने विषय में कहने को प्रोत्साहित कीजिए। उनकी हृदयस्थ भावनाओं को गुदगुदाइए। आपको लोग पसन्द करेंगे।

कार्नेगी ने पुनः पुनः इस बात पर ध्यान आकृष्ट किया है, कि हम दूसरों के दृष्टिकोण से देखना सीखें, उन्हीं की रुचियों, अनुभूति की बातों के विषय में उनसे बातें करें। कार्नेगी कहते हैं—"दूसरों के हित की भाषा में बात करने से आप सहज ही दूसरों के हृदयों में स्थान बना सकते हैं। किसी मनुष्य के हृदय में प्रवेश करने का राजमार्ग उन बातों की चर्चा करना है, जिन्हें वह बहुत अधिक पसन्द करता है। अतः किसी व्यक्ति के विश्वास और प्रेम का पात्र बनने के लिए आप यह जानने का प्रयत्न कीजिए कि किस विषय में उसकी विशेष अभिरुचि है और फिर उसी विषय में उससे बातें कीजिए। उसके विचारों को गुदगुदा कर आप सहज ही उसके साथ अपनी आत्मीयता स्थापित कर सकते हैं। लोगों की प्रवृत्तियों और अभिरुचियों को पहिचानने में आप को वर्षों लग सकते हैं।"

लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए अधिक से अधिक व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित कीजिए, अपने स्वार्थ की संकुचित सीमा छोड़कर उदारता, प्रेम तथा सहानुभूति की विस्तृत सीमा बनाइये। विनम्रता एक ऐसा गुण है, जिस से जनता आपके पास खिंच कर आती है प्रत्येक से मित्रतापूर्ण व्यवहार करने

से आप एक ऐसे दर्पण बन जाते हैं, जिस में प्रत्येक व्यक्ति अपना प्रतिबिम्ब देखता है। जितने अधिक व्यक्ति आप में आत्मभाव पायेंगे, जितने आपके मधुर सम्बन्ध बढ़ते जायेंगे, उतनी ही आप लोकप्रियता प्राप्त कर सकेंगे।

प्रत्येक व्यक्ति एक बन्द पुस्तक के अनुरूप है। आप इस मनुष्य रूपी पुस्तक का एक पृष्ठ उलटिए। आप को नवीन जानकारी प्राप्त होगी। कुछ नए नए अनुभव तथा ज्ञान-तत्व प्राप्त हो जायंगे। प्रत्येक व्यक्ति के अनुभवों से लाभ उठाने, कुछ सीखने समझने, सहानुभूति प्रदान करने के लिए प्रस्तुत रहिए। प्रत्येक व्यक्ति मनोरंजन ज्ञान से परिपूर्ण है। हर एक के पास आपसे कुछ कहने, आपको कुछ प्रदान करने के लिए मौजूद है। यदि आप चतुर हैं, तो अपने काम की चीज आसानी से उनके मस्तिष्कों में से निकाल सकते हैं। ये वे रहस्य होंगे, जो आप के लिए सर्वथा नवीन और उपयोगी हैं, जीवन में कभी न कभी काम में आने वाले हैं। अतः अपने सम्पर्क में आने वाले किसी भी व्यक्ति का तिरस्कार मत कीजिए। उनसे ज्ञान आप किस प्रकार प्राप्त कर सकते है? इसका उत्तर है, स्वयं उन्हें अपना समय और सहानुभूति देकर, उनकी व्यक्तिगत समस्याओं से अनुभूति रख कर और उनके हितैषी और मित्र बन कर। संसार के अनेक व्यक्ति आप से सहानुभूति का दान चाहते हैं, आपको अपने की कहानियां दुःख-पीड़ा सुनाने के इच्छुक हैं। अपनी हिचक और मिथ्या बनावट, कृत्रिमता त्याग कर उनसे तादात्म्य का अनुभव कीजिए। व्यर्थ की लज्जा का परित्याग कर दीजिए। अधिक से अधिक व्यक्तियों से मिलिये, यथासम्भव बरतिये, और उनके गर्व को सन्तुष्ट रखने में प्रयत्नशील रहिए।

के है दूसरा उपाय नहीं है।" जहाँ संभव हो दूसरों की प्रशंसा करें, अन्यथा सहानुभूति को प्रकट करते ही चलें।

कार्नेगी का एक नियम है कि यदि आप स्वयं आकर्षित करना चाहते हैं, तो स्वयं भी दूसरों से ऐसे प्रश्न कीजिए जिनके उत्तर देने में वे आनन्द का अनुभव करें। उन्हें अपने विषय में कहने को प्रोत्साहित कीजिए। उनकी हृदयस्थ भावनाओं को गुदगुदाइए। आपको लोग पसन्द करेंगे।

कार्नेगी ने पुनः पुनः इस बात पर ध्यान आकृष्ट किया है, कि हम दूसरों के दृष्टिकोण से देखना सीखें, उन्हीं की रुचियों, अनुभूति की बातों के विषय में उनसे बातें करें। कार्नेगी कहते हैं—"दूसरों के हित की भाषा में बात करने से आप सहज ही दूसरों के हृदयों में स्थान बना सकते हैं। किसी मनुष्य के हृदय में प्रवेश करने का राजमार्ग उन बातों की चर्चा करना है, जिन्हें वह बहुत अधिक पसन्द करता है। अतः किसी व्यक्ति के विश्वास और प्रेम का पात्र बनने के लिए आप यह जानने का प्रयत्न कीजिए कि किन विषय में उसकी विशेष अभिरुचि है और फिर उसी विषय में उससे बातें कीजिए। उसके विचारों को गुदगुदा कर आप सहज ही उसके साथ अपनी आत्मीयता स्थापित कर सकते हैं। लोगों की प्रवृत्तियों और अभिरुचियों को पहिचानने में आप को वर्षों लग सकते हैं।"

लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए अधिक से अधिक व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित कीजिए, अपने स्वार्थ की संकुचित सीमा छोड़कर उदारता, प्रेम तथा सहानुभूति की विस्तृत सीमा बनाइये। विनम्रता एक ऐसा गुण है, जिस से जनता आपके पास खिंच कर आती है प्रत्येक से मित्रतापूर्ण व्यवहार करने

से आप एक ऐसे दर्पण बन जाते हैं, जिस में प्रत्येक व्यक्ति अपना प्रतिबिम्ब देखता है। जितने अधिक व्यक्ति आप में आत्मभाव पायेंगे, जितने आपके मधुर सम्बन्ध बढ़ते जायेंगे, उतनी ही आप लोकप्रियता प्राप्त कर सकेंगे।

प्रत्येक व्यक्ति एक बन्द पुस्तक के अनुरूप है। आप इस मनुष्य रूपी पुस्तक का एक पृष्ठ उलटिए। आप को नवीन जानकारी प्राप्त होगी। कुछ नए नए अनुभव तथा ज्ञान-तत्व प्राप्त हो जायंगे। प्रत्येक व्यक्ति के अनुभवों से लाभ उठाने, कुछ सीखने समझने, सहानुभूति प्रदान करने के लिए प्रस्तुत रहिए। प्रत्येक व्यक्ति मनोरंजन ज्ञान से परिपूर्ण है। हर एक के पास आपसे कुछ कहने, आपको कुछ प्रदान करने के लिए मौजूद है। यदि आप चतुर हैं, तो अपने काम की चीज़ आसानी से उनके मस्तिष्कों में से निकाल सकते हैं। ये वे रहस्य होंगे, जो आप के लिए सर्वथा नवीन और उपयोगी हैं, जीवन में कभी न कभी काम में आने वाले हैं। अतः अपने सम्पर्क में आने वाले किसी भी व्यक्ति का तिरस्कार मत कीजिए। उनसे ज्ञान आप किस प्रकार प्राप्त कर सकते है? इसका उत्तर है, स्वयं उन्हें अपना समय और सहानुभूति देकर, उनकी व्यक्तिगत समस्याओं से अनुभूति रख कर और उनके हितैषी और मित्र बन कर। संसार के अनेक व्यक्ति आप से सहानुभूति का दान चाहते हैं, आपको अपने की कहानियां दुःख-पीड़ा सुनाने के इच्छुक हैं। अपनी हिचक और मिथ्या बनावट, कृत्रिमता त्याग कर उनसे तादात्म्य का अनुभव कीजिए। व्यर्थ की लज्जा का परित्याग कर दीजिए। अधिक से अधिक व्यक्तियों से मिलिये, यथासम्भव बरतिये, और उनके गर्व को सन्तुष्ट रखने में प्रयत्नशील रहिए।

सबसे मिलने वाला और उनके कष्ट-पीड़ा को सुनने वाला व्यक्ति प्रत्येक अनुभव को सिखावन देने वाला सन्देश समझ कर ग्रहण करता है। प्रत्येक आदर्श प्रेमी, मिलनसार व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित रखने का इच्छुक होता है। जो व्यक्ति दुराचार तथा दम्भ रहस्यपूर्ण होता है, उस पर जनता का विश्वास नहीं होता। जिस व्यक्ति का हृदय आप पढ़ नहीं सके हैं, उस की सत्यता और न्यायप्रियता पर आप कैसे विश्वास कर सकते हैं? जनता का ध्यान आकृष्ट करने वाले व्यक्ति प्रायः उदार और विशाल हृदय होते हैं। उन्हें स्वतः प्रेम करने को जी चाहता है, अनायास ही वे हमारा विश्वास प्राप्त कर सकते हैं। गोपनीयता घृणा उत्पन्न करती है, प्रेम आकृष्ट करता है। जो व्यक्ति बातों को बहुत छिपाने और चुगली करने के स्वभाव वाला होता है, उसे देख कर दूसरे व्यक्ति के हृदय में सन्देह उत्पन्न होता है। गोपनीयता धारण करने वाले, चुपचाप रहने वाले दूसरों से न मिलने तथा न बोलने वाले व्यक्ति कभी लोकप्रिय नहीं हो सकते। जो सदा आपको अपना हृदय खोल कर दिखा देता है, जिसमें उदारता और सच्चाई प्रेम से भलीभांति ओत-प्रोत है, वह अनायास ही हमारा प्रेम प्राप्त कर लेता है। अपनी त्रुटि पर वह सदैव क्षमा याचना को प्रस्तुत रहता है, हम उसे प्रसन्नता पूर्वक क्षमा कर देते हैं क्योंकि उसके सदाचार और भलमनसाहत पर हमें पूर्ण विश्वास है। आप सदाचारी, प्रेममय और उदार बनें, लोकप्रियता प्राप्त हो जायगी।

सहानुभूति के मीठे शब्दों का जादू

एक समय कवि (Charles Mackay) बहुत उदास था, ारण यह कि उसे रुपयों की बहुत आवश्यकता थी। एक धनी यक्ति को ज्ञात हुआ कि कवि बहुत आर्थिक संकट में है। उसे पने धन का बहुत गर्व था। अतः उसने अपने धन द्वारा कवि ी सहायता की; पर उसने जो सहायता की, वह असहानुभूति-र्ण और बिना मीठे शब्दों के बोले हुए थी। आर्थिक संकट लने पर कवि ने उसे बहुत धन्यवाद दिया और रुपया वापस ोटा दिया। इस प्रकार वह धनी व्यक्ति की उदारता के हसान से मुक्त हुआ।

कुछ समय पश्चात् वही कवि बीमार हुआ। उसके शरीर ं भयंकर पीड़ा थी, सिर दर्द से फटा पड़ता था। वह ारीरिक और मानसिक पीड़ा से कराह रहा था। संयोगवश सकी झोंपड़ी के पास से एक निर्धन व्यक्ति निकला। उसे कवि ी बीमार अवस्था पर दया आ गई। उसने उसके सिर को ाँधा, दबाया, प्यार से दवा लगाई और रात-दिन रोगी की य्या के सिरहाने बैठ कर सेवा शुश्रूषा की। सहानुभूतिभरे ीठे-मीठे शब्द बोलकर पीड़ा कम की। उसके इस मधुर यवहार और सहानुभूतिपूर्ण प्रेम-चिकित्सा से कवि स्वस्थ हो या। कवि कहता है, 'प्रथम धनी व्यक्ति को रुपया वापस रके मैं उसके अहसान से मुक्त हो गया था, पर इस दूसरे दार निर्धन व्यक्ति के सहानुभूतिपूर्ण मीठे-मीठे शब्दों का हसान मैं कैसे चुकाऊं। रुपया, सोना, हीरे, मोती बहुमूल्य

हैं, परन्तु ईश्वर की देन के रूप में मनुष्य के हृदय में रहने वाली यह दैवी सहानुभूति रुपए-पैसों की अपेक्षा कहीं महान और प्रभावोत्पादक है। यह मानसिक रोगों की अमोघ औषध है।'

सहानुभूति वास्तव में महान दैवी औषध है! यह देने वाले को और जिसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाता है, दोनों को ही लाभ पहुँचाने वाली है। मनुष्य के गुप्त दुःखों, दलित इच्छाओं और मानसिक जटिलताओं का अन्त करने वाली है।

वास्तव में मानसिक क्षेत्र की जटिलता, दुराव-छिपाव से बनने वाली मानसिक ग्रन्थियाँ और गुप्त दुःख ही हमारी निराशा के कारण हैं। हम दुःखी इसी लिए रहते हैं कि मनमें व्यथा का भार छिपाए हुए हैं। हम अपनी व्याकुलता को जितना अधिक दूसरों से, समाज से, अपने बड़े-बूढ़ों, बुजुर्गों, अफसरों से छिपाते हैं, उतनी ही जटिलता हमारे मानसिक क्षेत्र में उत्पन्न होती जाती है, जैसे किसी वस्तु को छिपाकर अंधेरी कोठरी में रखने से उसमें बदबू आने लगती है और वह सड़-गल कर नष्ट हो जाती है, उसमें कीड़े पड़ जाते हैं, उसी प्रकार जिन गन्दे विचारों, वासनाओं, ईर्ष्या, तृष्णा, द्रोह, चिन्ता, भय आदि विकारों को आप छिपाकर रखते हैं, वे मानसिक जटिलता उत्पन्न करते हैं। दुराव-छिपाव मानसिक रोगों को उत्पन्न करता है। इसके विपरीत जो युग-युग छिपे मनके दुराव को दूसरों के समक्ष खोल देता है, वह उतनी ही मानसिक शान्ति प्राप्त करता है। उसकी विचारधारा उतनी ही स्पष्ट और स्वस्थ होती जाती है।

मनुष्य अपने कुचिन्तन और दुराव द्वारा मानसिक व्याधियां उत्पन्न करता है। वास्तव में जो बात छिपाई जाती है, वह स्वयं पापमय होती है। हम उसे छिपाते ही इसलिए हैं कि वह नीच है, झूठ है, पापमय है, दुष्कर्म से संयुक्त है। हमारी अन्तरात्मा हम से कहती है कि उसका फल दुःखदायी होगा। मन में किसी के प्रति कटुभाव रखना एक खतरा है। चिन्ता के समान कोई अग्नि नहीं, द्वेष के समान कोई विष नहीं, क्रोध के समान कोई शूल नहीं, लोभ के समान कोई जाल नहीं। ये दोष मन में इकट्ठे होने पर मनुष्य कुछ ही समय में पापपङ्क में डूब जाता है।

यदि मनुष्य अपने हृदय की व्यथा को दूसरों के समक्ष खोल कर रख दे और उनसे अपने आप कष्टों के लिये थोड़ी-सी सहानुभूति पा ले तो उसे मानसिक शान्ति मिलती है। मित्र उसे दूषित भावनाओं से बचाते हैं। कुचिन्तन की शृङ्खला टूट जाती है और व्याधियां दूर हो जाती हैं। जब तक मनुष्य अपनी मानसिक कठिनाइयों को दूसरों के समक्ष प्रकट करता रहता है, मित्रों से बातचीत करके सान्त्वना पाता रहता है, अपने-आप को समाज में मिलाये रहता है, तब तक वे मानसिक जटिलता और परेशानी का कारण नहीं बनतीं; किंतु हम अपनी सभी भावनाओं को अपने मित्रों के समक्ष प्रकट नहीं कर सकते, क्योंकि वे घृणित होती हैं। हमारी अन्तरात्मा कहती है कि वे उन्हें सुनते ही हम से घृणा करने लगेंगे। इसी प्रकार हम अपने किये हुए गंदे कार्यों को दूसरों से कहते हुए डरते हैं। हम उन्हें दूसरों के समक्ष स्वीकार करके हृदय का भार हल्का कर सकते हैं; पर ऐसा उसी से कर सकते हैं, जो हमारे साथ सच्ची सहानुभूति प्रदर्शित करे।

ही वह मुक्त गगन में विहार करने वाले पक्षी के समान सर्वतोमुख आनन्द प्राप्त करता है।

इस प्रसङ्ग में एक मनो-विज्ञान-विशारद सत्य ही लिखते हैं—
"मानसिक विकार को बाहर निकालने में सहानुभूति का भाव बहुत ही लाभकारी होता है। रोगी उस से सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति के सामने अपने मन के छिपे भाव प्रकाशित कर सकता है। जो व्यक्ति रोगी से घृणा करता है अथवा उससे तटस्थ रहता है, उसके समक्ष रोगी अपने भाव कैसे प्रकाशित कर सकता है। पागल से घृणा करनेवाले व्यक्ति को देखकर पागलका रोग और भी बढ़ जाता है। इसके प्रतिकूल सहानुभूति रखनेवाले व्यक्ति के समक्ष पागल का उन्माद कम हो जाता है।"
डॉ० होमरलेन ऐसे अनेक शेलशाम के रोगियों को स्वस्थ कर सके, जो डॉ० फ्रायडकी विधि से स्वस्थ न हो सके थे। इसका प्रधान कारण डॉ० होमरलेन का रोगियों के प्रति सहानुभूति का भाव था। जहाँ डॉ० फ्रायड मनुष्य के मौलिक स्वभाव को स्वार्थी और पाशविक मानते थे, डॉ० होमरमेन उसे दैविक मानते थे। इसलिए उन्हें रोगी के साथ सहानुभूति स्थापित करना सुगम होता था। इस सहानुभूति के कारण रोगी खुलकर अपने मन की गाँठें और व्याकुलता डॉ० होमरलेन के समक्ष खोल सकता था। रोगी के मन में अन्तर्द्वन्द्व होने के कारण ही रोग की उपस्थिति होती है। जब उस अन्तर्द्वन्द्व का अन्त हो जाता है, तब रोग का भी अन्त हो जाता है। अन्तर्द्वन्द्व जब तक भीतर ही रहता है, तब तक रोग के बाहरी लक्षण नहीं दिखाई देते और जब वह बाहर आने लगता है, तब मानसिक रोग की उपस्थिति होती है। जब चिकित्सक रोगी की छिपी

भावनाओं के प्रति सहानुभूति दिखलाता है, तब वे धीरे-धीरे अपने आप बाहर आने लगती हैं। उनके बाहर आने पर उस के चेतन और अचेतन मन में एकता स्थापित होना सरल हो जाता है। वास्तव में चिकित्सक के समक्ष अपने गुप्त भाव प्रकाशित करने और उसके द्वारा सहानुभूति प्राप्त करने से ही रोग-निवारण हो जाता है।

सहानुभूति ऐसी अमोघ औषध है। पर खेद है हम अपने दैनिक जीवन और व्यवहार में इस दैवी भाव का प्रयोग नहीं करते। जब मनोवैज्ञानिक चिकित्सक इसके प्रयोग से पागल तक को अच्छा कर सकते हैं, तब तो हम अपने दैनिक जीवन में इर्द-गिर्द आने वाले व्यक्ति को इसके प्रयोग से क्यों नहीं अपना बना सकते? हमें चाहिए कि उदारता से सहानुभूति का प्रयोग करें और व्यक्ति एवं पीड़ित मानव के दुःख-दर्द को कम करते रहें।

कठोर व्यवहार से मित्र भी शत्रु हो जाते हैं; पर सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार और वातावरण से पत्थर-हृदय भी पिघल उठते हैं। कठोरता से अच्छा आदमी भी आपके विरुद्ध विद्रोह करने को उतारू हो जाता है, पर सहानुभूति से गुप्त शत्रुता के भाव भी दूर हो जाते हैं। सहानुभूति एक दैवी गुण है। इसे विकसित कीजिये।

महान् पुरुषों के पास पैसा नहीं होता, न वे इसकी इच्छा ही करते हैं; क्योंकि उनका दया और सच्ची सहानुभूति से पूर्णतः भरा हृदय उनके पास कुबेर के भंडार की तरह विद्यमान रहता है।

कहते हैं इस जगती में निर्धन का कोई ठिकाना नहीं, यह बात गलत है; क्योंकि गरीबी मानवता और सच्ची सहानुभूति के दिव्य गुणों को विकसित करने वाली है। एक गरीब दूसरे के प्रति सच्ची सहानुभूति दिखा सकता है। ईश्वर के दर्शन कौन करेगा? वही जिसके पास सहानुभूतिपूर्ण संवेदनशील हृदय है, जो दूसरों के दुःख-दर्द में काम आता है। कठोर व्यक्ति तो अपाहिज है। वह अपने समाज के इर्द-गिर्द रहने वाले व्यक्तियों तक से प्रेम नहीं कर सकेगा। कोई उसके दुःख-शोक में सम्मिलित नहीं होगा।

जिन के हृदय में दया और सहानुभूति है, वे कभी बिना मित्रों के नहीं रहेंगे। इसलिए देखो अपने मन में सहानुभूति को प्रथम स्थान दो, दूसरों के प्रति प्रेम, दया और सहानुभूति का व्यवहार करो।

तुम्हारे जीवन के जो क्षण व्यतीत हो रहे हैं, उनको मीठे प्रेममय सुन्दर और दूसरों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण विचारों से भरो।

दुखी और त्रस्त व्यक्तियों को देने के लिए यदि तुम्हारे पास रुपया नहीं है तो सहानुभूति के दो मीठे शब्द उसे दो; वह तुम्हारा हो जायगा।

संसार में कौन जीतता है ?

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥
(यजु० २५।२१)

१—दिव्यगुण विशिष्ट पुरुष मानव समाज में पारस्परिक सहानुभूति की भावना स्थापित करके ही मानवों के संरक्षण में समर्थ होते हैं।

२—ऐसे सत्पुरुषों के उपदेशों को सदा श्रवण करना चाहिए।

३—चक्षु इन्द्रिय को संयमित कर सर्वत्र भद्र का ही दर्शन किया करें।

४—दिव्यगुण विशिष्ट पुरुषों के दिव्य-गुणों का स्तवन करते रहना चाहिए तथा उनका जीवन में अनुसरण करें।

५—शारीरिक अङ्ग प्रत्यङ्ग से स्वस्थ रहने का यत्न करें।

६—ऐसे दिव्य जीवन की प्राप्ति की आशा करें जो जीवन दिव्यगुण विशिष्ट पुरुषों से धारण किया जाता है।

समाज के मनोविज्ञान की जानकारी पर आपकी सामाजिक सफलता बहुत अंशों में निर्भर है। क्या आप दूसरों की दुर्बलताएँ निशंक होकर बतलाते हैं? क्या उनकी आलोचना करते और दोष दिखलाते हैं? यदि ऐसा है, तो आप अपने पाँव में कुल्हाड़ा मार रहे हैं।

मनुष्य का 'अहम्' गर्व, अभिमान एक बड़ी महत्वपूर्ण भावना है। चाहे किसी ने भारी भूल ही क्यों न की हो, चाहे

वह जेलखाने का अपराधी ही क्यों न हो, वह अपने आपको दोषी मानने को कदापि तैयार नहीं होता। आलोचना भयावह मानसिक व्यंग्य है, गर्व और अभिमान पर चोट है। वह जनता के अन्तर्जगत में बद्धमूल गर्व पर आक्रमण करती है। यही कारण है कि अपराधी अपने सिवा और सबको दोष देता है। हम सब में से कोई भी आलोचना को पसन्द नहीं करता।

समाज में वह जीतता है, जो हँसमुख आकृति द्वारा सर्वत्र प्रसन्नता बखेरता है। सच्चे हृदय से लोगों को उत्साहित करता है। उन्हें सत्पथ पर जाते देख प्रशंसा, प्रेरणा, उपहार, निष्कपट मैत्री द्वारा आगे बढ़ाता है।

संसार में मनुष्य आश्चर्य का पिटारा है, जिसमें निजी इच्छाएँ, अनुभव, मानसिक आवेग भरे पड़े हैं। ये सब पृथक्-पृथक् हैं। आप सहानुभूति तथा उत्साह के यंत्रों से उन्हें खोलिये और समझिये। उनकी विगत समस्याओं और आप-बीतियों को कान देकर रुचि-पूर्वक सुनिये और उन पर सहानुभूतिपूर्वक विचार कीजिए। दूसरों के बारे में आपको यह जानने का उद्योग करना चाहिए कि जो कुछ वे कहते हैं, वह किस आकांक्षा या गुप्तभाव से संतुलित होता है। आलोचना के स्थान पर मनुष्य को समझना कहीं अधिक लाभदायक और गुप्त प्रभाव रखता है। इससे सहानुभूति, सहिष्णुता, और दयालुता उत्पन्न होती है, आत्मा का विस्तार होता है। दूसरों को समझना ही हमारे जीवन का सही दृष्टि-कोण होना चाहिए।

समाज में प्रसिद्धि के लिए आप को अपने मत,

विचारधारा, एवं योजनाओं का आरोप दूसरों के मन बुद्धि पर करना होता है। अर्थात् आपको दूसरों को अपनी विचार-धारा के अनुकूल बनाना होता है। उनकी पुरानी रूढ़ियां, अन्धविश्वास परिवर्तित कर नई अपनी विचारधारा को उनके मनोमन्दिर में प्रतिष्ठित करना होता है।

साधारण व्यक्ति इस कार्य के लिए बुद्धि तत्व, अर्थात् तर्क-वितर्क का आश्रय ग्रहण करते हैं। लम्बी-लम्बी तर्कों पर उतर आते हैं। वाद-विवाद लम्बे-लम्बे चलते हैं और उसका निष्कर्ष यह होता है कि दूसरा व्यक्ति अपनी धारणाएँ नहीं बदल पाता। एक खोज तथा ईर्ष्या का भाव लेकर वह पृथक् हो जाता है।

मानव-मन में अनुभूतियों, भावना के तत्वों, एवम् आकांक्षाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। मानव-मन अनुभूतियों के सरस धरातल पर ऐसी ऐसी कठिन और अप्रासंगिक बातों पर विश्वास कर लेता है, जिन्हें कदाचित् वह शुष्क तर्क के द्वारा विश्वास नहीं कर सकता। वे व्यक्ति कुछ भी सामाजिक लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर सकते, जो तर्क-वितर्क के शुष्क धरातल से उठकर अनुभूति और भावना के सरस धरातल पर नहीं आ पाते। मनुष्य भावना से परिचालित होता है, जो उसके हृदय को स्पर्श करता है, उसी पर अपना सब कुछ न्योछावर कर देता है।

अनावश्यक वाद-विवाद त्याग कर दूसरों की मनो-भावनाओं और अनुभूतियों को सहृदयतापूर्वक सुनिये, दूसरों के दृष्टिकोण की कटु आलोचना न कीजिए। जब वे अपनी बातें कह चुकें, तब अनुभूतियों और भावुकता से सरस बना

कर अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत कीजिये। अपने विचारों और योजनाओं की व्याख्या इस भावनात्मक दृष्टिकोण से प्रस्तुत कीजिये कि उनके हृदयतन्त्री के तार झंकृत हो उठें। उनका हृदय यह साक्षी दे दे कि बात वास्तव में ठीक है।

सार्वजनिक व्याख्यानदाता की सफलता का गुर यह है कि वह जनता की, आसपास के मनुष्यों की भावना को भड़काना जानता है। वह चतुरता से इस बात का ध्यान रखता है कि दूसरों के आत्मसम्मान और आत्मगौरव को ठेस न लग जाय। आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचने से द्वेषपूर्ण घृणा उत्पन्न हो जाती है।

किसी महानुभाव ने सत्य ही लिखा है, "मनुष्य अनुभूतियों और भावनाओं, विचारों, इच्छाओं और सम्मान का दास है वह तर्कशास्त्र से वशीभूत कभी नहीं हो सकता। हमें सदैव ध्यान रखना चाहिए कि वे लोग "मनुष्य" हैं, देवता नहीं हैं। उनके विचार और भावनाएँ शिलाखण्ड पर लिखे अक्षर नहीं हैं। हममें से प्रत्येक अपने को बुद्धिमान्, विचारवान् और तर्कशास्त्री होने का दावा करता है और उसी के अनुसार प्रयत्न भी करता है, परन्तु जब वही बात प्रत्यक्ष अनुभव में आती है, तो हमें ज्ञात होता है कि हमारा प्रदर्शन बुद्धितत्व की अपेक्षा पूर्व निर्मित धारणाएँ अधिक करती हैं। तर्क हमारे साथ कार्य करने में असमर्थ सिद्ध होता है। तर्क की विजय बहुत कम होती है। तर्क अधिकतर व्यर्थ सिद्ध होकर विजय को भी पराजय में बदल देता है। मान लीजिये, कि हमने किसी को अपने तर्क-बल से कोई बात मनवा ली और उसने स्वीकार भी कर लिया, पर विश्वास रखना चाहिए,

कि यह मान्यता बाह्य और अस्थायी है। उससे विचारों में कोई स्थायी परिवर्तन नहीं हो सकता, हृदय नहीं बदल सकता।"

मानव स्वभाव कुछ ऐसा है कि वह उन्हीं बातों पर विश्वास करता है, जो उस के घर में पहले से ही चली आ रही हैं। मानव-स्वभाव स्मृतियों से, पूर्व धाराओं से स्नेह करता है। अतः आप इस प्रकार बातचीत करें कि उनके प्रिय सुनिश्चित विचारों पर कम से कम प्रहार हो। प्रेमपूर्वक हृदय की भाषा में समझाइये। उदाहरण भी ऐसे प्रस्तुत कीजिए जिस से उस के स्नेह को जीता जा सके, वह उत्साहित रहे, "हां, हां" उच्चारण करता चले। सच्ची मान्यता प्रेमपूर्ण सहृदय व्यवहार से हो सकती है, तर्क-वितर्क खण्डन-मण्डन द्वारा नहीं। वास्तव में प्रेम, सहृदयता, दूसरों के दृष्टिकोण का आदर और प्रशंसा ही वशीकरण के मूल मन्त्र हैं।

समाज से डरने वाला, सभा-सोसायटी से भागने और जनसमूह से पृथक् रहने वाला असामाजिक हो जाता है। यदि आप बहुत जल्दी चिढ़ जाते हैं, झल्ला उठते हैं, अपनी बात को बताने में लज्जा आती है, तो आप आत्मलघुता की भावना से पीड़ित हैं। यह मानसिक बीमारी है। यदि आप को निम्न लक्षण अपने व्यक्तित्व में दिखाई दें, तो सावधान हो जाइए—झेंपना, लड़कियों की तरह अकस्मात् नेत्र नीचे कर लेना, दूसरे से आंखें न मिला सकना, यदि आप काम कर रहे हों और दूसरा आदमी मेज़ के पास आ जाय, तो मन में बेचैनी का अनुभव करना, लड़कियों से डरना, अपनी आलोचना न सुन सकना, भविष्य के प्रति निराश रहना, नये लोगों से मित्रता स्थापित करने में कठिनाई का अनुभव करना, अपनी

भावनाओं को आहत हुए समझने लगना, सभा-सोसायटियों में लोगों में घुलमिल न सकना, प्रसिद्ध लोगों से परिचय होने के समय आप के मुँह से शब्दों का न निकलना—ये सभी बातें बतलाती हैं कि आप सामाजिक तत्वों में निर्बल हैं।

सामाजिक बनिये। आप का काम प्रत्येक सामाजिक प्राणी से पड़ने वाला है। सब से महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि आप को लोगों से मिलने-जुलने की आदत बढ़ानी चाहिए। सभा-सोसाइटियों में जाने से और वहां कुछ बोलने से मत चूकिए। यह सोचने की आदत डालिये कि निर्बलताएँ और हानिएँ तो सभी में होती हैं। उन से इतनी घबराने की आवश्यकता नहीं है।

आप जिस प्रकार के समाज में रहना चाहते हैं. वह उच्च कोटि के चरित्रवान, सात्विक प्रकृति और त्याग तथा बलिदान के व्यक्तियों का होना चाहिए। यदि मनुष्य को अच्छी समाज प्राप्त हो जाय, तो उस से बड़ा उत्तम प्रभाव चरित्र पर पड़ता है। आत्म-संस्कार का कार्य सहज हो जाता है।

आत्म-संस्कार वाले मुमुक्षुओं को चाहिए कि सात्विक समाज में प्रवेश करें। साहित्यकों, विद्वानों, उच्च कर्ममार्गियों से पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने से जानकारी में अभिवृद्धि होती है। इस उच्च समाज में प्रवेश करने से हमें अपना यथार्थ मूल्य विदित हो जाता है। हम देखते हैं कि हम उतने चतुर नहीं हैं जितने एक कोने में बैठ कर अपने आप को समझा करते थे। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न गुण, स्वभाव चारित्रिक विशेषताएँ होती हैं। यदि कोई एक बात में निपुण है तो दूसरा दूसरी बात में। समाज में प्रवेश करने पर हम

देखते हैं कि इस बात की कितनी आवश्यकता है कि लोग हमारी भूलों को क्षमा करें। अतः हम दूसरे की भूलों को क्षमा करना सीखते हैं, नम्रता और अधीनता का पाठ सीखते हैं, हमारी समझ में वृद्धि होती है, विवेक तीव्र होता है, वस्तुओं, घटनाओं तथा व्यक्तियों के विषय में हमारी धारणा विस्तृत होती है, हमारी सहानुभूति गहन होती है और अपनी शक्तियों के उपयोग का अभ्यास होता है।

"समाज एक अभ्यासभूमि है, जहां हम चढ़ाई करना सीखते हैं इस में भी साथियों के साथ-साथ मिल कर आगे बढ़ना और आज्ञा-पालन सीखते हैं, इस से भी बढ़ कर और-और बातें हम सीखते हैं। हम दूसरों का ध्यान रखना, उनके लिए कुछ स्वार्थ का त्याग करना, सद्गुणों का आदर करना और सुन्दर चालढाल की प्रशंसा करना सीखते हैं। बड़ों के प्रति सम्मान और सरलता का व्यवहार, बराबर वालों से प्रसन्नता का व्यवहार और छोटों के प्रति कोमलता का व्यवहार—भले मनुष्यों के लक्षण हैं।"

अधिक से अधिक समाज के शिष्ट व्यक्तियों से मित्रता स्थापित कीजिए, अपना सम्पर्क उत्तरोत्तर बढ़ाते रहिए। जितना अधिक मेल होगा, उतनी ही प्रतिष्ठा, सहायता, पारस्परिक सद्भाव, सहयोग, प्रेम और मान बढ़ता जायगा।

आशावादी की सदैव विजय

"अमृतं वितासत"—ऋग्. ६।१२।२

उत्साही और आशावादी का ही साथ करो। उनसे दूर रहो जो भविष्य को निराशजनक या अन्धकारमय बताते हैं।

आशा—इस छोटे से दो अक्षर के शब्द के सहारे संसार बसा है। विश्व के महान् वैचित्र्य, ऊँचे से ऊँचे व्यक्ति, बड़े से बड़े काम, दुर्लभ, कष्टसाध्य और प्रायः असम्भव कार्य, सब कुछ तो इन दो अक्षरों के अवलम्ब पर टिके हैं। जितने व्यक्ति आपके आस-पास काम कर रहे हैं, खून-पसीना एक कर जीवन-संग्राम के विषम मोरचों पर डटे हैं, उन्हें आशा का ही तो बल है। संसार की महान् आत्माओं ने आशा के सहारे पर ऐसे-ऐसे आश्चर्यजनक काम किये हैं कि देख कर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ी है। जिस महान् सिकन्दर ने संसार को कँपा दिया था; उसने अंत में कहा था कि "मैंने अपने लिए केवल अपनी आशाओं को ही बाकी रखा है।" नेपोलियन के जीवन का रहस्य इसी तत्त्व में समा गया था कि विषम से विषम परिस्थिति में साहस न छोड़ा जाय। आशा की शक्ति के बल पर ही उसने कहा था कि "असंभव" शब्द कायरों के कोष में ही होता है। महाराणा प्रताप की आशा का तार कभी न टूटा और उन्होंने असम्भव को भी सम्भव कर दिखाया। जोन ऑफ आर्क का मूल सिद्धान्त था—"तुम सब

कुछ खो दो; पर आशा का अवलम्ब न छोड़ो। आशा तुम्हें फिर सब कुछ देगी—सुख, समृद्धि, सफलता।"

सच्ची आशा का बड़ा सहारा होता है। मनुष्य आशा लगाये रहे तो क्या नहीं कर सकता? जिस की हम चाह करते हैं, जिसकी सिद्धि के लिए हम अन्तःकरण-पूर्वक अभिलाषा करते हैं, हमारी आत्मा की आवाज पुकार-पुकार कर हम से जो कहा करती है—वह व्यर्थ ऊल-जलूल बातें नहीं हैं। हमारी ये भावनाएँ सत्य, प्रभावशाली और दृढ हैं। हम जिसकी आशा रखते हैं एक-न-एक दिन अवश्य उसकी प्राप्ति होगी। हमारे हृदय-सरोवर की ये आशा-पूर्ण तरंगें जीवन-प्रद हैं। हमारी ये महत्वाकांक्षाएँ बड़ी प्रभावोत्पादक हैं। हमारी समृद्धि, हमारी उन्नति, हमारे परिष्कार की द्योतक है। समृद्धि, नियम, और सफलता के दिव्य-विचार सर्व प्रथम मन में ही उपजते हैं।

आशाजनक विचारों में महा विलक्षण शक्ति विद्यमान है। प्रिय पाठक! आप तनिक इसका सहारा तो लेकर देखें कि ये आत्मा को कितनी शक्ति देते हैं। आप यह विचार पक्का कर लीजिये कि हमारी आशाएँ पूर्ण होंगी, हमारे मनोरथ सिद्ध होंगे; हमारे सुख-स्वप्न एक-न-एक दिन अवश्य सत्य होंगे। हमें विजय, सफलता और समृद्धि सभी कुछ प्राप्त होंगे। परमेश्वर के दरबार में अवश्य हमारी सुनवाई होगी; हमारी पुकार निष्फल, वृथा या बेकार कदापि न जायगी। हमारा भविष्य अवश्य प्रकाशमान होगा, हम उन्नतिशील, आनन्दमय और सुखी होंगे। हमारा प्रत्येक दिन, प्रत्येक मिनट, प्रत्येक पल दिवाली की दीपमालिका के सदृश जाज्वल्यमान रहेगा।

जहाँ आप ने आशापूर्ण शुभ चित्रों को देखने का अभ्यास बना लिया कि बस, समझ लीजिए आप अपने जीवन की स्थिति में अपूर्व वृद्धि करने लगे हैं। इन विचारों को अपना नित्य-प्रति की आदत बना लेने से मनुष्य की जैसी उन्नति होती है, वैसी अन्य किसी बात से नहीं होती।

बात यह है कि आशा करने के साथ-साथ हम इच्छित पदार्थ की ओर आकर्षित होने लगते हैं। वह पदार्थ भी हमारी तरफ खिंचता है। हमारी समूची शक्तियां उसी पदार्थ पर आ टिकती हैं। जब हम मन, वचन और काया से उस पदार्थ की प्राप्ति के लिए प्रयत्नवान् होने का निश्चय करते हैं; तभी से हम उस पदार्थ से अपना सम्बन्ध जोड़ना शुरू करते हैं। यह खिंचाव उतना ही तेज होगा जितनी दृढ़ नींव हमारी आशा की होगी। हम वस्तुविशेष की प्राप्ति के लिए जितने उत्सुक होंगे, जितनी अधिक हमारी आत्मिक-भावनायें सुदृढ़ होंगी; उतनी ही द्रुतगति से हम इच्छित पदार्थ की ओर अग्रसर होते जायेंगे।

आशापूर्ण मनोवृत्ति संसार में सफलता प्राप्त करने की पहली सीढ़ी है। पर इस के साथ सच्चाई, विश्वास, परिश्रम, और धैर्य की बड़ी आवश्यकता होती है। यदि हम केवल आशा ही करते रहेंगे और कार्यसिद्धि के निमित्त अपनी ओर से प्रयत्नशील न होंगे, तो पानी के बुलबुलों की तरह इन भव्य भावनाओं का पतन हो जायगा। आशाओं के भव्य मन्दिर में विहार और संकल्प करते रहना; तब तक सच न होगा जब तक आप उसे कठिन अथक परिश्रम और दृढ़ निश्चय में परिणत नहीं कर देंगे। आशा का दृढ़ निश्चय के साथ योग होने से ही उत्पादक शक्ति पैदा होती है।

कैसा ही दुर्गम, कंटकाकीर्ण क्यों न हो, हमें चाहिये कि ठीक अपने आत्म-विश्वास को अपने हाथ से न जाने दें।

बहुत से ऐसे अवसर आएँगे जब आपका जी टूटने लगेगा, शक्तियाँ शिथिल होने लगेंगी, आँधी-तूफान का वेग आता दिखाई देगा और ऐसा मालूम होगा कि वह जीवन-नौका को तोड़-फोड़ कर लहरों में सदा के लिए विलीन कर देगा। ऐसे अवसरों पर आप कर्तव्य पर दृढ़ रह कर आशा का सहारा ढूंढो और मन में कहो "ईश्वर चाहता है कि मैं इस दशा में भी रहूँ, इस परीक्षा को भी पास करूँ, इस व्याधि को भी झेल कर दिखाऊँ। मैं इस परीक्षा में कदापि अनुत्तीर्ण नहीं हूँगा; हँसते-हँसते यों ही उड़ा दूंगा। परीक्षा-समाप्ति पर मुझे अवश्य सुख, समृद्धि और सफलता प्राप्त होगी। मैं भगवान् पर भरोसा किये हुए हूँ। सदिच्छा के हाथों से मैं शीघ्र अपने आदर्शों तक पहुँचूँगा। भगवान् के अतिरिक्त अब कोई अन्य शक्ति मेरे ऊपर प्रभुत्व नहीं जमा सकती। मैं अब दुःखों की सीमा को पार कर चुका हूँ। आगे मेरे लिए अलौकिक आनन्द, स्वर्गीय सुख और दैवी तेज है।" अपनी आत्मा को आशा के इस दिव्य-प्रवाह में तन्मय करने से आप में पुनः साहस का संचार होगा।

प्रिय पाठक! आप हर एक बात से ऐसे पक्षों को देखें जो उज्ज्वल हों। उस प्रकाश में देखने के स्वभाव वाले बनें जो आशा-जनक और पूर्ण निश्चयात्मक है। विश्वास कर लें कि जो कुछ होगा ठीक होगा; आप की विजय होगी, आपका पाँसा हमेशा सीधा पड़ेगा, आप समृद्धि शाली बनेंगे। ठोस आशा-वादी बनें। क्षुद्र से क्षुद्र और निर्धन से निर्धन जीव भी आशा-वाद से चमक उठता है। पुरानी कहावत भी है—

आशा धरे सो उतरै पारा। नाहिं तो डूब मुवै मँझधारा॥

फिर प्रयत्न करो !

"रुहो रुरोह रोहितः" (अथर्व० १३-३-२३)
रोहित चढ़ाइयां चढ़ा

उन्नति उसकी होती है, जो प्रयत्नशील है। भाग्य के भरोसे बैठे रहने वाले आलसी सदा दीन-हीन ही बने रहेंगे।

आप पूर्ण पराजित, साहसहीन हो कर निराश हो चुके हैं; दुनियाँ ने आप की समस्त आशाओं पर पानी फेर दिया है; प्रत्येक स्थान पर आप को नीचा देखना पड़ा; जिस किसी कार्य को आप ने अपने हाथ में लिया उसी में हानि हुई; आप के हौसले टूट चुके हैं; हृदय निराशा की लपटों से झुलस चुका है; आत्मा के चारों ओर एक दुःखद अन्धेरा घनीभूत है; शून्यता ही शून्यता दृष्टिगोचर होती है; अन्त निकट है···ऐसी विषम परिस्थिति में आपक्या करें ?

प्रयत्न कीजिए, एक बार पुनः प्रयत्न कीजिए और प्रयत्न करते जाइए। जितनी बार आप को पराजित होना पड़े उस से लाभ उठा कर नवीन उत्साह से फिर प्रयत्न कीजिए। निरन्तर प्रयत्न करते रहना हार कर भी पुनः प्रयत्नशील होना सफलता प्राप्त करने का राजमार्ग है।

यदि कोई मुझ से जीवन की सफलता का रहस्य पूछे तो मैं उसे एक ही शब्द में बताऊंगा। वह पवित्र शब्द है—"प्रयत्न" छोटे से शिशु को देखिए, जो बारम्बार गिरने पर भी उठ कर चलने का प्रयत्न करता है और एक दिन अपने पाँवों के बल चलना सीख लेता है। वट का विशाल वृत्त एक छोटे से बीज

से निकल कर सैंकड़ों कठोर प्रहार सहता हुआ अन्त में कितना ऊँचा उठ जाता है। एक-एक चोट लगा कर बड़े से बड़े पहाड़ खोदे जा सकते हैं। स्काटलैंड का सम्राट् ब्रूस हार कर निराश हो चुका था। एक क्षुद्र मकड़ी ने बार-बार प्रयत्न करने का माहात्म्य उसे सिखाया था। अभिनेताओं का मुकुटमणि टाल्मा सर्व-प्रथम झिड़क कर रंगमंच से निकाल दिया गया था। जब मि. कौबडेन ने पहली बार व्याख्यान देने का प्रयत्न किया तो लोगों ने बड़ी खिल्ली उड़ाई और बेचारा एक शब्द भी उच्चारण न कर सका, इस पर सभापति ने उसकी ओर से क्षमा याचना की थी। सर जेम्स ग्राहम और डिज़रली भी सर्वप्रथम बड़ी बुरी तरह असफल हुए थे। गारफील्ड पहिले मजदूर, फिर एक्टर फिर क्रमशः मल्लाह, चौकीदार, शिक्षक, सैनिक और अन्त में अमेरिका के प्रेज़ीडेन्ट बने थे। संसार के सब सफल व्यक्तियों का मूल मंत्र प्रयत्नशील होना ही है। प्रयत्न के बिना जीवन नीरस, व्यर्थ, क्षुद्र और असफलता से परिपूर्ण है। जो निरन्तर प्रयत्न नहीं करता वह कदापि पूर्ण रूप से विजयी नहीं हो सकता। नवयुवकों के लिए यह उत्तम संदेश तीन शब्दों में है—प्रयत्न ! प्रयत्न !! प्रयत्न !!!

यदि सच्चा प्रयत्न करने पर भी आप सफल न हों तो कोई हानि नहीं। पराजय बुरी वस्तु नहीं है यदि वह विजय के मार्ग में अग्रसर होते हुए मिली हो। प्रत्येक पराजय विजय की दशा में कुछ आगे बढ़ जाना है। पराजय उन्नतर ध्येय की ओर पहली सीढ़ी है। हमारी प्रत्येक पराजय यह स्पष्ट करती है कि अमुक दिशा में हमारी निर्बलता है; अमुक तत्व में हम पिछड़े हुए हैं; किसी विशिष्ट उपकरण पर हम ध्यान नहीं दे रहे हैं। पराजय हमारा ध्यान उस ओर आकर्षित करती है जहाँ हमारी

निर्बलता है, जहाँ मनोवृत्ति अनेक ओर बिखरी हुई है, जहां विचार और क्रिया परस्पर विरुद्ध दिशा में वह रहे हैं, जहां दुःख, क्लेश, शोक, मोह इत्यादि परस्पर विरोधी इच्छाएँ हमें चंचल कर एकाग्र नहीं होने देतीं।

किसी-न-किसी दशा में प्रत्येक पराजय हमें कुछ सिखा जाती है। मिथ्या कल्पनाओं को दूर कर हमें कुछ-न-कुछ सबल बना जाती है, हमारी विशृंखल वृत्तियों को एकाग्रता का रहस्य सिखाती है। अनेक महापुरुष केवल इसी कारण सफल हुए, क्योंकि उन्हें पराजय की कड़वाहट को चखना पड़ा था। यदि उन्हें यह पराजय न मिलती तो वे महत्वपूर्ण विजय कदापि प्राप्त न कर सकते। अपनी पराजय से उन्हें ज्ञात हुआ कि उन की संकल्प और इच्छाशक्ति निर्बल है, चित्त स्थिर नहीं है, अन्तःकरण में आत्मशक्ति पर्य्याप्त रूप से जागृत नहीं है और सब से अधिक आघात-प्रतिघात में अचल रहने वाला आत्म-विश्वास नहीं है।

हमारे एक मित्र कई क्षेत्रों में कुछ निष्फल से रहे हैं। वे कहते हैं 'मैं जिस ओर गया निराश होना पड़ा। जिस कार्य को मैंने हाथ में लिया मुझे असफलता मिली। अब तो किसी भी काम में हाथ डालते जी डरता है। मुझे विश्वास नहीं होता कि संसार में मेरे लिये भी कुछ है।' तनिक इस युवक महोदय की टूटी-फूटी, निर्बल संकल्प और इच्छाशक्तियों पर विचार कीजिए। उन्हें अपनी योग्यता में सन्देह, अपनी आत्मा की दिव्य शक्तियों का अज्ञान और अपने अन्तःकरण में अविश्वास है। वे निराशा, संदेह और अशान्ति के शिकार हैं। किन्तु यदि उन्हें अपनी सुषुप्त शक्तियों का पूर्ण ज्ञान हो जाय तो वे

भाग्य का खिलौना न बने रहें। यदि वे यह समझ लें; मन में भली भाँति बैठा लें और विश्वास कर लें कि उन में शक्ति का अखंड भंडार छिपा है, तो वे मुर्दों की तरह क्यों पड़े रहें।

मनुष्य के लिये सब से आवश्यक बात अपनी शक्ति एवं निर्बलता को समझ लेना है। जो व्यक्ति यह समझ ले कि मेरी निर्बलता किस स्थान पर है और शक्ति का केन्द्र कहाँ है? वह सफलता के निकट सरलतापूर्वक पहुंच जाया करता है। जिन्हें अपनी दिव्य शक्तियों का पर्याप्त ज्ञान नहीं, वे ही समुद्र की लहरों पर नाचते तिनके के समान उद्विग्न हो जाया करते हैं। ऐसे व्यक्तियों को सर्वप्रथम अपनी शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। यह जानना चाहिए कि मनुष्य विश्वास का दास है। बिना विश्वास के वह बलवान् होते हुए भी निर्बल है। हमारे शरीर पर इच्छा का राज्य है। दुर्बल शरीर भी इच्छा-शक्ति से सबल बनता है।

जो मनुष्य सफलता प्राप्त करना चाहे उसे निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए। इच्छाशक्ति के जागृत होने के उपरान्त प्रयत्न ही सब कुछ है। उसे मन में विजय-भावना धारण करनी चाहिए और यह सोचना चाहिए—

"मैं शक्ति का भंडार हूँ; सफलता के लिए उत्पन्न हुआ हूँ। वह मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मुझे अवश्य प्राप्त होगी। मेरेअन्तरतम में जो दिव्यशक्ति है वह मुझे अवश्यमेव सफलता के पवित्र प्रकाश में प्रविष्ट कर देगी मेरी इच्छा शक्ति प्रबल हो चुकी है, मेरा आत्मविश्वास निरंतर अभिवृद्धि पर है, मेरे संकल्प बहुत दृढ हैं। मुझे अपनी शक्ति पर, अपने कर्म पर, अपने बल पर पूर्ण विश्वास है। मैं करूंगा, अवश्य

प्रयत्न करूँगा क्योंकि मेरी इच्छाशक्ति के आगे अब विपत्तियां विघ्न बाधाएँ नहीं ठहर सकतीं।"

आप अपने ध्येय पर ध्रुव की तरह अटल रहें। पर्वत से निकल कर सरिता जिस वेग से समुद्र की ओर प्रवाहित होती है इसी प्रकार निरंतर इच्छित वस्तु को सामने रखकर दृढतापूर्वक प्रयत्न करें। इच्छित वस्तु की ओर निरंतर टकटकी लगाये बिना पथ-भ्रष्ट होने का भय है। साधना में पुरुषार्थ और आत्मशक्ति का आविर्भाव करें।

आप जो अपने सामने एक घना अन्धकार देखते हैं वह आपकी अपनी ही छाया है। आप भगवान् के उस आशाप्रद दिव्य स्वरूप को हृदयंगम कर पुनः प्रयत्न करें जो सदैव आपकी रक्षा के लिए आपके साथ है। आत्मा के महान् आश्रय को लेकर आप अन्तरतम में प्रवेश करें। क्षीर-नीर को पृथक् करनेवाली निश्चयात्मिका बुद्धि को जागृत करें और सूक्ष्मरूप से आत्मपरीक्षा करके मालूम करें कि आपकी दुर्बलता कहां छिपी है? कहीं आपके संकल्प तो ढीले नहीं हैं? कहीं आप घोर परिश्रम से क्षुब्ध तो नहीं हो जाते? कहीं दैवी संकेतों की अवहेलना तो नहीं कर रहे? साधना में शैथिल्य, आदर्शों में त्रुटि और हृदय में निराशा ने तो घर नहीं कर लिया है? शरीर और मन पर बाह्य आघात-प्रतिघात तो आपको चंचल नहीं बना रहे?

सच्चा प्रयत्न तभी निष्फल हुआ करता है, जब संकल्प ढीले-ढाले हों। दृढ संकल्प का अर्थ है, विजय (Resolution secures achievement)। जब कोई व्यक्ति किसी कार्य को करने का दृढ विचार कर लेता है तो उस संकल्प की दृढता

। से वह विजय के मार्ग की आधी कठिनाइयां दूर कर
र लेता है। "हम कर सकते हैं" यह धारणा मनुष्य में
स दिव्यशक्ति का प्रादुर्भाव करनेवाली है जो उसे शक्तिशाली
नाती है। नैपोलियन कहा करता था—"सीखो, प्रयत्न करो,
ोशिश जारी रखो। इन सब के पृष्ठ भाग में महान् संकल्पों
ो ही शक्ति अन्तर्निहित थी। इसी कारण उसके प्रयत्न
फल हुए।

आप अनुकूल अवसर के लिए बैठे न रहें। वरन् सत्य
ा अनुसरण करते हुए निरंतर अग्रसर होते रहें। यदि आप
अवसर की प्रतीक्षा में रहेंगे, तो कुछ भी न कर पाएंगे।
ापके दृढ संकल्प प्रत्येक समय को उत्तम अवसर में परिणत
र देने वाले हैं। जो क्षण सम्मुख हो उसी में धैर्य अध्यवसाय
ौर एकाग्रता से लक्ष्य की साधना में निरत रहें। "सफलता
ाप्त करेंगे अथवा शरीर होम कर देंगे" इस मूल मन्त्र पर
ारूढ़ रहें, इसी प्रेरणा में निरंतर प्रयत्न करते रहें और
राजय में भी परमात्मा के आश्वासन की मधुर वाणी सुनते
हें आपकी डगमगाती नौका किनारे आ लगेगी।

पुनः पुनः प्रयत्न करें (Try try try again) को लक्ष्य
र किसी प्राचीन कवि ने क्या ही सुन्दर लिखा है:—

"आप बराबर प्रयत्न करते रहें। यही एक ऐसा महान्
तत्त्व है जिसे अंतःकरण की स्थायी वृत्ति बना लें। यदि प्रारम्भ
में सफलता प्राप्त न भी हो तो क्षुब्ध या निराश न हों—पुनः
पुनः प्रयत्न करें। क्रमशः आपके हृदय में साहस का उदय
होगा। यदि आप अध्यवसायी बन जाएँगे तो डरें नहीं
एक-न-एक दिन आप अवश्य ही विजयी होंगे; बस प्रयत्नशील

बने रहें। आप दो एक बार असफल हो सकते हैं पर सदैव नहीं, अतः प्रयत्न कर, अग्रसर हों। यदि हारने पर भी आप प्रयत्न करते हैं तो यह अपमान का विषय नहीं है। चाहे हम दौड़ में सर्व-प्रथम न आएँ किन्तु हम दृढ़ अवश्य बन जाते हैं। आप केवल प्रयत्न करते रहें। अभी आपको यह कार्य कठिन प्रतीत होता है पर समय आएगा, जब आपको अपने प्रयत्न का पुरस्कार प्राप्त होगा। जो कुछ संसार में अन्य व्यक्तियों ने किया है, आप भी थोड़े से उद्योग एवं धैर्य के बल पर अवश्य प्राप्त कर लेंगे। असफल होकर भी हम प्रयत्न करते रहेंगे—इस धारणा को मन में बसा लें।"

विचार-शक्ति द्वारा समृद्धि-प्राप्ति

"त्वं नो मेधे प्रथमा"—अथर्ववेद ६, १०८-१

सद्बुद्धि ही संसार में सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। जिस ने अपनी विचारधारा शुद्ध कर ली है, उसे समृद्धि प्राप्त होगी।

यों तो संसार में अनेक निंद्य वस्तुएँ मनुष्य का पतन करती हैं किन्तु सम्भवतः, संसार की सब से निकृष्ट वस्तु है विचार-दारिद्र्य। विचार-दारिद्र्य ने अनेक व्यक्तियों को दारिद्र्य की गहन शृंखलाओं में जकड़ रक्खा है, उनमें कुत्सित संकीर्णता, सीमाबंधन तथा संकोच की क्षुद्र वृत्तियां उत्पन्न कर दी हैं; मानव-जीवन में एक विषम अन्धकार फैला दिया है। विचार-दारिद्र्य ने मानव की असीम आत्मा को संकुचित, पराधीन एवं हीन बनाया है।

यह एक निश्चित अकाट्य, निर्विवाद सत्य है कि विचार की दरिद्रता के कारण मनुष्य दरिद्र बनता है। वह अपने अन्तःकरण में न्यूनता, दरिद्रता और असमर्थता की वृद्धि करता है। दरिद्रता की दासवृत्ति बहुत कुछ मनुष्यों के विचारों के परिणामस्वरूप है। अतः मनुष्यों को विचार की अद्भुत शक्ति का क्रमशः ज्ञान होता जा रहा है और इस तथ्य पर पूर्ण विश्वास हो गया है कि मनुष्य को संकुचित, पराधीन, पंगु एवं निकृष्ट बनाने वाले उसके विचार ही हैं।

अनेक व्यक्ति इस बात का रोना रोया करते हैं कि हाय, हमारे पास अमुक वस्तु नहीं है, हम स्वादिष्ट भोजन नहीं

कर पाते, उत्तम वस्त्र नहीं पहिन पाते, हम वैसा उत्तम जीवन व्यतीत नहीं कर पाते जैसा समाज में उच्चश्रेणी के व्यक्ति कर रहे हैं। ऐसे भयपूर्ण एवं थोथी विचारधारा के कारण अनेक व्यक्ति वायुमंडल से दरिद्रता की लहरें (Waves) अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं। लूला, लंगड़ा, नेत्र-विहीन, बधिर पुरुष यदि दरिद्र रह जाय तो वह इतना तिरस्कार का पात्र नहीं जितना वह भाग्यहीन पुरुष जो अपने मिथ्या विचारों द्वारा संसार की दरिद्रता को अपनी ओर खींचा करता है, जो निज हृदय-पटल पर सभी स्थानों पर दरिद्रता ही अंकित कर लेता है, उसकी मुखमुद्रा एवं विकृत आकृति पर दरिद्रता की काली परछाईं सदैव बनी रहती है। मैं जिस दरिद्रता की बात कर रहा हूँ वह मनुष्य की स्वयं उत्पन्न की हुई संकीर्णता है।

दरिद्रता के अंकुर सर्वप्रथम मनुष्य के मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं और तदुपरान्त इधर-उधर विस्तीर्ण होते हैं। पहिले मनुष्य के विचार दरिद्र बनने आरम्भ होते हैं। वह दरिद्रता के विचारों में रमण करना प्रारम्भ करता है। अपने को भाग्यहीन, गिरा हुआ, दीन-हीन मानकर दरिद्रता और भय के विचार जीवन-प्रदेश में दृढ़ता से जमा देता है और उसके प्रभाव से एक ऐसा चुम्बक (Magnet) बन जाता है जो दरिद्रता, विवशता, और क्षुद्रता को अधिकाधिक परिमाण में हमारी ओर आकर्षित करके लाता है। वह दरिद्र व्यक्तियों की गिरी हुई दशा की ओर अधिक अकर्षित होता है, उन्हीं जैसी टूटी-फूटी कार्य-प्रणाली, उन्हीं जैसी दीन-हीन परिस्थिति, उन्हीं जैसी विवशता और असमर्थता की कुप्रवृत्ति से सांनिध्य

कर लेता है। अन्धकार और पतन, में गिराने वाले निकृष्ट एवं उच्च महत्वाकांक्षाओं को विनष्ट करनेवाले विषैले विचार उसमें हीनत्व की दुर्भावना उत्पन्न कर देते हैं जिसका भूत सदैव उसके पीछे पड़ा रहता है। भीतर की दरिद्रता फिर वाह्यांगों पर प्रकट होने लगती है। मुख पर क्षुद्रता, असमर्थता, संकीर्णता के चिह्न प्रकट होने लगते हैं। फिर तो उसकी वस्त्रभूषा, रहनसहन, वार्त्तालाप, सब में ही दरिद्रता के कीटाणु घुस जाते हैं जो उसके निश्चय, संकल्प, श्रद्धा तथा इच्छा की शक्तियों का च्य कर डालते हैं।

विचार-दारिद्र्य से ग्रस्त व्यक्ति यही विचार किया करता है कि मेरे भाग्य में विधाता ने दारिद्र्य ही लिखा है; मैं दरिद्र हूँ और सदैव दरिद्र ही रहूँगा। मेरे लिए संसार के ऐश्वर्य, सुख, समृद्धि नहीं है मैंने पूर्व जन्म में न जाने कौन ऐसे पाप किये हैं जिन के दण्डस्वरूप भगवान् ने मुझे टूटा छप्पर दिया है। मैं दूसरों की अधीनता, कृपा तथा इंगित पर ही जी सकता हूं। इस प्रकार के भावों की संकीर्णता तथा विचारशक्ति के पंगु हो जाने के कारण दरिद्र विचारों के वायुमंडल में निवास करने के हेतु मनुष्य की अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो उठती है। उसे निकट भविष्य में अपनी दुर्गति होती हुई दृष्टिगोचर होती है, और अन्तःकरण में कभी शान्त न होने वाला अन्तर्द्वन्द्व प्रारम्भ होता है। विचार-दारिद्र्य बढ़ जाने पर मनुष्य क्षुब्ध, डरपोक, भिखारी एवं असाहसी बन जाता है। वह अपनी शक्तियों के प्रति शंकित हो उठता है, भरोसा लुप्त हो जाता है और वह असमर्थ बन जाता है।

जगत्पिता परमात्मा ने सृष्टि में संकीर्णता, सीमाबंधन या दरिद्रता का स्थान नहीं रखा है। संकीर्णता, सीमाबंधन,

दरिद्रता संसार में नहीं, प्रत्युत स्वयं हमारे अन्दर है। स्वयं हमारे अन्तःकरण में ये विषैले कीटाणु आ घुसे हैं और उन्हों ने हमारा सर्वनाश किया है। पृथ्वी पर तो कोई भी मनुष्य दरिद्र, असमर्थ, क्षुद्र या संकीर्ण नहीं होना चाहिए। परम शोक का विषय है कि समृद्धि के भंडार में रहते हुए भी हम अपनी आत्मा को संकुचित कर डालते हैं, उस में दुर्दैव के निरुत्साही विचार भर लेते हैं और भयपूर्ण दरिद्रता के विचारों में लिप्त रहते हैं। दरिद्रता से लड़ाई ठान लेने के स्थान पर उल्टे, उस से मेल कर लेते हैं। यह हमारी गुरुतम त्रुटि है। विचार की यह परवशता ही हमें समृद्धि के उत्कृष्ट मार्ग पर अग्रसर नहीं होने देती। यदि हम जीवन के आदर्श को नीचे न आने दें, मन में दरिद्रता के भयंकर विचारों को घुसने ही न दें तो अवश्य हमारा जीवन परिपूर्ण एवं ऐश्वर्यशाली हो जायगा।

दरिद्रता के विचार-चुम्बक द्वारा हम समृद्धि को निज मानसिक क्षेत्र की ओर किस प्रकार आकर्षित कर सकते हैं यदि दरिद्रता के विचार घुसे रहेंगे तो समृद्धि आने के मार्ग बन्द ही रहेंगे। सौभाग्य और समृद्धि का दरिद्रता एवं संकीर्णता से निरंतर संग्राम चलता रहता है। समृद्धिशाली बनने के लिए सदा सर्वदा के लिए दरिद्रता, न्यूनता और क्षुद्रता की भावनाओं को बिल्कुल निकाल देना पड़ेगा। इन संकीर्ण विचारों से उठाकर अपना विचार-प्रवाह समृद्धि की ओर फेर देना पड़ेगा।

विचार-दरिद्रता से मुक्ति के नियम—सर्व-प्रथम श्रद्धा उत्पन्न कीजिए। आपका दृढ निश्चय होना चाहिए कि हम भूलकर भी दरिद्रता की बात न सोचेंगे और न कल्पना ही करेंगे। हम उस ओर से सदैव के लिए मुख मोड़ रहे हैं। समृद्धि हमारे

अंतःकरण की ही वस्तु है, अतः इस दृढ निश्चय से समृद्धि, ऐश्वर्य एवं पूर्ण श्रेष्ठता की ही आशा रखेंगे और उसी को मन में जागृत करेंगे। अपने चारों ओर के वायुमंडल को दरिद्रता से मुक्त कर देंगे। निकृष्ट विचारों को सदा के लिए बहिष्कृत कर देंगे। हम अपने जीवन को सुन्दर बनाएंगे। समृद्धि, सौंदर्य, ऐश्वर्य तो हमारे मन में पड़े सो रहे हैं। हार्दिक अभिलाषा के द्वारा उन्हें उठा लेंगे। अन्तःकरण-स्थित पूर्ण श्रेष्ठता, पूर्ण सौंदर्य, पूर्ण महत्ता, पूर्ण समृद्धि की आराधना करेंगे। मुझे अपनी शक्तियों पर भरोसा है; पूरी श्रद्धा है; मैंने अपने मन से भय और शंका को निकाल दिया है; अब मैं अपने में विश्वास करता हूँ और मैं अपने आपको योग्य मानता हूँ। अपना महत्त्व, अपनी शक्तियों का ज्ञान, अपनी विशेषता को समझ गया हूँ। इस श्रद्धा के प्रताप से अवश्यमेव विजय-पथ पर अग्रसर हूँगा। मैं अभी तक एक गहरी नींद में सो रहा था, अब श्रद्धा और विश्वास के प्रकाश में जगा हूँ। अतः अब मेरी आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि पथ-प्रदर्शक का सत्कार्य कर रही है"। इस प्रकार की भावना द्वारा मनुष्य की श्रद्धा में बल आता है और समृद्धि-प्राप्ति का मार्ग उसे स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगता है। जिस दिन से मनुष्य अपनी आत्मा एवं योग्यता में दृढता से विश्वास करना प्रारम्भ करता है, उसी दिन से दरिद्रता उससे दूर भागने लगती है फिर ज्यों-ज्यों उसके विचार उन्नत, उदार एवं स्वतंत्र होते जाते हैं त्यों-त्यों उसे सुभीता प्राप्त होता जाता है। उसे वे दुर्लभ वस्तुएं प्राप्त होती हैं जिसके द्वारा वह निज आर्थिक एवं मानसिक उन्नति में प्रवृत्त हो सकता है; और तभी उसे ज्ञात होता है कि दरिद्रता का कारण उसके संकुचित एवं कृपणता के क्षुद्र विचार ही थे।

संघर्ष में ही आनन्द है !

मनुष्य अपनी परिस्थितियों का निर्माता स्वयं आप है; जो संघर्ष करता है वह एक दिन अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर ही लेता है।

कल्पना कीजिए—यदि ऐसा होता कि आप जिस वस्तु, स्थिति. या इच्छा की कामना करते, वह सोचते ही बिना हाथ-पाँव हिलाए अनायास ही प्राप्त हो जाया करती, तो कैसा रहता ? राजा माइडास को यह वरदान प्राप्त हुआ था कि वह जिस वस्तु को स्पर्श कर दे वही सोना बन जाय। उसने जिस-जिस वस्तु का स्पर्श किया, यहां तक कि उसका भोजन तथा पीने का जल तक स्वर्ण बन गया। पर क्या उसे तृप्ति मिली, सुख मिला, आनन्द का अनुभव हुआ ? नहीं, वह स्वर्ण की इच्छा से थक गया।

यदि इच्छानुसार वस्तु-प्राप्ति का विधान हो जाय, तो हमारे जीवन का समस्त सुख, उल्लास, कार्य करने का जोश, उभार विनष्ट हो जाय। संसार का कोई अर्थ ही न रहे। हमारे जीवन के अरमान मर जाएं।

मान लीजिए आप खेल के मैदान में हाकी या फुटबाल खेल रहे हैं। २२ खिलाड़ी परस्पर एक गेंद को इधर से उधर धकेलने के लिए जी-जान से जूझ रहे हैं। पसीना बह रहा है। हाथ-पाँव थक गए हैं, श्वास तेजी से चल रहा है। एक क्षण आलस्य किया कि गेंद दूसरे खिलाड़ी ने छीन ली। आप सतर्कता से चारों ओर देखकर बढ़ते जा रहे हैं। चारों ओर

से दर्शकगण हर्षोल्लास का शोर करते हैं। आपका मन खुशी से भर जाता है। अब सोचिये, यदि दूसरे पक्ष के खिलाड़ियों में से कोई आपको न रोकता, मार्ग में कठिनाइयां उपस्थित न करता, आप थके या बिना पसीना बहाये, यों ही गोल कर देते तो कैसा रहता ?

आपका सारा आनन्द नष्ट हो जाता। आपके हृदय में न आकांक्षा रहती, न जोश। खेल का आनन्द और जोश तभी आता है, जब दूसरे पक्ष के भी हमारे बराबर के हों तथा हम प्राणपण से गतिवान् हों। ऐसे जोशीले खेल में जीतने और हारने वाले दोनों को बराबर का आनन्द आता है। कोई भी विजय वास्तविक विजय नहीं है, जब तक वह किसी प्रबल विरोधी से न जीती गई हो।

चाहे आप स्वीकार करें, या न करें यदि खेल में संघर्ष और विरोध की कठिनाइयां, उपद्रव, चोट, पसीना न हो उसका मजा अधूरा ही है। कारण, आनन्द वस्तु में नहीं, उसकी प्राप्ति में किए गए हमारे अनवरत प्रयत्नों और श्रम में है। यदि हमने किसी वस्तु के लिए श्रम न किया हो, रुपया व्यय न किया हो, तो उसका हमारे लिए कोई मूल्य नहीं होगा। संघर्ष और प्रयत्न, हमारी क्रिया और परिश्रम जीवन को सजीव बनाने में साधक हैं।

कठिनाइयों पर विजय पाने, सफलता की एक सीढ़ी से दूसरी पर चढ़ने, नई इच्छाएँ करने और फिर नए जोश, नई स्फूर्ति एवं चेतना से उनकी पूर्ति करने से बढ़कर जिन्दगी में कोई खुशी नहीं है।

जो व्यक्ति किसी महान् या प्रशंसनीय कार्य में कोई परिश्रम करता है, पहले वह आशा का सहारा पाता है फिर आन्तरिक संतोष और प्रसन्नता का पुरस्कार।

परमेश्वर की इस पुण्यस्थली में कुछ ऐसा विधान है कि मनुष्य जब तक संघर्ष करता रहता है; एक के पश्चात् दूसरा संघर्षमय यज्ञ प्रारम्भ कर देता है; जीवन-पर्यन्त किसी न किसी प्रकार के संघर्ष में मन, बुद्धि, शरीर की शक्तियों को लगाए रहता है; तब तक उसे आनन्द की उपलब्धि होती जाती है। संघर्ष से विश्राम लेते ही हाथ-पाँव, मन और सामर्थ्य ढीले-ढाले पड़ जाते हैं, इन्द्रियों में शिथिलता आ जाती है और मानों जीवित अवस्था में ही मृत्यु हो जाती है।

हम जब तक जिएँ, संघर्ष करें। निरन्तर गति धारण कर दैवी ज्योति की किरणों का स्वागत करते हुए नव निर्माण में लगे रहें। हमारा जीवन नित नई चेतना, और नई आभा का प्रतीक बने।

गति ही जीवन और स्थिरता ही मृत्यु है।

मुकदमेबाजी से यथासंभव दूर रहें !

"क्या बताऊँ, प्रोफेसर साहब ! मुकदमे ही मेरा पीछा नहीं छोड़ते। एक सिमटता नहीं कि दूसरा किसी न-किसी तरह शुरू हो जाता है। आजकल तीन-तीन मुकदमों में फँसा हुआ हूँ। कचहरी जाते-जाते परेशान हो गया हूँ। न जाने कितना रुपया व्यय हो चुका है। पता नहीं, कब पीछा छूटेगा" एक सज्जन ने मिलने पर मुझे एक बार कहा।

जो समस्या उपर्युक्त महाशय की है, सम्भव है वह आपकी भी हो। आज कचहरियों में नाना प्रकार के मुकदमों में फँसे हुए व्यक्तियों की भीड़-भाड़ दिखाई देती है मुकदमों की संख्या उत्तरोत्तर अभिवृद्धि पर है। झगड़ों, मारपीट, फौजदारी के मामलों तथा अन्य सिविल मुकदमों की संख्या निरन्तर वृद्धि पर है।

मुकदमों में लिप्त रहनेवाले व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं।

१—अपराधी, जो नाना प्रकार के अपराधों को करने से नहीं हिचकते—लूटपाट, चोरी, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, इत्यादि अपराधों को करने में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संलग्न रहते हैं। इनका अपराधी मन नाना प्रकार के षड्यंत्र करने की युक्तियाँ सोचा करता है। इनमें बहुत से व्यक्ति कामचोर, आलसी, विलासी तथा स्वार्थी होते हैं, जो मुफ्त का माल उड़ाना चाहते हैं और परिश्रम नहीं करना चाहते।

२—द्वितीय श्रेणी ऐसे व्यक्तियों की है जो "अहम्" से परेशान हैं। उनकी "अहम्" वृत्ति उग्र रहती है। अतः

जरा-जरा सी बात में इनका मन घायल हो उठता है। वे झगड़ालू स्वभाव के होते हैं। वे किसी से दबना नहीं चाहते, बल्कि लड़-झगड़ कर या मुकदमा चलाकर दूसरों से ऊँचा उठने को उत्प्रेरित रहते हैं। उनके मन में "अहम्" की भावना इतनी जल्दी घायल हो उठती है कि वे अपने विपक्ष की बात तनिक भी सम्हाल नहीं पाते। अतः संवेदना की कोमलता, सहिष्णुता की कमी, सूद कमाने की या दूसरे के शोषण की भावना, झगड़ालू स्वभाव और घोर अहंभाव की दुष्प्रवृत्तियाँ सम्मिलित होकर मन को मुकदमेबाजी करने के लिए बाध्य करती हैं।

मुकदमेबाजी में मनुष्य के गुप्त मन में प्रतिपक्षी को नीचा दिखाने की स्वार्थमयी दुष्प्रवृत्ति होती है। चाहे उसका पक्ष कितना ही निर्बल क्यों न हो, वह वकील को रुपया देकर नाना कुतर्कों द्वारा अपने "अहम्" की पूर्ति में सतत जागरूक रहता है। प्रायः देखा जाता है कि "अहम्" को उभारने और अपने-आप को महत्ता देने के लिए मनुष्य चलते-फिरते योंही झगड़ा मोल लेने पर उतारू रहते हैं। बात की बात में उत्तेजित होकर झगड़ा कर बैठते हैं। मारपीट हो जाती है, अथवा अपशब्दों का वाग्युद्ध चलता है। मुकदमेबाजी का रोग दूसरों से लड़ने-भिड़ने, झगड़ा मोल लेने, अपने पक्ष, दृष्टिकोण, या महत्ता की उत्तमता का प्रदर्शन है।

मुकदमेबाज स्वार्थी होता है। उसमें सहिष्णुता या दूसरे पक्ष को समझने की इच्छा नहीं होती। वह दूसरे के दृष्टिकोण को महत्ता या विचार नहीं देना चाहता। वह चोर, घमण्डी, लोभी, ईर्ष्यालु, दुःसाहसी, तर्कशील, प्रतिशोध लेनेवाला होता है। वैर-भाव उसे सदैव अशाँत रखता है। यदि समाज

ग, सरकार का कठोर नियन्त्रण न हो, तो वह इस गुप्त वैर-भाव से पागल तक हो सकता है।

वैर-भाव तीव्र संवेदना से संयुक्त हो कर मन में एक जटिल भावना ग्रन्थि (Complex) के रूप में जम जाता है और मनुष्य के स्वभाव का एक अङ्ग बन जाता है। मुकदमे-बाज को फिर कोर्ट में जाने, वकील से लम्बी बहस करने, मुंशियों से बातचीत करने, कानून सम्बन्धी ऊपरी ज्ञान के प्रदर्शन में एक गर्वपूर्ति (Egoism) का अनुभव होने लगता है। यही झगड़ालू प्रवृत्ति उसके पारिवारिक जीवन को कटु बना देती है। वह अपने बच्चों, पत्नी तथा अन्य सदस्यों से बात-बात में उत्तेजित होता है, बच्चों को पीटता है, स्वयं चुपचाप अपने विषय में चिन्तन किया करता है। मुकदमा जीतकर रुपया कमाने की प्रवृत्ति उसके मानसिक क्षेत्र में फिरती रहती है। कठोर परिश्रम के स्थान पर अनायास बिना परिश्रम के अर्थलाभ करने की इच्छा उसे सदैव रहती है। आजकल मानहानि के मुकदमों की संख्या उत्तरोत्तर अभिवृद्धि पर है। तनिक से ऊँचा बोलने या किसी कटु बात के मुँह से निकलते ही दस-दस हजार का मानहानि का दावा दायर कर दिया जाता है। अति भावुकताजन्य इस अति संवेदनात्मक मनःस्थिति से सावधान रहने की आवश्यकता है।

ऊपर जिस मनोवृत्ति का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, वह समाज के लिए विध्वंसात्मक है। इससे मुक्ति पाने में दत्तचित्त हो जाना चाहिए। इसे दूर करने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि इसका विपरीत-भाव—अर्थात् मैत्री-भाव विकसित किया जाए। मैत्री भावना का अभ्यास मनुष्य की द्वेषात्मक संहारक दुष्प्रवृत्तियों का विनाशक है।

"मेरा कोई शत्रु नहीं। मैं सब में आत्मभाव देखता हूं। मैं किसी की निन्दा नहीं करता, स्वार्थवश होकर दूसरों का बुरा नहीं चाहता। मैं दूसरे की न स्वयं निन्दा करता हूँ, न सुनता हूँ। मैं सहिष्णु हूँ। दूसरों की चार कटु बातें भी सहन कर लेता हूँ। सर्वत्र अपने मित्र ही मित्र देखता हूं।"

यह भाव पुनः पुनः मन में लाने तथा तदनुरूप अभ्यास करने और संकेत (Suggestions) देने से मनुष्य का द्वेषात्मक दृष्टिकोण दूर हो जाता है।

सब से मित्रता, प्रेम, सौहार्द का भाव हमें मनः शान्ति देने वाला, प्रसन्नचित्त रखने वाला, मधुर निद्रा प्रदान करने वाला और दूसरों का शुभ-भाव खींचने वाला है। मैत्री-भाव सदा हमारा लाभ करते हैं। गुप्त रूप से उनकी लहरें दूसरों के हृदय में प्रविष्ट होकर उनके द्वेष-भाव को दूर करती हैं।

एक मनोवैज्ञानिक लिखते हैं, "मैत्री-भाव के अभ्यास के कई प्रकार हैं। किसी व्यक्ति के विषय में चर्चा की जाए तब उसके विषय में उदार विचार ही प्रकट किए जाएँ; सब के प्रति शुभ भावना रखी जाए···शत्रु के प्रति भी शुभ भावना ही रखी जाय। यदि हम स्वार्थ से पृथक् हो कर किसी व्यक्ति को देखेंगे, तो हम उसे शत्रु पाएँगे न मित्र। मैत्री भावना का अभ्यास सोते समय करना सर्वोत्तम है. क्योंकि सोते समय के विचार मनुष्य के आन्तरिक मन को प्रभावित करते हैं। इससे उसके स्वभाव का परिवर्तन हो जाता है, स्वास्थ्य में सुधार और असत् कल्पनाओं का विनाश होता है।"

छोटे-मोटे झगड़ों को प्रेम-भाव से सुलझाना या सहिष्णु बनने से मुकदमेबाजी के रोग से मुक्त हुआ जा सकता है।

ठगी में मत आइये

मनुष्य के चरित्र की बड़ी निर्बलता यह है कि वह सस्ती वस्तु को, चाहे वह उसके उपयोग की हो या न हो, केवल इसीलिए खरीद लेता है क्योंकि वह सस्ती है। प्रायः पत्रों में ऐसे अनेक झूठे विज्ञापन प्रकाशित होते रहते हैं जिनमें पाँच रुपये में दस-पन्द्रह छोटी-छोटी वस्तुओं को देने का निर्देश होता है। सस्तेपन के शौकीन इन्हें क्रय कर बाद में पछताते हैं। इसी प्रकार इनाम के लालच में अनेक व्यक्ति लाटरी के टिकट खरीदा करते हैं। पहेलियों के हल, क्रासवर्ड पजल, तथा इसी प्रकार के अन्य प्रलोभनों में मानव का लोभ नाना रूप ग्रहण कर लेता है तथा हमारे विवेक को पंगु कर डालता है।

अनुपयोगी वस्तुओं को न निकालना वरन् उनके लिए एक पृथक् कमरा बना कर उन्हें एकत्र करते रहना भारतीय चरित्र की संकुचित लोभ-मोह वृत्तियों का सूचक है। यदि ध्यान से देखा जाय तो टूटी-फूटी, बेकार वस्तुओं का एक कबाड़खाना प्रत्येक भारतीय परिवार में मिलेगा।

इसके विपरीत अंग्रेजी परिवारों की एक बड़ी विशेषता यह है कि वे बेकार वस्तुओं को घर में स्थान नहीं देते। जब तक कोई वस्तु काम में आ रही है और उससे कार्यपूर्ति हो रही है, तब तक वह रखी जाती है। बाद में सस्ते दामों में कबाड़ियों को बेच दी जाती है। सफाई तथा उपयोगिता – ये दो दृष्टिकोण सन्मुख रखकर घर में वस्तुओं को स्थान दिया जाता है।

भारतीय स्वभावतः मोह तथा संकुचितता में फँसा रहता

है। सस्तेपन पर जान देता है। सस्ती चीज़ों की, जो किसी काम की नहीं होतीं, इस देश में सब से अधिक खपत है। जापानी चीज़ें, जो सबसे सस्ती होती हैं, सब से बड़ी संख्या में यहाँ खप जाती हैं। यह चीज़ सस्ती है, कम पैसे में आती है, अतः ले लेनी चाहिए—यही हमारे देशवासियों का स्वभाव सा बन गया है। एक व्यक्ति जैसा दूसरों को करते हुए देखता है, बिना तर्क, विवेक या चीज को देखे-भाले खरीद बैठता है। यह स्वयं अपनी विवेक बुद्धि तथा अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को नहीं देखता। भारतीय पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ इस ठगी में अधिक आती हैं।

रेल में नीलाम होने या बिकने वाले मंजन, आँख की दवाईयां, मरहम, बिच्छू की दवाई, आँखों के काजल, खिलौने, कंघे, चूर्ण, पीपरमेन्ट की गोलियाँ आदि अनेक वस्तुएँ ऐसी होती हैं, जिनमें कोई तत्त्व नहीं होता। जनता को मूर्ख बनाया जाता है। एक बार हमारे एक मित्र कहते थे कि बम्बई में कोयला पीस नमक मिला, डिब्बों में बन्द कर बेचने पर पाँच रुपये रोज की कमाई हो जाती है। इसी प्रकार काजल, चूर्ण इत्यादि बना कर सस्ते दामों में रेल में बेचा जाता है। चूर्ण बनाना सबसे सरल है। नमक, कालीमिर्च खटाई इत्यादि मिलाकर चूर्ण बनाया जाता है। रेल में बैठे हुए मुसाफिरों के पास कुछ काम न होने के कारण, दूसरों के अनुकरण पर ये वस्तुएँ बिकती हैं। इनके द्वारा जनता को लूटा जाता है।

इसी प्रकार सड़क के किनारे सांप का तमाशा दिखाने या अन्य कुतूहलप्रद चीजें दिखा कर जनता का ध्यान आकृष्ट करने

वालों के द्वारा ऐसा ही मायाजाल फैलाया जाता है। पुरुषत्व बढ़ाने के लिए भाँति-भाँति के मायाजाल द्वारा आज कल अशिक्षित, मूर्ख, जनता को चूसा जाता है। पुरुषत्व बढ़ाने के लिए लोग खुले हाथ व्यय करते हैं। वह इन बाजारू दवाइयों से किसी भी प्रकार प्राप्त नहीं होता। बेचने वालों की वाक्-शक्ति भावना के प्रवाह, अनुकरण की प्रवृत्ति सस्तेपन का लालच आदि सम्मिश्रित होकर हमें नीलाम में डालते हैं। सौ में से नब्बे बार हम अपने रुपये का कम मूल्य लेकर लौटते हैं।

चीज़ों को सस्ता लेना भी एक दुष्प्रवृत्ति है। इससे ग्रसित मन, मोह तथा लालच का शिकार होता है। वह गन्दी टूटी फूटी चीजें लेकर अपने को धन्य समझता है, किन्तु पाता है रद्दी, बेमतलब की चीज। उत्कृष्ट चीज में पैसा अधिक लग सकता है, पर उससे लाभ स्थायी होता है।

नीलाम की चीजें प्रायः टूटी-फूटी, गन्दी बिना लाभ की होती हैं। जनता की भावना को उद्दीप्त कर उन्हें खरीदने के लिए उकसाया जाता है। जनता में अनुकरण की जो प्रवृत्ति है, उसी का यह दुरुपयोग है। लोग दूसरे को जैसा करते हुए देखते हैं, उसी प्रकार के बिना समझे-बूझे करने चलते हैं। उसमें कितना लाभ होगा इसका अनुभव दूसरे के कार्य से किया जाता है, स्वयं अपने विवेक पर नहीं।

प्रत्येक वस्तु खरीदते या नीलाम में लेते समय यह परखिये कि बेचने वाले की आकर्षक बातों के प्रभाव में आकर तो आप उसे नहीं खरीद रहे हैं? क्या आपको इस वस्तु की वास्तव में आवश्यकता है, या केवल लोभ के बल पर आप ऐसा करने को लालायित हो रहे हैं? नीलाम में अशिक्षितों को मूर्ख

बनाया जाता है, उनके साथ आप भी क्यों मूर्ख बनने चले हैं? क्षणिक भावना की उद्दीप्ति में हम प्रायः ऐसे कर्म कर बैठते हैं, जिन पर बाद में पछताना होता है।

हमारे सामाजिक जीवन में सस्ती, बेकार, काम में न आने वाली वस्तुएँ, गले-सड़े खाद्य पदार्थ, दूध, सड़ी तरकारियाँ, फल, बासी मिठाइयाँ जो सस्ती मिल जाती हैं खरीदने का महारोग हो गया है। इससे देश का स्वास्थ्य तथा नैतिक जीवन-स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है। आवश्यकता यह है कि इस गन्दी आदत के विरुद्ध जनता का ध्यान आकृष्ट किया जाय।

जब कोई वस्तु सस्ती मिलती है, तो यह तो स्पष्ट ही है कि वह उस कोटि की नहीं है, जिस कोटि की मंहगी वस्तु होगी। सस्तापन, कमजोरी और हलकापन साथ-साथ चलते हैं। अतः सस्ता कपड़ा, सस्ता भोजन, [अनाज, फल, तरकारियाँ, मेवे, मिठाइयाँ तथा दूध इत्यादि] सस्ता मकान, सस्ती वस्तुएँ खरीदते समय पर्याप्त विचार-विमर्श कीजिए और क्षणिक मोह से बचिये। मँहगी पर अच्छी वस्तु, सस्ती पर खराब वस्तु से श्रेष्ठ है।

भूल को कैसे सुधारा जाय ?

जब मनुष्य से एक बार किसी कुपथ पर चला जाता है, तो उसे इतना ज्ञान और विवेक नहीं होता कि वह सुपथ पर आ सके। अन्धकार में खोये हुए पथिक की भांति वह कुमार्ग पर निरन्तर चला जाता है। यदि कोई रोक कर उसे सुमार्ग प्रदर्शित न करे, तो वह अज्ञान में ही भटकता रहेगा। कभी लोग जानते बूझते अनीतिकर मार्ग का अवलम्बन कर बैठते हैं। इस का कारण यह है कि एक बार कुपथ चुन लेने के पश्चात् सुपथ पर आते हुए उन के गर्व और "अहम्" को चोट लगती है। वे कुपथ पर चल कर उसी मिथ्या गर्व की रक्षा में सचेष्ट रहते हैं।

मान लीजिए, आप किसी से कोई प्रतिज्ञा कर चुके हैं, बाद में आप को प्रतीत होता है कि आप भूल कर बैठे हैं। आप को ऐसी अदूरदर्शितापूर्ण प्रतिज्ञा नहीं करनी चाहिए थी। किसी को रुपया, पुस्तक, या साइकिल उधार देने का वचन देना एक भूल है, क्योंकि या तो ये वस्तुएँ समय पर वापस लौट कर नहीं आती, यदि आ भी गई, तो टूट फूट कर आती हैं। उलटी प्रतिज्ञा कर लेने पर उसे शीघ्र से शीघ्र सुधार लेना ही बुद्धिमानी है, अन्यथा वह भूल अधिकाधिक अभिवृद्धि को प्राप्त होती रहेगी।

मान लीजिए, आप एक लड़के की शिक्षा, संस्कार और बाह्य वेश-भूषा देख कर उसे अपनी कन्या के लिए चुन लेते हैं। कुछ मास के पश्चात् विवाह से पूर्व आप को उस के चरित्र

की निर्बलताएँ पता लगती हैं। आप यदि अपने वचन के पक्के हैं, तो अपनी भूल को बढ़ा कर कन्या का जीवन नष्ट कर देंगे। उत्तम तो यह है कि वर पक्ष से क्षमा मांग लें और अपनी भूल का सुधार कर दें।

भूल का सुधार नये प्रशस्त मार्ग का अनुसरण करना है। आप एक भूल को सुधार कर अपने चरित्र को सबल बना रहे हैं। आगे आने वाले युग के लिए अपने आप को तैयार कर रहे हैं। एक भूल को सुधारना सैकड़ों भूलों से बचना है।

जो अपनी त्रुटि स्वीकार करता है वह महान् आध्यात्मिक पुरुष है। वह 'अहम' को वश में रखता है। 'अहं' को वश में करना स्वर्ग, मुक्ति और परमपद प्राप्त करने का मार्ग है। समस्त मूर्खताएँ इसी से दूर होती हैं। प्रत्येक सुधरी हुई भूल आगे के लिए सावधानी का मार्ग तैयार करती है। आत्मोन्नति का अर्थ है—असंख्य भूलों को सुधारते हुए परमपद की ओर अग्रसर होना।

भूल करना बुरा नहीं है। संसार के महान् पुरुषों ने अनेक प्रकार की भूलें की हैं। रावण जैसा विद्वान्, धार्मिक अपने दुष्कृत्यों से राक्षस जैसा बन गया। वाल्मीक डकैत और खूनी रहे हैं। सूर और तुलसी कामान्धता में भूल करते रहे थे। नानक, कबीर, मीरा, रसखान आदि सांसारिक जीवन में भूलें करते रहे थे, परन्तु इन्हों ने भूल को सुधारा और आगे बढ़ कर महापुरुष बने।

मनोविज्ञान में "ट्रायल एण्ड एरर" भूल कर सन्मति प्राप्त करने और आगे बढ़ने का महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य जब जीवनयात्रा पर निकलता है, तो उसके मार्ग में अनेक प्रलोभन

आते हैं। वह इन प्रलोभनों के वश में इधर-उधर भागता और भूलें करता है। भूल की कडुवाहट से उसे भयंकर भूल का भान होता है। वह उस त्रुटि को भविष्य में न दुहराने का संकल्प कर आगे साधना-पथ पर बढ़ता है इस प्रकार नाना प्रकार की त्रुटियों से बच कर निरन्तर साधना में अग्रसर होना मानव-विकास है। भूलों का अभिप्राय यह है कि ये सुपथ से जरा हट गये थे। अब उस सुपथ का मर्म पहिचान कर पुनः शुद्ध मार्ग पर आ रहे हैं। जो भूल अनजाने में हो जाती है, उस पर आप का वश नहीं है, किन्तु जो आप जान-बूझ कर करते हैं, उस के बारे में आप अवश्य दंडनीय हैं। उसके लिए आप को हृदय मे पश्चाताप करना चाहिए। पश्चाताप ही इस से बचने का आध्यात्मिक उपाय हो सकता है। जब आप सच्चे मन से भूल न करने का संकल्प करते हैं, तो मन की असंख्य शक्तियाँ आप के साथ रहती हैं। भूल से बचने का उपाय हमारे मन में ही है। मन जितना ही सतर्क रहेगा, उतना ही भूल करने की कम संभावना रहेगी।

स्मरण रखिए, एक भूल को सुधार कर आप किसी-न-किसी क्षेत्र में आगे बढ़ जाते हैं। प्रत्येक भूल अनुभव से जुड़ी हुई है। वह आप के अनुभव में नवीन और ठोस ज्ञान जोड़ती है। मनुष्य यदि प्रत्येक भूल से लाभ उठाने की मनोवृत्ति धारण करे, तो प्रचुर लाभ हो सकता है।

श्रेष्ठतम कार्य करें

स्वेट मार्डन ने एक अमेरिकन लखपति की सफलता के रहस्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—"वह पहले-पहल केवल सात डालर प्रति सप्ताह वेतन पाते थे, किन्तु धीरे-धीरे उनका वेतन दस हज़ार डालर प्रति वर्ष हो गया। वे उसी संस्था के एक हिस्सेदार बन गये। सदा उनकी इच्छा यह दिखाने की रही कि वे श्रेष्ठतम कार्य द्वारा अपने आपको सर्वश्रेष्ठ घोषित करा सकें। जिस उच्चकोटि का वे कार्य करते थे, उसने सब का शीघ्र ही ध्यान आकृष्ट किया। तीन वर्ष के अनन्तर अच्छे माल की उनकी इतनी अच्छी परख हो गई थी कि दूसरी कम्पनी ने उन्हें तीन हज़ार डालर अधिक देकर विदेश भेजने का प्रस्ताव रखा था। किन्तु अपनी संस्था के प्रति स्वामिभक्ति के कारण वे न जा सके। कुछ व्यक्ति कहेंगे कि उनकी मूर्खता थी, जो इतना अच्छा वेतन छोड़ दिया, किन्तु सर्वश्रेष्ठ कार्य करने की इच्छा और अपनी संस्था के प्रति भक्तिभावना उन्हें रोके रही।

जब आप साधारण कोटि का कार्य करते हैं, तो न केवल अपने मालिक को धोखा देते हैं, स्वयं अपने आपको भी धोखा देते हैं। आपके मालिक की इतनी हानि नहीं होती, जितनी साधारणतया निम्न कोटि का कार्य करने से स्वयं आपकी होती है। मालिक की तो तीन-चार आने की ही हानि होगी, किन्तु अधूरा, अन्यमनस्कता से किया हुआ निम्न कोटि का कार्य आपको एक नीचे स्तर पर ला पटकेगा। आपको आलस्य

श्रेष्ठतम कार्य करें

स्वेट मार्डेन ने एक अमेरिकन लखपति की सफलता के रहस्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—"वह पहले-पहल केवल सात डालर प्रति सप्ताह वेतन पाते थे, किन्तु धीरे-धीरे उनका वेतन दस हजार डालर प्रति वर्ष हो गया। वे उसी संस्था के एक हिस्सेदार बन गये। सदा उनकी इच्छा यह दिखाने की रही कि वे श्रेष्ठतम कार्य द्वारा अपने आपको सर्वश्रेष्ठ घोषित करा सकें। जिस उच्चकोटि का वे कार्य करते थे, उसने सब का शीघ्र ही ध्यान आकृष्ट किया। तीन वर्ष के अनन्तर अच्छे माल की उनकी इतनी अच्छी परख हो गई थी कि दूसरी कम्पनी ने उन्हें तीन हजार डालर अधिक देकर विदेश भेजने का प्रस्ताव रखा था। किन्तु अपनी संस्था के प्रति स्वामिभक्ति के कारण वे न जा सके। कुछ व्यक्ति कहेंगे कि उनकी मूर्खता थी, जो इतना अच्छा वेतन छोड़ दिया, किन्तु सर्वश्रेष्ठ कार्य करने की इच्छा और अपनी संस्था के प्रति भक्तिभावना उन्हें रोके रही।

जब आप साधारण कोटि का कार्य करते हैं, तो न केवल अपने मालिक को धोखा देते हैं, स्वयं अपने आपको भी धोखा देते हैं। आपके मालिक की इतनी हानि नहीं होती, जितनी साधारणतया निम्न कोटि का कार्य करने से स्वयं आपकी होती है। मालिक की तो तीन-चार आने की ही हानि होगी, किन्तु अधूरा, अन्यमनस्कता से किया हुआ निम्न कोटि का कार्य आपको एक नीचे स्तर पर ला पटकेगा। आपको आलस्य

दबा लेगा और फिर आप वैसा साधारण कार्य ही करने के अभ्यस्त हो जाएंगे। ऊँची कोटि का श्रेष्ठ कार्य जिसमें अपेक्षाकृत अधिक ध्यान, श्रम, अध्यवसाय लगते हैं, करने को रुचि न करेगी। आपका आत्म-विश्वास धीरे-धीरे समाप्त हो जायगा और एक दिन ऐसा आयेगा जब आप वैसा ही साधारण सा कार्य करने के अभ्यस्त हो जाएंगे।

जो व्यक्ति अपने श्रेष्ठ कार्य के लिए प्रसिद्ध था, वही साधारण श्रेणी में खिसक आये, तो यह उसका दुर्भाग्य ही कहा जायगा।

जिस कार्य को आप हाथ में लें, उसे इतनी लगन से कीजिए कि आपका ट्रेड मार्क श्रेष्ठ, उच्चता, सौन्दर्य का प्रतीक हो। लोग उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति देखते ही कह उठें, कि अमुक व्यक्ति का बनाया या किया हुआ कार्य है। फैक्ट्रियों से निकाला हुआ हर एक बर्तन या बना हुआ माल भी आपके लिए इतने महत्त्व की वस्तु नहीं जितना हाथों या मस्तिष्क से किया हुआ कार्य। वे अपनी पुरानी साख से साधारण कार्य किया करते हैं, मामूली चीजें भी किसी प्रकार बाजार में खपा सकते हैं, लेकिन आप एक सदा चलती हुई फैक्ट्री हैं। नए नए व्यक्ति आपके सम्पर्क में आते हैं; अतः पुरानी साख प्रायः कार्य नहीं करती। ढंग से प्रत्येक स्थान पर आपको अपनी साख बनानी पड़ती है।

आपका व्यापार किसी भी कोटि या श्रेणी का हो सकता है, लेकिन आप भी चाहें तो अपना कार्य सर्वाधिक सुन्दरता और श्रेष्ठता से सम्पन्न कर सकते हैं। आपका प्रत्येक कार्य एक फैक्ट्री से बन कर निकली हुई वस्तु जैसा है। इसमें आपके

चरित्र की महत्ता, कुशलता और कलात्मक उदात्तता प्रकट होती है।

आप जो कुछ करें, चाहे वह घर का कार्य हो या दुकान, आफिस अथवा सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में हो जिसमें आपको तनिक भी आय न हो, फिर भी आप अपने कार्य को अधूरा या अन्यमनस्कता से भोंड़े रूप में न कीजिए। उस पर लग कर पूर्ण निष्ठा से तन्मय होकर इतना अच्छा बनाइये जितना आप बना सकते हैं। आप में जितनी भी कार्यकुशलता है उसे लगाकर पूर्ण रूप से अपना कार्य निकालिये। आप देखेंगे कि इस कार्य की मौलिकता और कुशलता की सर्वत्र प्रशंसा होगी। स्वयं आपकी अन्तरात्मा भी इससे सन्तुष्ट रहेगी।

श्रेष्ठता और उच्चता के विकास के लिए किसी की याचना नहीं करनी पड़ती। उत्तमता से सम्पन्न कार्य स्वयं एक बड़ी सिफारिश के समान है। जो व्यक्ति अपने कार्य में कुशलता प्राप्त करता है वह नेता बन कर पूजा जाता है।

हमारे एक मित्र प्रोफेसर हैं पण्डित हरिराम तिवारी। आपकी विशेषताएँ दूर से ध्यान आकृष्ट करती हैं। पण्डित जी शुद्ध खद्दरधारी ब्राह्मण हैं। वर्ष भर में दो कुर्त्ते, दो धोतियाँ, दो बनियान और ठीक चार जाँघिए, जाड़ों के लिए एक कोट, एक वर्दी, कपड़ों के नाम—बस यही उनके पास हैं। स्वयं वस्त्र धोते हैं लेकिन जब कभी उन्हें देखिए वस्त्र दूध के समान सफेद स्वच्छ। चेहरे पर पौरुष और वीर्य से युक्त कान्तिमती त्वचा। कार्य में हाल यह है कि एक पुस्तक भी रखेंगे तो क्रम से, श्रेष्ठता से। सफाई की दृष्टि से घर आदर्श बना है। जलाने की लकड़ी तक एक क्रम से सजी हुई, वस्त्र, पुस्तकें घर की

वस्तुएँ, जीवन के हर क्षेत्र में पण्डित जी श्रेष्ठता के पुजारी हैं। श्रेष्ठता के पुजारी के लिए यह आवश्यक नहीं कि उसके पास रुपया पैसा खूब हो, बड़ा भारी मकान हो, बीस जोड़ी वस्त्र हों, या आभूषण हों, नहीं, इन में से कोई भी आवश्यक वस्तु नहीं है। बस मन में श्रेष्ठतम तन्मयता पूर्ण कार्य करने की उत्कट भावना और आदत होनी आवश्यक है। यदि आप चाहें, तो कार्य को ढीले-ढाले रूप में न कर सुधार संवार कर भी कर सकते हैं। आप का यह विचार ठीक नहीं है कि श्रेष्ठतम रूप में करने में समय अधिक लगता है। जिस व्यक्ति में सुघड़ता स्वभाव का एक अंग बन जाती है, वह कम समय में भी उतनी ही सुचारुता से कार्य कर लेता है जितना दूसरे व्यक्ति बिगड़े या अधूरे ढङ्ग से करते हैं।

सम्भव है, आप के अधूरे और बेढँगे कार्य का कारण कार्याधिक्य हो। क्या आपने अपने जिम्मे अनेक छोटे-बड़े कार्य ले लिए हैं? यदि ऐसा है, तो आप विवेक-पूर्ण रूप से उन में से सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यों का चुनाव कर शेष को छोड़ दीजिए। जिन को चुनिये, उन्हें श्रेष्ठतम रीति से कीजिए।

मैं एक ऐसे व्यक्ति को जानता हूँ जो अपने हस्ताक्षर तक करने में इतने सावधान और सचेत हैं कि कोई अक्षर अस्पष्ट या असुन्दर नहीं लिखते। व्यक्तिगत पत्रों तक में एक-एक अक्षर कामा या चिह्नों के सम्बन्ध में सचेत रहते हैं। अशुद्धियों वाला पत्र, गलत शब्द या उलटा लगा हुआ टिकट पत्र के तारीख में गलती या अन्य छोटी-से-छोटी बात के लिए श्रेष्ठता के पुजारी हैं। फल यह है कि वह हर एक कार्य

में आदर्श समझे जाते हैं, सर्वत्र उन का सम्मान है, उन के मुख्य अफसर उन पर पूर्ण विश्वास रखते हैं।

जीवन में यह नियम बना लीजिए कि या तो हम कोई भी कार्य अपने हाथ में लेंगे नहीं, यदि लेंगे तो उसे ऐसी उत्तमता और श्रेष्ठता से सम्पन्न करेंगे कि हमारा ट्रेड मार्क उस पर लग सके। हमारी श्रेष्ठता और उच्चता उस पर देदीप्यमान रहेगी। जो कुछ कार्य आप के हाथ से निकले उस पर आप के चरित्र की छाप अवश्य रहे।

एक युवती एक पत्रालय में कार्य करती थी। वह कहा करती थी कि वह इस लिए श्रेष्ठतम कार्य नहीं करती क्यों कि पत्र वाले उसे यथेष्ट पारिश्रमिक नहीं दे पाते थे। यह दृष्टिकोण त्रुटिपूर्ण है. यथेष्ट पारिश्रमिक प्राप्त नहीं होता इस लिए अच्छा कार्य क्यों करें—यह एक नितान्त भ्रांतिपूर्ण तथ्य है। इस त्रुटिपूर्ण दृष्टिकोण की वजह से बहुत से व्यक्ति अपनी उच्चतम शक्तियों का विकास ही नहीं कर पाते। साधारण व्यक्ति बने रहते हैं। कम वेतन बुरा काम करने के लिये कोई बड़ा कारण नहीं है। जो वेतन आप को प्राप्त होता है, उस का काम से कोई बड़ा सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। यहां प्रश्न आप के चरित्र का है, वेतन या पारिश्रमिक का नहीं। सच्चा व्यक्ति अपने कार्य को अच्छा ही करेगा, चाहे उसे वेतन अथवा पारिश्रमिक कितना ही क्यों न प्राप्त हो, चाहे बिल्कुल भी न मिले। संसार के इतिहास में जो व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ कार्य कर गये हैं, उन्हें पारिश्रमिक आधा, बहुत कम, कहीं-कहीं तो बिल्कुल ही नहीं प्राप्त हुआ। तुलसीदास जी का "रामचरित मानस", सूर का "सूरसागर", नानक और कबीर के दोहे, या शेक्सपीयर के

विश्व-विश्रुत नाटकों का मूल्य नहीं के बराबर चुकाया गया था।

अधूरे काम करने से न केवल आप को वेतन कम मिलता है प्रत्युत आपका चरित्र, परिवार और वर्ग लांछित होता है; आप के मनुष्यत्व पर धब्बा लगता है। आप का बदनाम होता हुआ चरित्र रुपये-पैसे से कहीं अधिक मूल्यवान् और महत्त्वपूर्ण है। हम जिस भावना से किसी कार्य को हाथ में लेते हैं, वह हमारे चरित्र के रग-रेशे में प्रविष्ट हो जाती है। यहां हमारी अन्तरात्मा का प्रश्न है और रुपये के कारण हमें अपनी अन्तरात्मा को आघात नहीं पहुँचाना चाहिये।

यदि कोई व्यक्ति अपने चरित्र और शक्तियों का सर्वश्रेष्ठ रूप अपने कार्य में प्रकट करता है—हृदय और आत्मा का पूर्ण सामंजस्य रखता है, तो एक-न-एक दिन उस का मालिक उसे देखता ही है और प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। अच्छा और मनोयोग-पूर्वक किया हुआ कार्य स्वयं अपना मार्ग निर्दिष्ट करता और अपनी सिफारिश करता है। यदि आप ने दो रुपये पाकर दस रुपये का काम कर दिखाया, तो निश्चय जानिये यह आप के लिए सब से बड़ी सिफारिश है। अधूरा तथा फूहड़पन से सम्पन्न काम आप को बदनाम करने वाला है। अपना यही नियम रखिये कि अपने मालिक को अधिक कार्य, सतत परिश्रम, अपनी बुद्धि आदि से कम वेतन देने के लिये लज्जित कर दीजिये। आप की सफलता में चरित्र की यह निष्ठा आप को सदैव ऊँचा रखने वाली है। आप के चरित्र का जैसा प्रभाव आप के मालिक पर पड़ता है वह अपना महत्त्व रखता है। मालिक, नहीं तो अन्य कोई सम्पर्क में आने वाला

व्यक्ति अवश्य उस से प्रभावित होगा और आप ऊँचे उठेंगे।

हमारे देखने में यही आया है कि हृदय से कार्य करने वाला व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से भी सर्वदा ऊँचा उठा है, साथ ही उसे प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई है। स्वयं उसका आत्म-विश्वास निरन्तर बढ़ा है। युवकों को यही दृढ़संकल्प लेकर जीवन में प्रविष्ट होना चाहिए कि संसार की सफलता का एक ही मार्ग है और वह है अपने हृदय के ज्ञान को क्रियात्मक रूप में करना।

बनावटी जीवन मत व्यतीत कीजिये

जैसे आप वास्तव में नहीं हैं, उस के विपरीत अपने आप का प्रदर्शन करना, दूसरों पर अपने जीवन, विचार, दृष्टिकोण, वेश-भूषा, आर्थिक अवस्था का गलत प्रभाव डालना भारी मूर्खता है।

आप की आय साठ रुपये मासिक है. किन्तु समाज में आप ऐसे बन ठन के रहते हैं, ऐसे शान से रहने का अभिनय करते हैं मानों आप कोई अफसर हों या आप की आय बहुत हो, ऐसा अभिनय कर बनावटी जीवन व्यतीत करना एक मूर्खता है।

आप की स्थिति ऐसी नहीं कि दूसरे अधिक सम्पन्न व्यक्तियों की तरह उत्तम वस्त्र पहिन सकें, अथवा विशाल भवनों में निवास कर सकें। पर आप दूसरों की देखा-देखी वैसे ही चटकीले-भड़कीले वस्त्र धारण करते हैं; बढ़िया मकानों में निवास करते हैं; सिनेमा का शो अमीर मित्रों के साथ देखने जाते हैं; दिन में एक पैकट सिगरेट का भी समाप्त कर डालते हैं; आप की पत्नी और बच्चे भी खुले हाथ व्यय करते हैं; महीने की २० तारीख को ही आप का वेतन समाप्त हो जाता है। आप हाथ मल-मल कर पछताते हैं और दूकानदारों से उधार ले कर अथवा किसी दूसरे से दस दिन के लिए ऋण ले कर मास का अन्त किसी प्रकार पकड़ते हैं। दूसरे मास पिछला ऋण चुकाना पड़ता है और उस मास का व्यय

पृथक् करना पड़ता है। फलतः, मास की १५ तारीख को ही हाथ खाली हो जाता है। ऋण का भार आपके ऊपर चढ़ता जाता है।

विवाह के अवसर पर दूसरों के ऊपर अपनी महत्ता प्रदर्शित करने के लिए आप भेंट में अपनी स्थिति से अधिक दे डालते हैं। आभूषण, साड़ियाँ भेंट देते समय आप केवल इतना मात्र सोचते हैं कि कोई हमें दूसरे से नीचा न समझ ले; हम समाज में ऊँचे समझे जाँय और प्रतिष्ठा कायम रहे। यह तो उचित है कि आपका यश और प्रतिष्ठा बनी रहे, किन्तु उसे ऐसे मूल्य पर मत खरीदिये कि बाद में टूटी-फूटी वास्तविक स्थिति का ज्ञान होते ही पुरानी बात भी जाती रहे। न आप पुराने रहें, न दूसरों पर नया रंग चढ़े।

अनेक निम्न श्रेणी या मध्यम श्रेणी के व्यक्ति दहेज, पहिनावा इत्यादि पर अपनी सामर्थ्य से बहुत अधिक दे डालते हैं। उस समय तो उन की शान जम जाती है, किन्तु बाद में कलई खुल जाती है और अपनी आर्थिक हीनता के कारण वे समाज की दृष्टि में गिर जाते हैं। कर्ज पीछा नहीं छोड़ता। उसे उतारते-उतारते मर मिटते हैं। यदि अपनी वास्तविक स्थिति प्रारम्भ से ही दूसरों के सामने रख दें, तो लोग उन से अधिक की आशा ही न करें, न उन्हें ही कर्ज का भार जीवन भर ढोना पड़े।

कुछ माता-पिता अपने बच्चों तक ही अपनी वास्तविक स्थिति छिपाये रहते हैं और उन्हें एक मिथ्या प्रपंच में फँसाये रखते हैं। बच्चे गरीबी से परिचित न होने के कारण खूब

खुले हाथ उड़ाते हैं। अन्ततः, वास्तविकता प्रकट होने पर मन ही मन विक्षुब्ध रहते हैं। वे समाज में फिट नहीं हो पाते।

एक गांव के पटवारी स्वयं ६० रु० प्रतिमास पा कर भी अपने इकलौते पुत्र को बड़े लाड-प्यार से रखते रहे। मैट्रिक तक लड़का सम्हला रहा और मोटा खान पान कर समुन्नत होता रहा। मैट्रिक के पश्चात् शहर के कालेज में पढ़ने के लिए भेजा गया। यहां उस ने एक साधारण सी कोठरी किराये पर ली और २० रु० प्रतिमास पर ही पढ़ता रहा। वातावरण में परिवर्तन हुआ। नई सोसाइटी, फैशन तथा सिनेमा मिले। लड़के की आवश्यकताएं बढ़ती गईं। वासनाएँ भड़क उठीं। २० रु० प्रतिमास स्थान पर २५ रु० फिर ४० रु० तक व्यय के लिए मंगवाये गए। शहर में रहने वाले संबन्धियों और मित्रों से ऋण लिया गया। अध्ययन नष्ट हो गया। उधर पिता बड़ी-बड़ी अशाएं लगाये रहा। एक दिन भंडाफोड़ हुआ।

यदि पिता बच्चे को घर की सच्ची स्थिति से परिचय पहिले ही करा दिया करें, तो अनेक कठिनाइयों से बचा जा सकता है। बच्चे में बनावटीपन दूर हो सकता है। सच्ची आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक स्थिति का यथार्थ ज्ञान प्रत्येक बच्चे को प्रारम्भ में ही करा दिया करें तो अस्वाभाविक जीवन, मिथ्या दिखावा और अपव्यय से उत्पन्न होने वाली अनेक कठिनाइयों से बचा जा सकता है।

यदि आप पिता हैं, तो बच्चों को अपनी आर्थिक शक्ति पर ही जीवन निर्वाह करना, वैसी ही आदतें निर्माण करना और व्यय करना अवश्य सिखला दीजिये। यदि आप पति हैं, तो पत्नी को अपनी आर्थिक स्थिति का ज्ञान करा दीजिए। उस पति

की दशा बड़ी चिन्ताजनक है जो अपनी वास्तविक स्थिति पत्नी से छिपाये रखता है और उस की अनुचित प्रार्थनाओं को पूर्ण करने के लिए ऋण लेता रहता है। वह पत्नी भी दया की पात्र है, जो पति की वास्तविक स्थिति न जान कर अस्वाभाविक, अनुचित और अपनी सामर्थ्य से ऊँची स्थिति दूसरों को दिखाने का अभिनय करती रहती है। यह बनावटी शान अधिक दिन नहीं चल पाती। अन्ततः, प्रतिष्ठा भी जाती रहती है।

दूकानदार, प्रायः, अन्य सम्पन्न दूकानदारों की देखी-देखी प्रतियोगिता में आ कर दूकानों की सजावट, बाह्य-प्रदर्शन, सौन्दर्य से अपव्यय करते हैं। जैसा दूसरे अधिक सम्पन्न व्यक्ति कार्य करते हैं, वैसा ही स्वयं भी करते हैं; स्वयं साधारण स्थिति के हो कर दूसरों की देखा-देखी खूब खुले हाथ खर्च करते हैं। अन्ततः, दिवाला निकाल देते हैं और पछताते हैं। यह बनावटी जीवन के दुष्परिणाम हैं।

समाज के प्रत्येक वर्ग, स्थिति और पेशे के व्यक्तियों में झूठा बनावटी जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति पाये जाते हैं। ये लोग एक ऐसे काल्पनिक मनो जगत् में निवास करते हैं, जिस में मिथ्या प्रदर्शन करने तथा दूसरे पर शान जमाने की भावना प्रमुख होती है। यह असत्यता कुछ दिन चलती रहती है, पर देर-सवेर संसार को उन की सत्यता का ज्ञान हो ही जाता है। यह बनावटीपन प्रकट होने पर मनुष्य को जो मन की व्यथा होती है, उसकी कल्पना भयावह है। मनुष्य को दूसरों के समक्ष प्रकट होने में गहरी आत्म-प्रवंचना, आत्मग्लानि की पीड़ा होती है।

सत्य में शाश्वत सौंदर्य है। गरीब हो कर भी जो व्यक्ति सच्चाई का जीवन व्यतीत करता है, वह चाहे कुछ काल के के लिए हेय समझा जाय, पर उस की उसी ग़रीबी में सौन्दर्य चमकने लगेगा।

जैसे आप वस्तुतः हैं, वैसा ही अपने आप को समाज के समक्ष प्रस्तुत कीजिए। बनावटी जीवन से दूर रह कर ही मनुष्य अपनी वास्तविक उन्नति का दृढ़ पग रख सकता है। कृत्रिमता की पोल में उन्नति अवरुद्ध हो जाती है। वह वास्तविकता के प्रकाश में धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगती है। इस धीमी प्रगति से डरने की अपेक्षा सच्चाई के जीवन की ओर बढ़ते रहना एक महत्त्वपूर्ण निश्चय है।

जीवन में जैसे आप हैं, वैसे ही रहकर जीवन में माधुर्य का समावेश करते चलिए। सच्चाई के जीवन में मनुष्य सर्वाधिक शान्ति का अनुभव करता है। कृत्रिमता के जीवन में जो असुविधा, प्रपंच और आत्मा को धोखा देना पड़ता है, वह मनुष्य को अस्त व्यस्त रखने वाला है। ऐसे व्यक्ति को सदैव यही भय रहता है कि कहीं उस के जीवन का खोखलापन प्रकट न हो जाय। इस प्रकार का जीवन एक प्रकार की चोरी है। इस चोरी से सदा सावधान रहें।

निष्कपटता से आप अपनी सच्ची वस्तु-स्थिति को दूसरों के सामने रखिये। यदि आप ईमानदार, सत्यनिष्ठ, अध्यवसायी और प्रतिभाशाली हैं, तो इस सचाई के कारण आप स्थायी रूप से चमकेंगे। कहानीकार प्रेमचन्द, रवीन्द्रनाथ, टाल्सटाय इत्यादि सचाई के जीवन के ज्वलन्त प्रतीक हैं। प्रेमचन्द ने ग़रीबी में रह कर सच्ची साहित्यिक साधना की है। कौन उसे विस्मृत कर सकता है? ऐसे सच्चे जीवन चिरकाल तक ज्योतिर्मय रहते

हैं। तुलसी, मीरा और सूरदास की सच्ची साधना कविता में बह निकली और उन्हें शाश्वत कवि बना गई। मानव को उस के भीतरी खजाने—उस की नेकी से, उसकी सचाई से उस की हिम्मत से, उस के मानव प्रेम से परखो। असली मानव बनावट में नहीं मिलता।

सत्यता का जीवन निष्कंटक है। यह मार्ग यश और प्रतिष्ठा का है। हमारा जीवन एक खुली पुस्तक की तरह होना चाहिए, जिस का प्रत्येक शब्द और पंक्ति पढ़ी जा सके, जिस में दुराव-छिपाव न हो, जिस में बाह्याडम्बर न हो।

अनेक जिज्ञासु आत्म-मार्ग में तो प्रवृत्त होते हैं, किन्तु स्वयं अपने ही साथ पाखंड का व्यवहार करते हैं। उन के भीतर जो कुछ है, बाह्य-प्रदर्शन उस से सर्वथा भिन्न रहता है। मथुरा, वृन्दावन, हरिद्वार आदि पवित्र स्थानों में अनेक साधु महात्मा जैसे दीखने वाले व्यक्ति अन्दर ही अन्दर पापाचरण की दुष्प्रवृत्ति लिये बगुला भगत बने बैठे रहते हैं। जिस स्थान पर स्त्रियाँ स्नान करती हैं, प्रायः वहीं ये दुराचारी लोग एकत्रित रहते हैं। गन्दी पुस्तकें पढ़ते, निन्द्य दृश्यों को देखते, तथा गुप्त मन में अनेक पापमय वासनाएँ पाले रहते हैं। ये अवसर की प्रतीक्षा में रहते हैं, तथा अवसर देखते ही अपने वास्तविक गन्दे मन्तव्यों को प्रकट कर देते हैं। साधु महात्माओं तथा ज्ञानियों का बाना आज मिथ्याचार का एक साधन बन गया है।

बाह्य रूप से ज्ञानियों जैसा बाना पहिन कर आन्तरिक दृष्टि से मिथ्याचार करना आध्यात्मिक जगत् का सब से बड़ा पाप है। इस प्रकार की दूषित प्रवृत्ति वाला व्यक्ति यह समझता है कि वह संसार को धोखा दे रहा है। वास्तव में संसार धोखा

नहीं खाता और वह उस के गंदे भाव को समझता है। जो व्यक्ति ऐसा करते हैं; वे स्वयं अपने-आप को धोखा देते हैं। परमेश्वर से आप का कोई व्यवहार, आन्तरिक भाव नहीं छिप सकता।

बहुत ज्ञानवान् हो कर भी आचरण में पाखण्ड का व्यवहार करने से कभी आत्म-संतोष प्राप्त नहीं हो सकता। यह मिथ्याचार है। मिथ्याचार से आत्मा की ध्वनि सदैव मनुष्य को आन्तरिक कष्ट दिया करती है। ऐसा दुराचारी आत्म-ग्लानि के हजारों बिच्छुओं के काटे हुए व्यक्ति के समान पीडित रहता है।

आत्म-जीवन भीतर बाहर सर्वत्र एक सा होना चाहिए। उस में मिथ्याचार के लिए कहीं भी स्थान नहीं है। प्रत्येक आध्यात्मिक पुरुष का जीवन एक खुली पुस्तक होना चाहिए, जिस का एक एक पृष्ठ जनता और समाज के समक्ष खुला हुआ हो; जिस की प्रत्येक पंक्ति पढ़ी जा सके; जिस का प्रत्येक भाव, विचार, योजना, गति दर्पण के समान सुस्पष्ट हो।

अपनी आत्मा से मिथ्याचार सब से गर्हित डकैती है। यह वह डकैती है, जिस में डकैत स्वयं मन ही मन उद्विग्न रहता है। उसे कभी तृप्ति नहीं होती।

अतएव यह निश्चय कीजिए कि "यदन्तरं तद् बाह्यं, यद् बाह्यं तदन्तरम्" अर्थात् जो मेरी भीतरी वृत्ति है, उसे बाहर जगत् में व्यवहार में प्रकाशित करूंगा। और भीतर बाहर प्रदर्शक के समान शुद्ध हो कर आत्म प्रदर्शन करूंगा। मेरा जैसा भव्य स्वरूप बाहर से होगा, उस से भी श्रेष्ठ, पवित्र स्वरूप अन्दर से रहेगा। मैं यदि बाहर से सभ्य, ज्ञानवान्, विद्वान्, प्रतिष्ठित

हूँ, तो आन्तरिक दृष्टि से सदैव निरपेक्ष भाव से शुचि या पवित्र आचरण रखूँगा। मेरे मन की वृत्ति समतोल रहेगी जिस से इहलोक तथा परलोक में मैं बन्धनों से मुक्त रह सकूं। मेरे व्यवहार, बोलचाल, आन्तरिक दृष्टि से आध्यात्मिक ही रहेंगे।

जो व्यक्ति यह समझता है कि "परमात्मा मुझे सदा देखता है, जहाँ मैं हूँ वहाँ परमात्मा है, जहाँ परमात्मा है, वहाँ मैं हूँ। मेरा जीवन तथा व्यवहार दिव्य प्रबन्ध से सुव्यवस्थित है।" वह कभी अपने और अपनी आत्मा के बीच मिथ्या व्यवहार नहीं करता है। वह न किसी के लिए मिथ्या सोचता है, न वैसा व्यवहार ही करता है। उसका मन, सत्य और शिव संकल्पमय है।

संदेह की भयंकरता

जिसे सन्देह है, उसे कहीं भी ठिकाना नहीं। उसका नाश निश्चित है। वह रास्ते चलता हुआ भी नहीं चलता है, क्योंकि वह जानता ही नहीं कि मैं कहाँ हूँ ! —गांधी

[१]

दूसरे के चरित्र पर झूठा सन्देह कर हम उसे गंदगी की ओर खींचते हैं। सन्देह करना सारी बुराइयों की जड़ है और अच्छों को भी बुरा बना देता है। संदेह के स्वभाव वाला आदमी सदा सतर्क रहता है। यह सतर्कता सीमा से बाहर हो कर दूसरों का जीवन नष्ट करने में सहायक होती है।

श्रीमती सावित्री निगम ने एक वेश्या के पतन की कहानी स्वयं उस के मुख से सुनी। उसमें वेश्या ने उन्हें बताया, "भूलें प्रायः, धोखे और मजबूरी में पड़ कर होती हैं। जो जान-बूझ कर की जाती हैं, उन के लिए करने वाले को ही पछतावा हो जाता है, फिर उसे उस अज्ञान के लिए कुछ कहना कठोरता ही नहीं हृदय-हीनता भी है। ···हम हजारों चरित्रवान् स्त्रियों को सन्देह के कारण बर्बाद करते हैं। वे बदनाम हो जाती हैं। हम उन पर अविश्वास करते हैं। परिणाम यह होता है कि दुनिया वाले उन्हें गिराने के लिए तैयार हो जाते हैं और उनका पतन हो जाता है।"

"हाँ, आप ठीक कहती हैं। यही सन्देह सारी बुराइयों की जड़ है और अच्छों को भी बुरा बना देती है। न जाने कितने अच्छों को ये संदेह बर्बाद कर देते हैं !"

मैंने बीच में ही बात काट कर कहा—"बर्बाद या यों कहो खात्मा ही कर देते हैं। सन्देहों की दलदल में फँसा हुआ आदमी मनुष्य से पशु बन जाता है। हजारों सीता, पद्मिनी इन्हीं की शिकार हो कर रानी से भिखारिनी बनी हैं।"

इस उद्धरण में एक ऐसी व्यथित आत्मा की पुकार है जो झूठे सन्देहों के कारण पतिता बनी। यह सन्देह की भयङ्करता को स्पष्ट कर देती है। आइये, इस पर गहराई से विचार करें।

[२]

मनोविज्ञान के अन्तर्गत संकेत या सजेशन एक बड़ी प्रभावशालिनी शक्ति है। "संकेत करना" का तात्पर्य है, दूसरे को कुछ सुझाना, उस के मन में कोई नया विचार, (अच्छा या बुरा) प्रविष्ट कराना। पुनः पुनः संकेत कर हम किसी भी व्यक्ति को ऊँचा खींचते हैं अथवा नीचे गिराते हैं। हम जैसा किसी को बार-बार कहते रहते हैं, या चरित्र के विषय में जैसी धारणा बना लेते हैं, उस धारणा या विचार का अलक्षित मनोवैज्ञानिक प्रभाव गुप्त रूप से दूसरे के निर्बल मन पर निरन्तर पड़ता रहता है। जिन शब्दों को किसी के विषय में बार-बार उच्चारण किया जाता है, उन संकेतों का प्रभाव धीरे-धीरे चरित्र पर पड़ कर वह वैसा ही बन जाता है। संकेत हमारा चरित्र निर्माण करते हैं।

यदि आप किसी के विषय में उत्तम, उत्साहवर्धक विश्वास को दृढ करने वाले वचनों का उच्चारण करते हैं, तो उस व्यक्ति में साहस, धैर्य, बल, प्रेम, विश्वास आदि उत्तम गुणों का विकास होता है; किन्तु यदि आप किसी को सन्देह से देखते हैं, वह जो कहता है या करता है और उस में सदा

गंदगी और अविश्वास प्रदर्शित करते हैं, तो कालान्तर में वह व्यक्ति झूठ-फरेब और बेईमानी को अपने चरित्र के साथ संयुक्त कर लेता है। जिस व्यक्ति को बार-बार झूठा होने, दगा करने, बेईमानी करने, दुश्चरित्र होने, छल कपट में लिप्त रहने के असंख्य संकेत दिये जायेंगे, कालान्तर में इन बुरे संकेतों का फल उस के चरित्र में प्रकट हो जायगा। वह स्वयं पतन के मार्ग पर पड़ जायगा। उसे बुरे संकेत दिये गये हैं, जिन का प्रतिरोध उसका कोमल मन नहीं कर सका। यदि उसकी इच्छा शक्ति दृढ होती, तो सम्भवतः वह इन विपरीत संकेतों से प्रभावित न होता। पर चूंकि उस का चरित्र निर्माण हो रहा है, मस्तिष्क बन रहा है, कच्चे घड़े के समान कोमल है, फलतः जिधर को उसे झुकाया जायगा, वह स्वतः उधर ही झुकने लगेगा।

सन्देह का शिकार व्यक्ति प्रायः मन में सोचता है, "लोग मेरे चरित्र पर संदेह करते हैं। मैं दुनिया वालों की दृष्टि में गिर चुका हूँ, तो क्यों न उसका आनन्द लूं? दुनिया मुझे बुरा-बुरा कहती है, तो क्यों न बुरा बन कर मजा लूं? दुनिया को दिखा दूंगा कि बुरा बन कर भी प्रसिद्ध हो सकता हूँ। रावण, कंस, दुर्योधन बुरे थे, पर प्रसिद्ध थे। मैं बुरा बन कर प्रसिद्ध बनूंगा। दुनिया से, उन के द्वारा मेरे प्रति किए गए, दुर्व्यवहार, घृणा और दुष्टता का बदला लूंगा।"

अपराधी मन निरन्तर अपने आप को अपराध और पाप के द्वारा प्रसिद्ध करने, अपने "अहं" को सन्तुष्ट करने के स्वप्न देखा करता है। वह "अहं" को संतुष्ट करने के लिए चोरियाँ,

डकैतियां, हत्या और लूटमार करता है। गुप्त रूप से वह चाहता है कि संसार का ध्यान उस के महत्त्व की ओर आकृष्ट हो। लोग उसे भी अपनी कला में सर्वोच्च समझें।

[३]

तेईस वर्ष पूर्व की एक घटना मेरे मानस-पटल पर उभर रही है। कक्षा ७ के हम सब विद्यार्थियों में एक हट्टा-कट्टा शरारती विद्यार्थी था। नाम था, वेदपाल। स्कूल में आने के लिये मार्ग में एक बाग़ पड़ता था। बालबुद्धि की चपलता प्रसिद्ध है। वेदपाल अपने दो-चार साथियों के साथ फल तोड़ता। कभी पेड़ की डालियां टूट जातीं। कच्चे फल डाल पर न रहते। वेदपाल की शिकायत मुख्याध्यापक के पास आई। उसे डांटा गया, अर्थदण्ड भी हुआ। कक्षा के विद्यार्थियों की दृष्टि में वह गिर गया।

अब स्थिति यह थी कि जब कक्षा में अपराध कोई करे तो पहले सन्देह वेदपाल पर किया जाये। घर से काम न कर के लाने वालों में पहले शंका वेदपाल पर। कक्षा में किसी की पुस्तक गुम हो जाय, तो उसी पर सन्देह। वही अपराधी। सन्देह होते-होते वेदपाल का मन विद्रोह कर उठा। अब उस की समस्त मानसिक शक्ति शरारत में ही लगती। संयोग से उन्हीं दिनों बोर्डिंग हाउस के सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब के यहाँ चोरी हुई। होस्टल में चोरी! शक फिर वेदपाल पर गया। जाँच की गई तो शक ठीक निकला और वेदपाल को सज़ा हो गई। कालेज से नाम कट गया। सज़ा के बाद जब वेदपाल छूट कर आया, तो उस में अजब काया-पलट हो गई थी। देखने में

डरावना, लाल आंखें, खूंखार, शरीर से मजबूत। कुछ दिनों में उस ने अपना डाकू दल तैयार किया और देखते-देखते वह डाकू बन गया। आज यहां, तो कल वहाँ चोरी डाका। शहर कांप उठा। अनेक चोरियों-डकैतियों के पश्चात् दोबारा जेल गया। विद्यार्थी वेदपाल डाकू वेदपाल के नाम से विख्यात हो गया। उस के पिता थे एक प्रतिष्ठित डाक्टर। घर में रुपये पैसे की कमी नहीं। केवल सन्देह के कारण उस का मन कुपथ पर लगा और पतन का कारण बना।

सात-आठ वर्ष पश्चात् जब पुनः वेदपाल आया तो मन में दुःखी, एक गम्भीर वेदना लिए। एक बार मिला, तो मन में आत्म-ग्लानि थी। "मैं वैसा नहीं था, मित्र! इस रोज-रोज के शक-शुबे के ताने, इन व्यंग्य बाणों ने मुझे ऐसा बनाया था। मैं क्या करूँ? मजबूर था। अध्यापक के उस व्यवहार से मैं तंग आ गया था।"

"तुम में अपूर्व साहस है; शरीर में बल है; चरित्र में नेतृत्व के अनेक गुण हैं। यदि तुम मिलटरी में जाते, तो आज किसी उच्च नायक के पद पर होते। अखबारों में तुम्हारा नाम बड़े-बड़े अक्षरों में छपता। सच मानो, वेदपाल मेरे अच्छे मित्र! तुम सेना में भरती हो जाओ। तुम्हारा नाम होगा।"

मेरा संकेत काम कर गया। वेदपाल सेना में भरती हो गया। कुछ वर्ष पूर्व मुझे सूचना मिली थी कि वह एक उच्च सैनिक पदाधिकारी है। उस में नेतृत्व के जो गुण थे, वे पनप उठे थे। विश्वास और प्रेम से सने संकेतों ने उसका जीवन एक नई दिशा में लगा दिया था।

जो सन्देह से चलता है उसे कुटिलता, वेईमानी, गंदगी, खराबी, धोखेवाजी, नैतिक पतन मिलते हैं। जो उसे प्रेम और विश्वास से भरे दूसरों पर संकेत देता है, वह उन्हें उबारता है। प्रतिष्ठित जीवन के लिए विश्वास और प्रेम दो आवश्यक तत्व हैं। दैनिक जीवन में इन का जादू स्वयं प्रयोग कर देखा जा सकता है।

[४]

जब कभी आप दूसरे के चरित्र या मन्तव्य पर सन्देह करें, तो पर्याप्त विचार कर लीजिए। शक-शुबे के अनेक उदाहरणों के पश्चात् ही किसी निष्कर्ष पर आइये। निष्कर्ष के वाद भी सन्देह दूर कर भ्रांति से वचिए। उत्तेजना या आवेश में आकर सम्भव है, आप ऐसा दुष्कृत कर वैठें, जिस पर जीवन पर्य्यन्त पश्चात्ताप करते रहें।

क्या आप जादू-टोना, योग, तन्त्र-मन्त्र में विश्वास करते हैं? यदि "हाँ", तो स्मरण रखिए, यह आपका अन्धविश्वास है। आप अपने चरित्र एवं निश्चय को संदेह से देख कर जीवन-शक्ति पंगु कर रहे हैं। स्वयं अपने चरित्र, स्वभाव, शक्तियों के प्रति सन्देह उत्पन्न कर आप अपनी मानसिक एवं शारीरिक शक्तियाँ क्षीण कर रहे हैं। यदि कोई आप पर अनुचित शक करे, तो स्पष्ट रूप से उसकी उक्ति अस्वीकार कर दीजिए। मिथ्या आरोपों से अपने अन्तःकरण को कदापि प्रभावित न होने दीजिए। यदि आप को अपने कृत्य पर आत्मग्लानि है, तो क्षमा-याचना कर लीजिए।

क्या विगत जीवन के प्रति आप के मन में बहुतों के लिए शिकवा-शिकायतें हैं? इन्हें दूर कर देने में ही लाभ है।

विगत घटनाओं से प्रभावित होकर जीवन को कण्टकमय मत बनाइये।

क्या आप यह सन्देह करते हैं कि दूसरे आपका मजाक उड़ाते, मिथ्या आलोचनाएँ या चुगली करते रहते हैं? यह प्रवृत्ति भी मन से दूर कीजिए। यदि आप दूसरों की सचाई पर सन्देह करते रहेंगे, तो स्वयं आप की प्रेरणा से, सम्भव है, यह दुष्प्रवृत्ति उनके मन में जागृत हो उठे। संसार एक प्रकार का दर्पण है। इस में हम अपनी परछाईं ही देखते हैं। जैसी स्वयं हमारे मन में भावनाएँ हैं वैसा ही हमारा संसार भी है। यदि आप किसी के प्रति, स्वयं अपने या दूसरों के प्रति भी संदेह दिखाएँगे, तो लाभ के स्थान पर हानि की ही अधिक संभावना है। संदेह को फ़ौरन खोलिए, अपना मत कहिए, दूसरे का सुनिये, संदेह का अन्धकार होते ही आप के मन का तनाव दूर हो जायगा।

शक्की स्वभाव से सावधान रहिए।

ठण्डे मस्तिष्क से काम किया करें

ठण्डा मस्तिष्क मनुष्य की बहुमूल्य देन है। जिस व्यक्ति ने ठण्डे मस्तिष्क से जीवन की नाना विषम समस्याओं पर विचार करने के स्वभाव का विकास किया है, वह संकट, विपत्ति या उत्तेजना के उद्दीप्त क्षणों में, जीवन के प्रत्येक मोर्चे पर सफल होता रहेगा।

एक महान साहित्यिक ने वर्षों दिन-रात घोर मानसिक परिश्रम कर एक महत्त्वपूर्ण मौलिक ग्रन्थ-रत्न की रचना की थी। इसे वह अपने जीवन की सब से मूल्यवान् वस्तु समझते थे। संयोग से एक दिन पुस्तक को मेज पर खुली रख लैम्प जलता छोड़ किसी आवश्यक काम से बाहर गये। थोड़ी देर के पश्चात् लौटे तो क्या देखते हैं कि कुत्ते ने लैम्प पुस्तक पर गिरा दिया है और वह जल कर राख हो चुकी है। वह स्तब्ध हो गये। उन के इतने वर्षों के परिश्रम का यह दुष्परिणाम! अन्य कोई उग्रबुद्धि या उत्तेजक स्वभाववाला व्यक्ति होता, तो क्रोध के आवेश में पागल हो जाता। किन्तु उन्हों ने इतना कहा, "श्वान! तुम नहीं जानते, मेरी कितनी भारी क्षति की है!" इन के ठण्डे मस्तिष्क ने उन्हें पागलपन और निराशा से बचाया। उन्होंने पुनः सतत परिश्रम एवं दीर्घकाल की साधना से उस ग्रन्थ-रत्न को स्मृति से लिख दिया।

एक व्यक्ति ने एक नेवला पाला। नेवला बड़ा स्वामि-भक्त और विश्वास-पात्र था। एक दिन घर का मालिक अपने छोटे बच्चे को खाट पर सुला कर नेवले को रक्षक बना किसी

आवश्यक कार्य से बाहर गया। ऐसा प्रायः वह किया ही करता था। जब वापस लौटा तो दरवाजे पर नेवले को देखा किन्तु उसका मुँह रक्त से सना हुआ था। "इस ने मेरे बच्चे को मार डाला है। उसी का रक्त इस के मुँह पर लगा हुआ है।" यह कुकल्पना मन में आते ही गृह-स्वामी का मस्तिष्क गर्म हो उठा। उस ने तत्काल लाठी से नेवले को मार डाला। जब अन्दर आया तो देखा, बच्चा निश्चिन्त सो रहा है। पर चारपाई के नीचे एक काला सर्प टुकड़े-टुकड़े हो कर पड़ा है। उसे मालूम हुआ कि स्वामि-भक्त नेवले ने सर्प से लड़ कर बच्चे की रक्षा की थी। उसे अपने मस्तिष्क की गर्मी एवं शीघ्रकारिता पर बड़ा खेद हुआ। यह पुरानी कहानी गर्म मस्तिष्क वालों के लिए गहरे मर्म से परिपूर्ण है।

"ठण्डा दिमाग" का तात्पर्य है—शान्ति, स्थिर चित्त से सोचने, निर्णय करने की शक्ति, मन को सन्तुलित रखने की आदत, विवेक बुद्धि को सदा सर्वदा जागरूक रख कर जीवन में प्रविष्ट होने की प्रवृत्ति। वास्तव में शान्त चित्त से निर्णय करना जीवन में बड़ा उपयोगी है। बड़े-बड़े राष्ट्रों के मामलों को देखिये, बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ कितना सोच विचार कर निर्णय करते हैं। शीघ्रकारिता या क्षणिक उत्तेजना अथवा आवेश में कोई कुछ नहीं करता।

सरकारी अदालतों में मारपीट, खून, चोरी इत्यादि के अनेक मुकदमे नित्य पहुँचते हैं। लड़ने-झगड़ने वाले चाहते हैं कि निर्णय जल्दी से जल्दी हो, किन्तु फैसला दो तीन वर्ष में होता है। तब तक दोनों झगड़नेवालों के मस्तिष्क ठण्डे हो लेते हैं और सम्भव है वे अपनी गलती भी अनुभव करते हों।

यदि तुरन्त फैसले होने लगें, तो तनाव और अपराध और भी अधिक बढ़ते रहें। कानून की शरण लेने का सब से बड़ा लाभ यही है कि यह गर्म मस्तिष्क को धीरे-धीरे ठण्डा कर देता है। एक स्थिति ऐसी आती है जब व्यक्ति स्वयं ईमानदारी से सोच कर निर्णय करने के पक्ष में हो जाता है और आपसी समझौता हो जाता है।

आप ठण्डा मस्तिष्क रखा करें, तो मन में आने वाली क्षणिक उत्तेजना, घबराहट, विक्षोभ, आत्म-ग्लानि और निराशा से बच सकते हैं। क्षणिक भावावेश में मनुष्य का विवेक पंगु हो जाता है; बुद्धि पर भावना का पर्दा छा जाता है और इच्छा शक्ति-पंगु सी हो जाती है। गर्म मस्तिष्क का व्यक्ति ऐसे आवेश में दूसरों का सिर फोड़ेगा, क्रोध करेगा, हत्या कर बैठेगा या आत्मग्लानि का शिकार हो कर आत्महत्या करने से न चूकेगा। गर्म दिमाग चिड़चिड़ा अस्थिर और उत्तेजक होता है। उसे आवेश में उचित-अनुचित का विवेक तक नहीं रहता। ऐसे व्यक्ति सब से रूठे हुए, खिन्न मन, संकुचित दृष्टिकोण और विचित्र स्वभाव वाले होते हैं।

ठण्डे मस्तिष्क वाले व्यक्ति में दो अमोघ गुण होते हैं। मानसिक संतुलन एवं विवेक की स्थिरता। ऐसा व्यक्ति दूरदर्शी और संयमी होता है, और व्यर्थ के छोटे-मोटे झगड़ों, शिकायतों या झंझटों में नहीं उलझता। वह गलतफहमी में नहीं फँसता। जहां दूसरे के दृष्टिकोण को सहानुभूतिपूर्वक सुनने-समझने की वृत्ति है, जहाँ जल्दबाजी पिशाचिनी नहीं है, जो दूसरों से ऊबता या चिढ़ता नहीं है वह भ्रान्ति में नहीं पड़ सकता।

ठण्डा मस्तिष्क आप की आन्तरिक शान्ति, सुचारुता, नियन्त्रण एवं क्रमानुसार काम करने की अच्छी आदतों का द्योतक है।

एक मनोवैज्ञानिक ने लिखा है कि ठण्डे मस्तिष्क का सब से बड़ा लाभ यह है कि हमारे सारे दिन के नाना जटिल कार्य सुचारुता से सम्पन्न हो जाते हैं, उन में कोई गलती नहीं रहती, मन सन्तुष्ट रहता है और रात्रि में सुख-सन्तोषमयी निद्रा का आनन्द आता है।

वास्तव में ठण्डा मस्तिष्क तथा मीठी नींद—इन दोनों में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। वही व्यक्ति शान्तिमय निद्रा का आनन्द लूटता है जो निश्चिन्त मन, बिना तनाव वाले रक्तकोष, बेकार के अनर्थकारी विचार और अनर्थकारी कल्पनाओं से मुक्त मस्तिष्क ले कर रात्रि में शय्या ग्रहण करता है। मस्तिष्क पर अनावश्यक मानसिक भार डालने से भयंकर स्वप्न और टूटी-फूटी निद्रा आती है।

जब आप क्रोध की उत्तेजना में पागल-से हो रहे हों, तो ठण्डे मस्तिष्क से काम कीजिए। उत्तेजना के शान्त होने पर आप देखेंगे कि आप ऐसा कार्य करने चले थे, जिस पर, अन्ततः, आप को पछताना पड़ता। आवेश में विवेक-बुद्धि दब जाती है और उचित-अनुचित का ज्ञान नहीं रह जाता।

जब आप निराशा के पोच विचारों से ढके हुए हों, तो मस्तिष्क को शान्त एवं निर्मल कीजिए। कुछ समय के लिए उस कार्य को छोड़ कर कोई नवीन कार्य हाथ में लीजिए। स्वल्पाहार कर जलपान कर लीजिए। मन में ताजगी आने पर पुनः नवीन रीति से अपने जीवन की जटिलताओं पर विचार

कीजिए। शान्त चित्त से विचार करने पर अवश्य आप कोई नया हल ढूंढ निकालेंगे।

जब आप व्यापार में घाटा, पुत्र का परीक्षा में असफल होना, किसी हितैषी की मृत्यु, घर में चोरी या अन्य किसी आकस्मिक विपत्ति से त्रस्त हो रहे हों, तो धैर्य से काम कीजिए और मन को ठण्डा हो लेने दीजिए। ठण्डे मस्तिष्क में उच्च विचार और विवेक पूर्णरूप से कार्य करते हैं और नए-नए हल निकल आते हैं।

जब आप किसी सम्बन्धी के दुर्व्यवहार से खिन्न हों तो जल्दी से अपना मनुष्यत्व न खो बैठिये, वरन् निष्पक्षता से विचार कीजिए। सम्भव है आप स्वयं ही गलती पर हों। मान लीजिए दूसरा ही भूल में है। फिर आप क्या करें? उसका मस्तिष्क ठण्डा होने दीजिए। विवेक बुद्धि जागृत होने पर वह स्वयं अपनी दुर्बलता पर ग्लानि का अनुभव करेगा।

मस्तिष्क की उद्विग्नता एक अति मानवीय स्थिति है। मनुष्य पशुत्व की निम्न कोटि पर सरक आता है। अतः इस मनःस्थिति में किया हुआ कार्य सदा त्रुटि-पूर्ण होता है।

प्रेम सम्बन्धों को काटने की कैंची

लेन-देन देखने में कितना अच्छा और हितकर रिवाज लगता है। किसी के यहाँ खुशी का अवसर है, आप अपनी ओर से कुछ प्रेमोपहार देते हैं। लेनेवाले को हर्ष होता है। वह सोचता है कि आप उसके मित्र हैं, सुहृद् हैं, सच्चे हितैषी हैं। त्यौहारों पर मिठाई, विवाह के अवसरों पर वस्त्र एवं रुपये, जन्म पर नाना वस्तुएं, वर्षगांठ पर बधाई की अनेक योजनाएं आप नित्य कार्यान्वित किया करते हैं। पर वास्तव में लेन-देन अनेक झगड़ों का मूल है।

हमारे एक निकट सम्बन्धी की आपबीती सुन लीजिये। उनकी पुत्री के जन्मोत्सव पर उनकी पत्नी की सहेली ने कुछ वस्त्र भेंट किये। पत्नी प्रसन्न हुई। वे वस्त्र बड़े उत्साह से छोटे बच्चे को पहनाये गए।

कुछ मास पश्चात् इस सहेली के पुत्री हुई। यह आवश्यक था कि मित्र की पत्नी इस शुभ अवसर पर वस्त्रों का उपहार देती। उन्हों ने बड़े प्रेम से वस्त्र बनवाये और भेंट किये। लेकिन यह क्या? सहेली को वे पसन्द न आये। वे बोल उठीं, "मैंने सब वस्त्र रेशम के दिये थे और मुझे सूती दिये गये। क्या मैं इस योग्य नहीं कि मेरी पुत्री रेशम पहने।" बस तनातनी ठन गई। दोनों में बोल-चाल बन्द। फिर घर आना-जाना भी बन्द। अन्ततः, मित्रता बिलकुल टूट गई।

सोच कर देखिये, यदि यह व्यर्थ सभ्यता का ढोंग दोनों के मध्य में न होता और लेन-देन में पारस्परिक प्रतियोगिता की भावना न होती, तो मित्रता क्यों टूटती।

आशा करता है। यदि आप किसी से एक वस्तु उधार लेते हैं, तो कल को वह आप से दो वस्तुएं लेने की इच्छा करेगा। आप न दे सकेंगे, तो मन-मुटाव होगा। प्रेम कटुता में बदल जायगा।

रुपये का लेन-देन सब से अनर्थकारी है। मित्र को रुपया ऋण पर देना मानो उस की मित्रता की जड़ खोद डालना है। न आप उस से अपना वापस मांग सकते हैं, न रुपया बिना लिए छोड़ ही सकते हैं। एक विचित्र उलझन में आप पड़ जाते हैं। एक तो स्वयं अपना रुपया वापस मांगते हुए आपको लज्जा आती है, दूसरे मित्र अपने जाने-पहिचाने का रुपया होने के कारण उसे यथासमय लौटाने के इच्छुक नहीं होते।

वे व्यापार ठप्प होते हैं जिन में उधार देने की प्रवृत्ति अधिक होती है। नियम यही है जिस के पास एक बार अधिक रुपया कर्ज बढ़ जाता है वह उसे लौटाना नहीं चाहता। दूसरी दूकान से खरीदना प्रारम्भ कर देता है। ग्राहक और रुपया दोनों ही चले जाते हैं।

पुत्र तथा पुत्री में क्या अन्तर है? दोनों एक ही माता-पिता की सन्तानें हैं, उतने ही श्रम से उनका पालन-पोषण, शिक्षण और विवाह इत्यादि हुए हैं। क्या कारण है कि विवाहित पुत्री को घर बुलाते हुए माता-पिता सकुचाते हैं?

कारण लेन-देन का विषम प्रश्न है। हमारे समाज की त्रुटि-पूर्ण रचना कुछ इस प्रकार की है कि पिता को विवाह के पश्चात् भी प्रत्येक बार पुत्री को कुछ वस्त्र, आभूषण, रुपये तथा अन्य छोटा-मोटा सामान देना ही पड़ता है। बीसियों ऐसे अवसर आते हैं जिन पर देना ही देना रहता है। पुत्री जब कभी आती है मन ही मन पिता से कुछ लेने की गुप्त आकांक्षा

चाहते हैं। धीरे-धीरे व्यापार ठप्प हो जाता है और पूंजी मारी जाती है।

लेन-देन में 'देन' अर्थात् देना कठिन और श्रम-साध्य है। मनुष्य की यह प्रवृत्ति है कि उस के अधिकार में जो थोड़ी बहुत वस्तु आ जाती है, चाहे वह उधार मांगी हुई पुस्तक, थर्मामीटर, फर्नीचर, दरी, बरतन, सीढ़ी या फाउन्टेनपेन ही क्यों न हो, उसे उस वस्तु के प्रति एक कच्चा सा मोह हो जाता है। वह उस से पृथक् नहीं होना चाहता। वापस देते हुए उसका मोह जोर मारता है। अतः वह वस्तु को वापिस करना टालता रहता है। एक दिन, दो दिन, सप्ताह, मास निकलते जाते हैं। जब दूसरे की पुनः-पुनः मांग आती है, तब भी उसकी मोह-निद्रा भंग नहीं होती। साधारण मांग का किंचिन् भी ध्यान नहीं किया जाता। अधिक बार मांग करने से वस्तु तो वापस आ जाती है (चाहे टूट-फूट कर ही सही) किन्तु प्रेम-सम्बन्ध टूट जाता है।

शुद्ध प्रेम लेन-देन पर आधारित नहीं होता। लेन-देन की प्रवृत्ति सांसारिकता है, कोरा दिखावा मात्र है। जहां लेन-देन की कृत्रिमता है, वहां निर्मल प्रेम कैसे निर्भर रह सकता है?

लेन-देन कीजिए, पर अपने बुद्धि-विवेक को साथ रखिये। इस दिशा में अति करना आप के सम्बन्धियों के लिए हानिकर हो सकता है।

कठिनाइयों की जटिल गुत्थियों को सुलझा डालिये

विलासता (अकर्मण्यता) नहीं, प्रत्युत सतत प्रयत्न; सुभीता नहीं, वरन् कठिनता मनुष्य के चरित्र को बनाती है। जिस प्रकार कलाकार पत्थर को काट-काट कर तराशता है और गढ़ कर उस पत्थर से एक सजीव-सी प्रतिमा का निर्माण करता है, उसी प्रकार कठिनाइयों की सख्त चोटों से मानव चरित्र-रूपी पत्थर गढ़ा जाता है। जितनी अधिक चोट पड़ती है, उतना ही दृढ़ चरित्र निर्मित होता है। जिन पर कठिनाइयों की चोटें नहीं पड़तीं वे अविकसित, अपूर्ण और अपरिपक्व रह जाते हैं। कदाचित् ही कोई ऐसा महान् चरित्र हो जो महलों के गुदगुदे गद्दों, आराम-तलबी या विलास के वातावरण में उत्पन्न हुआ हो। अभाव के कंकरों, पत्थरों और कठिनाइयों के हथौड़ों में कुट-पिस कर जो चरित्र बने हैं, उन्हीं ने बड़े-बड़े शासनों की बागडोर सम्हाली है। महाराणा प्रताप का जीवन पग-पग पर कठिनाइयों और अभावों के कांटों से जकड़ा हुआ था। शिवाजी को पर्वत-पर्वत की खाक छानने में कठिनता से सुख-शान्ति के दो क्षण प्राप्त होते थे। भगवान् राम का वनवास का जीवन कठिनाइयों की एक पाठशाला थी। राजा हरिश्चन्द्र की भयानक दीक्षा कठिनाइयों पर विजय की ही परीक्षा थी। कठिनाइयां हमारी सब से बड़ी शिक्षकाएं हैं।

भूल करके सुधारने वाले व्यक्ति का अनुभव ठोस होता है। अतः वह अधिक विश्वस्त है। जिस व्यक्ति ने प्रलोभन के

सामने परीक्षा नहीं दी है और उसे जीता नहीं है, वह विश्वस्त किस प्रकार हो सकता है? न जाने कब किस रूप में प्रलोभन आ कर उस के विवेक को दबा ले। चार्ल्स जेम्स फैक्स प्रायः कहा करते थे कि उन्हें उस व्यक्ति से अधिक अच्छे और खरे कार्य की आशा है जो एक बार असफल होकर उसकी कड़वाहट को चख चुका है, अथवा जो अनेक असफलताओं के होने पर निरन्तर अग्रसर होता रहा है।

हम असफलता और कठिनाई से अपना सच्चा और ठोस ज्ञान संचय करते हैं। सफलता में हम अपनी छोटी-मोटी त्रुटियों के प्रति प्रमादी हो जाते हैं। कठिनाई हमारी निर्बलताओं को उजागर कर देती है।

संसार की महान् वस्तुएँ, महान् विचार, अनुसंधान, आविष्कार, प्रयोग, महान् पुस्तकों का निर्माण कठिनाइयों के काँटों पर लगे हुए सुगन्धित सजीले पुष्प हैं। कितनी अवसाद-पूर्ण रातों के कठोर परिश्रम के पश्चात् आशा का फूल खिलता है, इसे भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकता है। यह बात सत्य है कि पराजय द्वारा ही विजय की अपेक्षा सेनानायक और जनरल की परीक्षा होती है। वाशिंगटन ने जीतने से पूर्व अनेक युद्धों में कटु पराजय पाई थी, किन्तु अन्ततः वे विजयी हुए थे। रोमन जाति ने सदा पराजय से ही प्रारम्भ कर बड़े बड़े युद्धों में सफलता प्राप्त की थी।

आवश्यकता एक कठोर और निर्मम अध्यापिका है, किन्तु यही सर्वश्रेष्ठ है। यद्यपि कठिनाई की कड़ुवाहट से हम स्वभावतः

दूर भागते हैं किन्तु जब आ जाय तो उसका वीरता और पौरुष से सामना करना ही श्रेष्ठ है।

मनुष्य का आध्यात्मिक विकास सदा कठिनाइयों से लड़ते रहने से होता है। जो व्यक्ति जितना ही कठिनाइयों से भागता है, उतना ही अपने आपको निकम्मा बनाता है और जो उन्हें जितना ही आमंत्रित करता है, वह अपने को योग्य बनाता है। मनुष्य के जीवन की सफलता उसकी इच्छा-शक्ति पर निर्भर है। जो व्यक्ति जितना ही यह बल रखता है वह जीवन में उतना ही सफल होता है। इच्छा-शक्ति का बल बढ़ाने के लिए सदा कठिनाइयों से लड़ते रहना आवश्यक है। जिस व्यक्ति को कठिनाइयों से लड़ते रहने का अभ्यास होता है वह नई कठिनाइयों के अकस्मात् सामने आ जाने से भयभीत नहीं होता, वह उनका जमकर सामना करता है। कायरता की मनोवृत्ति ही मनुष्य के लिए अधिक दुःखों का कारण होती है। शूरवीर की मनोवृत्ति ही दुःख का अन्त करती है। निर्बल व्यक्ति सदा अभद्र कल्पनाएँ अपने मन में लाता है। वह अपने आपको चारों ओर से आपत्तियों से ही घिरा हुआ पाता है। अतएव अपने जीवन को सुखी बनाने के निमित्त सर्वोत्तम उपाय कठिनाइयों से लड़ने के लिए सदा तत्पर रहना ही है।

आन्तरिक कठिनाई का कारण यह होता है कि मनुष्य को अपने कर्त्तव्यों, इच्छाओं और कार्यों का स्पष्ट ज्ञान नहीं रहता। वे सब परस्पर उलझी रहती हैं। उलझन से भय उत्पन्न होता है। अतः कठिनाइयों से बचने के लिए आपको अन्दर की जटिल भावनाओं को सुलझाना चाहिए। जटिलता दूर होते ही भय बहुत अंशों में कम हो जायगा।

अन्तर्द्वन्द्व को दूर करने का सर्वोत्तम उपाय आत्म-निरीक्षण है। आत्म-निरीक्षण के द्वारा मनुष्य की भीतरी स्थिति शान्त हो जाती है। अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में मस्तिष्क की भिन्न-भिन्न शक्तियां परस्पर विशृंखलित सी रहती हैं। हम अपनी शक्तियों को एक भावना या धारा पर ही केन्द्रित नहीं कर पाते। पृथक्-पृथक् पड़ी रहने से मानसिक शक्तियाँ निर्बल होती जाती हैं। अन्तर्द्वन्द्व का प्रभाव मानसिक शक्तियों की क्षीणता होती है।

कठिनाइयाँ दो प्रकार की होती हैं। आंतरिक एवं बाह्य। कुछ व्यक्ति अन्दर ही अन्दर गुप्त भयों से चिन्तित एवं विक्षुब्ध से रहते हैं। ये अपने मानसिक जगत् में साधारण सी बातों को बढ़ा-चढ़ा कर देखने के अभ्यस्त होते हैं। इनकी कठिनाइयाँ कल्पना की कठिनाइयाँ हैं। साधारण से भय को हजार गुना बढ़ा लेना; मामूली बीमारी में मृत्यु की कुत्सित कल्पना तक जा पहुँचना – अव्यक्त मन में छुपे हुए भय तथा मनोविकार की प्रतिक्रिया है। गुप्त भय की प्रतिक्रिया-स्वरूप बाह्य कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। बाहरी कठिनाइयां अन्दर गुप्त मन में जटिलता से व्याप्त कठिनाइयों का आरोप मात्र हैं। वहीं से प्रतिकूलता की भावना उत्पन्न होती है। मन में शाँति धारण कीजिए। व्यर्थ के कभी न होने वाले मिथ्या भय, व्यर्थ की शंकाओं को त्याग दीजिये; कठिनाइयों की जटिल गुत्थियों को सुलझा डालिये; पृथक्-पृथक् प्रत्येक कठिनाई से युद्ध कर उसे पराजित कीजिये। जब तक सब से भयानक कठिनाई पर विजय प्राप्त न कर लें, तब तक अन्यों के पीछे मत पड़िये। एक-एक कर आप क्रमशः सब को पछाड़ डालेंगे,

किंतु सामूहिक रूप से वे आपको पराजित कर देंगी। कठिनाइयों तथा अपने पुरुषार्थ का सही सुलझा हुआ ज्ञान तथा सतत प्रयत्न कर आप बड़ी से बड़ी कठिनाई को जीत सकते हैं।

एक विद्वान् की ये पंक्तियाँ स्मरण रखिए—

"कठिनाइयों से लड़ते रहना न केवल अपने जीवन को सफल बनाने के लिए आवश्यक है, वरन् दूसरों को भी प्रोत्साहित करने के लिए जरूरी है। कठिनाइयों पर विजय करने से आध्यात्मिक शक्ति में वृद्धि होती है।"

लिखावट से चरित्र पढ़ना

अंग्रेजी में एक कहावत है, जिसका अभिप्राय है कि "शैली मनुष्य है।" किसी व्यक्ति की शैली द्वारा उसके व्यक्तित्व का अध्ययन किया जा सकता है।

मनुष्य का चरित्र उसकी प्रत्येक क्रिया—बैठने-उठने, वेष-भूषा यहां तक कि उनके हाथ से लिखे गये अक्षरों से भी प्रकट होता है। यद्यपि लिखावट द्वारा चरित्र जानने का विज्ञान अनुमान के बल पर ही टिका हुआ है, तथापि इसके द्वारा कुछ आश्चर्यजनक तथ्य मालूम होते हैं।

किसी के द्वारा लिखे हुए एक पृष्ठ को लीजिए और ध्यान से उसे देखिए। उसके दोनों ओर स्पष्ट हाशिया (रिक्त स्थान) छूटा हुआ है, अथवा यों ही टेढ़े मेढ़े रूप में पंक्तियां चल रही हैं। हाशिया ठीक प्रकार छोड़कर क्रमानुसार एक के पश्चात् ऊपर नीचे छपे हुए पृष्ठ के अनुसार लिखने वाला व्यक्ति कला-प्रिय, संतुलित सच्चरित्र होता है। केवल एक ही ओर हाशिया छोड़ने वाला व्यक्ति कुछ कृपण स्वभाव का होता है। लम्बा हाशिया छोड़ने वाला व्यक्ति उदार और फजूलखर्च, उपेक्षा-युक्त, दानी तथा भावनाशील होता है। जो लिखने वाले बिल-कुल ही हाशिया नहीं छोड़ते वे कंजूस, संकुचित मनोवृत्ति तथा कला-विद्वेषी होते हैं।

दो अक्षरों में मध्य के स्थान से चरित्र के कई गुण प्रकट हो जाते हैं। यदि शब्दों को सम्हाल सम्हाल कर अक्षरों के मध्य में पर्याप्त जगह छोड़ कर लेख लिखा गया है, तो इससे चरित्र की उदारता, कलात्मकता और सबलता प्रकट होती है। जो

व्यक्ति शब्दों को पास पास लिखकर एक पृष्ठ पर अधिक से अधिक लिख डालना चाहता है, कागज की किफायत दिखाता है, वह अपने सम्पूर्ण जीवन की कंजूसी उसीसे प्रकट कर देता है।

जो अपने अक्षरों के माथे समझ-बूझ कर सावधानी से बांधता है; स्पष्ट रेखाएं खींचता है; अक्षरों की लम्बाई चौड़ाई में सफाई दिखाता है, वह सफाई, सावधानी, सतर्कता, आशावादिता तथा दूसरों का ध्यान और सहानुभूति दिखाने वाला होता है। गन्दे अक्षर लिखने वाला जल्दबाज, कुरूप, कला से विमुख, आशा-योजना रहित होता है। अच्छे साफ साफ अक्षर लिखने वाला भावुक स्वभाव और कलात्मक अभिरुचि वाला होता है। अक्षरों को घुमा फिरा कर टेढ़ा-तिरछा, जिससे वे सहसा पढ़ने में न आयें लिखने वाला धूर्त, कूटनीतिज्ञ, गप्पी और दंभी स्वभाव का होता है। वह अक्षरों में भी अपनी गोपनीयता रख देता है। संभाल कर बड़े अक्षर (कैपिटल) लिखने वाला विवेकी, शान्तिप्रिय, उदार स्वभाव का आदमी होता है। जल्दबाज के अक्षर पूरे नहीं बन पाते, कभी मात्राएं ठीक नहीं होतीं, कभी अक्षरों की लम्बाई चौड़ाई व सफाई और अक्षरों के मध्य स्थान भी ठीक ठीक इंगित नहीं होता।

श्री राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी अपने अनुभव सूचित करते हुए लिखते हैं—"सूक्ष्म और पढ़ा जाने योग्य लिखना देख कर आप कह सकते हैं कि लिखने वाला सच्चरित्र और स्पष्टवादी व्यक्ति है। यदि लिखावट साफ पढ़ने में न आती हो, तो लिखने वाले को पेट का काला और किसी सीमा तक धूर्त समझना चाहिए। अक्षरों को एक दूसरे से जोड़ने की विभिन्न प्रणालियां

विचारों की शालीनता, परिपक्वता तथा आत्मबल को प्रकाश में लाती है।"

जैसा कोई व्यक्ति होता है वैसी प्रकृति उसके अक्षरों से झलकती है। एक विद्वान् का कथन है कि जटिल मानसिक प्रवृत्ति वाला व्यक्ति शब्दों को घुमा-फिरा कर बनाता है, कलात्मक प्रवृत्ति का प्रदर्शन प्रायः शब्दों को शान से बढ़ा-चढ़ा कर लिखने, नीचे ऊपर की लकीरों को टेढ़ा-तिरछा कर शान प्रदर्शित करने व यथेष्ट समय लेने से प्रगट होता है।

किसी जल्दबाज का लेख देखें तो आपको प्रतीत होगा कि वह कैसे जल्दी जल्दी घसीट लिखता है। उसके अक्षरों पर पंक्तियाँ पूरी तरह नहीं ढकी होतीं। वह अपनी बिन्दी लगाना प्रायः भूल जाता है। अक्षर ऐसे अस्पष्ट होते हैं कि समझ में नहीं आते। कोई अक्षर बड़ा, तो कोई छोटा, टेढ़ा तिरछा तथा गलत बना हुआ होता है।

जिस व्यक्ति के लेख या कापी में कांट-छांट अधिक हो; एक शब्द को काट कर उसी के ऊपर दूसरा लिखा हो या शब्द काट कर उसके ऊपर लिखने के स्थान पर उसीको सुधारा गया हो, वह आलसी है। उसका आलस इस बात से प्रकट होता है कि वह उसी को ठीक कर देना चाहता है, नया नहीं बनाना चाहता। स्पेलिंग में अशुद्धि अयोग्यता और अधूरी शिक्षा का परिचायक है। पत्रों का उत्तर न देने वाला, टाल-मटोल करने वाला, आलसी और अपने कार्यों को कल पर छोड़ने वाला होता है।

बारीक बारीक अक्षर बनाने वाला स्त्रियों के गुणों से विभूषित होता है। उसमें प्रायः लज्जा, कमनीयता, मृदुलता और मादकता विशेष रूप से विद्यमान रहती है। मोटे अक्षरों वाला

हस्ताक्षर में यह देखिए कि कोई व्यक्ति अपनी बिन्दियां या ऊपर की लकीरें कैसी रखता है। सावधानी से बिन्दी लगाने वाला व्यक्ति सतर्क और साधारण रहता है। यदि अक्षर स्पष्ट न हों, तो वह असावधान और जल्दबाज है। यदि हस्ताक्षर करने के पश्चात् एक लकीर और एक दो बिन्दी लगाई गई हैं, तो व्यक्ति गर्व और दर्प से भरा हुआ है! अंतिम अक्षरों में मोड़ हो तो वह शक्ति और विद्रोह का सूचक है। जो हस्ताक्षरों में पूरा नाम साफ-साफ लिखता है, अहंवादी, आत्म-विश्वासी, सुव्यवस्थित और गम्भीर स्वभाव का व्यक्ति है।

यदि एक पंक्ति में दूर दूर चार पाँच अक्षर ही लिखे जाँय और उनकी नीची तथा ऊपरी लकीरें बढ़ाई जांय, तो यह प्रकट होता है कि लिखने वाला शाही, खर्चीला, विलासी और उदार-हृदय है। जिस प्रकार लोग अपने खर्च में उपेक्षा करते हैं, उसी प्रकार जब लिखने बैठते हैं, तो अधिक कागज व्यय कर दूर-दूर लिख कर अपनी उदारता का परिचय दिया करते हैं।

यदि लिखते समय मनुष्य को क्रोध आ रहा है तो वह शब्दों को जल्दी-जल्दी, भद्दे, हिलते हुये हाथों से लिखेगा। यही हाल गंभीर और निराश व्यक्ति का होता है। हर्षित सुन्दर अक्षर बनाता है; चित्रकार अपने अक्षरों की विभिन्न रेखाओं से कलात्मक प्रवृत्ति दिखाया करता है। एक सा स्पष्ट समान आकार प्रकार का ढलाव विवेकशीलता का द्योतक है।

जो व्यक्ति अधिक लिखते हैं, वे तेजी के कारण शब्दों को नहीं बना पाते। उनका विचार-प्रवाह इतना तीव्र होता है कि उन्हें साफ-साफ लिखने का समय ही नहीं मिल पाता।

सामाजिक सफलता के आधार

(१) ठहरो और प्रतीक्षा करो

अधीरता बचपन की निशानी है। छोटा बालक क्षुद्र सी वस्तु के लिए रोता-पीटता है। हठ कर माता-पिता के नाक में दम कर देता है। जो कुछ कार्य करता है, उसका फल तुरन्त चाहता है। उस में परिपक्वता नहीं होती। उस का मन ललचाता रहता है। प्रत्येक वस्तु के प्रति उस के मन में एक सहज आकर्षण होता है।

इस अधीरता का बड़े व्यक्ति में होना एक निर्बलता है। जो व्यक्ति आज पेड़ लगा कर आज ही उस का फल चखना चाहता है, उसे मूर्ख कहा जायगा। संसार में सभी वस्तुओं के विकास तथा परिपक्वता के लिए एक निश्चित समय का क्रम है। उस समय का पालन प्रत्येक वस्तु तथा जीवन में होना अवश्यम्भावी है। समय से पूर्व कुछ नहीं हो सकता।

'ठहरो, और प्रतीक्षा करो'—इस में गहरा तथ्य छिपा हुआ है। ठहरने का यह अभिप्राय नहीं कि आप का जीवन आलस्य या शून्यता में व्यतीत हो। ठहरने से हमारा अभिप्राय है कि उस काल में सतत परिश्रम कर आप उत्तरोत्तर अपनी शक्तियां, योग्यताएँ और अच्छाइयां बढ़ाते रहें तथा दुर्बलताओं को छोड़ते रहें। एक एक सद्गुण चुन कर चरित्ररूपी उद्यान में लगावें। यह उन्नति का कार्य जितनी तीव्रता से चलेगा उतनी ही संसार में बढ़ने के लिए कम प्रतीक्षा करनी होगी।

जीवन के प्रारम्भ में, हो सकता है, आपको दूसरों से जली-कटी बातें सुननी और सहनी पड़ें। मन के घाव, दूसरों द्वारा कही हुई कटी-जली बातों के घाव समय के बहाव के अनुसार स्वयं विनष्ट हो जाते हैं। प्रतीक्षा करने से एक समय ऐसा अवश्य आता है, जब पुराना जमा हुआ मैल धुल कर साफ हो जाता है। प्रतीक्षा करने का अभिप्राय है अपने आप को बढ़ते हुए समय, परिस्थिति, तथा नई आवश्यकताओं के अनुसार ढालते चलना। प्रत्येक दिन संसार की प्रगति तेजी से होती जा रही है। जीवन में संघर्ष भी तीव्रतर होता जा रहा है। प्रतीक्षा काल आप के लिए अपनी योग्यताएँ बढ़ाने का समय है। संसार के अन्य देशों के उन्नतिशील व्यक्तियों, संस्थाओं, पुस्तकों से ज्ञान-संग्रह कर बड़े से बड़े संघर्ष के लिए तैयारी का समय है।

प्रतीक्षा काल कठिन परिश्रम का समय तो है ही, सतर्कता ध्यान और देखभाल का समय भी है। इस काल में आप को संसार की गति देखनी है। जनरुचि का समुचित अध्ययन करना है। आप जिस दिशा में उन्नति कर रहे हैं उस का महत्त्व तथा मूल्य कितना घट या बढ़ रहा है, यह भी ध्यान रखना है। जो व्यक्ति समय और परिस्थितियों के प्रति सतर्क है, वह विकास-पथ का पथिक है। कूप-मण्डूक की भांति पड़े सड़ने वाले आदमी संसार में पिछड़ जाते हैं, जब कि सतर्क रहने वाले व्यक्ति चरम शिखर पर आरूढ़ होते हैं। सतर्क व्यक्ति समय की मार के ऊपर है। वह समय की आवश्यकताओं से सदा सर्वदा अपने को ऊंचा उठाये रहता है। जो समय चाहता है, उस से कहीं अधिक उसे देने के लिए प्रस्तुत

(२) अपनी साख जमाइए

'साख' से अभिप्राय आपकी वह प्रतिष्ठा है, जो समाज, आप के आचरण, व्यवहार, आर्थिक स्थिति, सामाजिक लेन-देन तथा पारस्परिक सङ्गति पर निर्भर है। इसमें वे समस्त तत्त्व सम्मिलित हैं, जो समाज में आपकी सामूहिक प्रसिद्धि के कारण बनते हैं। आपके पास बहुत उज्ज्वल चरित्र है, गहन अध्ययन, मनन तथा ज्ञान-विज्ञान आदि सब कुछ है, किन्तु यदि दूसरे आपका मान नहीं करते हैं, आवश्यकता के समय आपको रुपया प्राप्त नहीं होता, या जन्म, विवाह, मृत्यु के अवसर पर आपके चार जातीय बन्धु आकर आपका सुख-दुःख नहीं बटाते हैं, तो आपका ज्ञान-विज्ञान सब व्यर्थ है।

दूसरे आपके चरित्र, धर्म और अर्थ के सम्बन्ध में क्या विचार रखते हैं, यह आपके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है। अपने घर में सभी राजा हैं, सबका मान होता है, किन्तु समाज के विस्तृत क्षेत्र में आपको कितनी प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, यह भी विचारणीय है। समाज की विस्तृत कर्मस्थली में समाज के अन्य सदस्यों के विचार इतने महत्वपूर्ण हैं कि उनके कारण हर प्रकार से सफल व्यक्ति भी असफल प्रतीत होते हैं।

सफलता एक सापेक्षित गुण है। इसका सम्बन्ध समाज से है। जिस समाज में आप रहते हैं, उसके सदस्य आपके विषय में जो कुछ विचार रखते हैं, उससे आपही नहीं, आपके परिवार का प्रत्येक, घर में रहने वाले व्यक्ति का भविष्य बनता बिगड़ता है। अपनी साख से आप व्यापार में तो कार्य सम्पन्न करते ही हैं अपितु धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि अन्य क्षेत्रों में भी प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं।

अपनी साख बनाने के लिए आपको अपने चरित्र में सामाजिकता के तत्त्व की अभिवृद्धि करनी चाहिए। सामाजिकता के अन्तर्गत आने वाले अनेक छोटे बड़े कार्य हैं, जो आप के चरित्र में उभरने चाहिएं। सर्वप्रथम मिलनसारी की अभिवृद्धि आवश्यक है। आपका समाज में अधिक से अधिक लोगों से मिलना-जुलना, लेन-देन का व्यवहार चलना चाहिए। आप कितने व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं? किन-किन से किस-किस प्रकार का काम पड़ता है? यह तो आवश्यक है ही कि आपको यह ध्यान में रखना है कि किनसे आगे चलकर काम पड़ सकता है। मान लीजिए, आपके समाज में कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं, विद्वान् हैं तथा उच्च पदाधिकारी हैं। इनमें से प्रत्येक से आपको प्रत्यक्ष रूप से कुछ न कुछ सहायता प्राप्त हो सकती है। प्रारम्भिक जान-पहचान के पश्चात् धीरे-धीरे मित्रता की वृद्धि करते रहिए। उत्सव तथा त्योहारों के अवसरों पर मिलने जाना, छोटे मोटे उपहार भेजना दूसरों के सामाजिक उत्सवों पर सम्मिलित होना अतीव आवश्यक है।

प्रतिष्ठित नागरिक की भाँति रहना अनिवार्य है। आपके वस्त्र, वेशभूषा, आचार-व्यवहार आदि ऐसे पवित्र हों कि उनका सात्विक प्रभाव आसपास के व्यक्तियों पर पड़ सके। घर में आप जो कुछ चाहें खाएं, पीयें, जैसे चाहें बैठें, उठें, कोई देखकर आलोचना करने वाला नहीं है। घर में किस प्रकार के बाजे से मनोरंजन करते हैं, कैसी पोशाक में रहते हैं, यह इतना विचारणीय नहीं है जितना आपका सामाजिक आचार तथा व्यवहार। समाज में आपको प्रत्येक नागरिक की रुचि, आराम, आदि का ध्यान रखकर कार्य करना होगा।

आपकी सज्जनता, चरित्र की निर्मलता, योग्यता और व्यवहार की मृदुता ऐसे दैवी गुण हैं, जिनका अद्भुत प्रभाव गुप्त रूप से आपके चारों ओर फैला करता है। आप का प्रत्येक कार्य गुप्त रूप से इस चरित्र रूपी सम्पदा को विस्तृत करता रहता है। सज्जनता आपके प्रत्येक कार्य में पुष्प के सौरभ की तरह निरन्तर निकला करती है। इन दैवी गुणों पर आश्रित आपकी साख स्थायी चीज है। यह साधारण वस्तु नहीं, जिसकी प्राप्ति एक दो दिन में जादू के जोर से उत्पन्न की जा सके। इसका विकास क्रमिक होता है। धीरे धीरे जैसे जैसे आप जनता के सम्पर्क में आते हैं, लोग आपके विषय में धारणाएं बनाते हैं। आप का बोलना-चालना, लेन-देन, सब कुछ आपके विषय में दूसरों के मस्तिष्क में धारणाएं निर्मित किया करती हैं। अतः अपने व्यवहार में सावधान रहिए। दूसरों के सामने अपना सबसे आकर्षक पहलू रखिए, जिसे वे देख कर आकर्षित होसकें। एक बार आकर्षित होने के पश्चात् आपके चरित्र के गुण और योग्यता उसे स्थिर रख सकेंगे।

रुपये उधार देने या लेने में बड़े सावधान रहें। जिसका जितना रुपया लिया, वह ठीक समय पर, व उचित समय से पूर्व ही दे देने में समस्त पण्डिताई, योग्यता और भलमनसाहत है। समय पर रुपये की अदायगी से साख कायम रहती है। जो व्यक्ति उधार लेकर उसे अदा करना भूल जाते हैं, जो दूकानदार उधार लेकर बड़े व्यापारियों को समय पर पैसे अदा नहीं कर पाते, उनकी साख नष्ट हो जाती है। उन्हें कोई उधार नहीं देता तथा समाज में भी उनकी प्रतिष्ठा नष्ट हो जाती है।

(२) बात को पचाकर रखिए

मनुष्य के शरीर को शक्तिशाली और स्वस्थ बनाने, और भोजन को पचा कर स्वस्थ रक्त-वीर्य बनाने वाली हमारी पाचन क्रिया ही है। जिस व्यक्ति के शरीर का पाचन ठीक रहता है, वह स्वस्थ और सुन्दर दिखाई देता है और अनायास ही हमें प्रभावित कर देता है।

यही पाचन क्रिया हमारे मन का भी एक विशिष्ट गुण है। बहुत से व्यक्ति ऐसे मुंहफट होते हैं कि जो देखते हैं, सुनते हैं, हृदय में जो शुभ-अशुभ वे अनुभव करते हैं, वह बिना सोचे-समझे तुरन्त दूसरों पर प्रकट कर देते हैं और उनकी आलोचना के शिकार बनते हैं। उनके मन की दुर्बलता यह होती है कि वे किसी भी बात को पचा कर नहीं रखते। जो कुछ सोचते-विचारते हैं; उस पर बिना पर्याप्त चिन्तन तथा मनन किए तुरन्त ज्यों का त्यों कह डालते हैं; स्वयं अपनी गुप्त से गुप्त बातें, आन्तरिक रहस्य, नई अधकचरी योजनाएं, घरेलू बातचीत तनिक सी उत्तेजना प्रोत्साहन या प्रशंसा पाते ही उच्चारण कर बैठते हैं, उनकी कोई भी अच्छी-बुरी बात किसी से छिपी नहीं रह सकती। यहां तक कि उनकी पाशविक वृत्तियों, गप्पों, ऊलजलूल मन की उमंगों तक का सारा हाल आसपास के व्यक्तियों को प्रकट हो जाता है। यह मनुष्य की एक बड़ी निर्बलता है।

बात को पचाकर मन में न रखने वाला व्यक्ति किसी बड़े पद या अधिकार के लिए भी उपयुक्त नहीं रहता। दफ्तर की, विशेषतः, सरकारी शासन विभाग, वित्तविभाग, बैंक तथा शिक्षा में परीक्षा विभाग की अनेक ऐसी गुप्त-से-गुप्त बातें होती हैं,

जो किसी दूसरे पर कभी प्रकट नहीं होनी चाहिएँ। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी भी सिलसिले में उनका कथन नहीं होना चाहिए। यदि किसी प्रकार घूमते-फिरते कभी उस सम्बन्ध में चर्चा भी चले, तब भी उसे बचाना ही उचित रहता है; किन्तु अपने मिथ्या गर्व में फूला हुआ थोथा व्यक्ति जो कुछ सोचता है, तुरन्त कह डालता है। फलतः, उसका आसन्न मित्र भी उसे घृणा की दृष्टि से देखता है। अधिकारी ऐसे कनिष्ठ को अविश्वसनीय समझते हैं। माता-पिता घर की बात दूसरों से प्रकट कर देने वाले बच्चों को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। दूकानदार और बड़ी-बड़ी फर्में ऐसे थोथे व्यक्तियों को नौकरी ही नहीं देती हैं।

पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों में अपनी गुप्त बातें दूसरों से कहने का स्वभाव विशेष रूप से पाया जाता है। बहुएं सास की, और सास बहुओं की उल्टी-सीधी उचित-अनुचित गुप्त बातें पास-पड़ोस में कहती फिरती हैं। एक-दूसरे की निर्बलताएं दूसरों के सामने प्रकट करने में गर्व का अनुभव करती हैं। यह सर्वथा त्याज्य है।

स्मरण रखिए, दूसरे व्यक्ति आपकी गुप्त बातों, घर की कलह, आर्थिक झंझटों, चारित्रिक दुर्बलताओं को सुनने में बहुत रुचि रखते हैं। जो आपसे सुनते हैं, उसमें नमक-मिर्च लगाकर दूसरों को सुनाते हैं। दूसरों की अपकीर्ति में कुटिल प्रकृति के व्यक्ति को एक पैशाचिक आनन्द आता है।

जब एक व्यापारी दूसरे व्यापारी की हानि की बात सुनता है, तो ऊपर से झूठी सहानुभूति का प्रदर्शन करता है, किन्तु मन ही मन चाहता है कि जल्दी से जल्दी दिवाला निकले

और उसे हँसी उड़ाने का अवसर प्राप्त हो। दूसरे के जीर्ण, जर्जर दुरवस्थाओं और प्रतिकूल परिस्थितियों में व्यापारी एक विशेष प्रकार के संतोष का अनुभव करते हैं। उन्हें ऐसा प्रतीत होता है, मानों उनका एक प्रतिद्वन्द्वी उनके मार्ग से हट गया हो। अतः हानि की स्थिति में यह नियम स्मरण रखिए—

"जब विपत्ति आए अर्थात् व्यापार में हानि, नौकरी का छूटना, इष्ट-वियोग, घर के झगड़े, रोग, मुकदमा या गरीबी आए तब दुनिया को उस की झलक तक न दो, जो किसी की विपत्ति के समय उससे अनुचित लाभ उठाना चाहती है, वरन् जहां तक हो सके यही प्रकट करो कि हमारा काम बिना किसी बाधा या अड़चन के अब भी पूर्ववत् चल रहा है। दुःख और दैन्य हमसे अब भी कोसों दूर हैं, क्योंकि आज की पूंजीवादी व्यवस्था में नैतिक मान-मर्यादा का मूलाधार रुपया है।"

कहा भी है—

"अनागतं यः कुरुते स शोभते,
स शोचते यो न करोत्यनागतम्।
(हितोपदेश)

अर्थात् जो सावधान होकर विचारपूर्वक कार्य करता है; वह तो शोभा पाता है और जो बिना विचारे कर डालता है, वह पीछे पश्चाताप करता है।

अतः, दूसरों से अपनी बात कहते समय मन में पर्याप्त विचार कीजिए। फिर जो कहने योग्य बात हो, उसी को नपे-तुले शब्दों में व्यक्त कीजिए। बात को पचाइए फिर कहिए।

उत्थान एवं पतन का गतिचक्र

संसार की जातियों एवं राष्ट्रों के उत्थान और पतन, व्यक्तियों, कुटुम्बों, बड़े बड़े परिवारों की उन्नति एवं अवनति का एक क्रम है, एक चक्र है। यदि हम ऐतिहासिक दृष्टिकोण से व्यक्तियों, परिवारों, जातियों और राष्ट्रों के उत्थान एवं पतन का निरीक्षण करें, तो हमें प्रतीत होता है कि—

१. प्रत्येक राष्ट्र, परिवार तथा व्यक्ति के उत्थान का कारण उसमें रहने वाले व्यक्तियों के गुण हैं। प्रायः प्रत्येक समुन्नत राष्ट्र या परिवार में एक ऐसा अद्भुत परिश्रमी या प्रतिभाशाली व्यक्ति होता है, जिसके परिश्रम, स्वार्थ-त्याग, बलिदान, सतत उद्योग एवं अथक परिश्रम के फलस्वरूप वह राष्ट्र या परिवार समुन्नत होता है, उसका क्रमिक विकास होना प्रारम्भ होता है, और उसी के जीवन में वह उन्नति के शिखर पर पहुँच जाता है।

२. जब तक परिश्रम, प्रतिभा एवं सतत उद्योग की यह आधार-शिला दृढ़ता से जारी रहती है, वह व्यक्ति जीवित रहता है तब तक वह परिवार या राष्ट्र पुष्पित, फलित और समृद्धिशील रहता है।

३. इस परिवार या राष्ट्र की नवीन परिवर्तित सुखद परिस्थितियों से पल कर नई पीढ़ी, राष्ट्र के नए नागरिक, परिवार के पुत्र, पुत्री, बंधु-बांधव इत्यादि अपनी शक्तियों को उस अनुपात में नहीं विकसित कर पाते, जितना प्रारम्भिक युगान्तरकारी

प्रतिभावान व्यक्ति ने किया था। उनकी शक्तियां क्रमशः क्षीण होनी प्रारम्भ होती हैं। वे परिश्रम या जागरूकता का महत्त्व नहीं समझते। विलासप्रियता में निमग्न होकर अर्जित धन-सम्पत्ति, प्रतिष्ठा, संचित साख का अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं।

४. नई अविकसित पीढी के युवक युवतियों पर भी जब तक बड़े-बूढ़े या आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न महापुरुष की छाया रहती है, परिवार या राष्ट्र ज्यों का त्यों रहता है। न उसका आगे उत्थान चलता है, न पतन होता है।

५. महापुरुष या प्रतिभावान व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसकी सन्तान या राष्ट्रपिता के देहावसान के बाद, उस देश के नागरिक परस्पर लड़ते झगड़ते हैं, शक्ति या धन के लिए युद्ध तक होते हैं, भाई भाई लड़ते हैं और धीरे धीरे कुटुम्ब का पतन प्रारम्भ होता है। अविकसित अपरिपक्व व्यक्ति की सन्तान प्रायः अर्जित धन, गौरव, प्रतिष्ठा या साख के महत्त्व को नहीं समझती। धीरे २ अगली पीढ़ियों में समृद्धि का चक्र नीचे आना प्रारम्भ होता है। जैसे जैसे सन्तान या नागरिकों की शिक्षा, अध्य-वसाय, परिश्रम की कमी होती है वैसे-वैसे पतन का चक्र नीचे की ओर आता जाता है।

६. अन्त में एक ऐसी स्थिति आती है, जब परिवार या राष्ट्र के नागरिक साधारण स्तर पर आ जाते हैं। उनमें कोई विशेषता, प्रतिभा, जागरूकता या परिश्रमशीलता शेष नहीं रह जाती। वे अन्य लोगों की तरह मामूली से बनकर अन्य लोगों में मिल जाते हैं। पतन का चक्र अपनी निम्नतम स्थिति में आ जाता है।

७. बहुत दिनों तक यह प्रसिद्ध कुटुम्ब विस्मृत-सा रहता है। लोग उसे भूल जाते हैं किन्तु फिर एक असाधारण शक्तियों वाले बच्चे का जन्म होता है। वह अपने परिवार की अवस्था, प्रतिष्ठा, आत्मगौरव का अध्ययन करता है। उसके गुण ऊँचा उठने के लिए उत्प्रेरित करते हैं। चक्र (Cycle) की प्रगति इस बच्चे के साथ पुनः उन्नति की ओर चलती है। वह अपना वातावरण स्वयं निर्मित करता है। शक्तियों के विकास, दूसरों का अनुभव, अपना उद्योग, परिश्रम की दैवी सम्पदायें साथ ले कर पुनः उत्थान और समृद्धि के चक्र को ऊपर उठाता है। फिर वह राष्ट्र परिवार या देश समुन्नत होना प्रारम्भ होता है। इसी उत्थान-पतन के क्रम को देखकर इतिहासकारों ने कहा है "इतिहास निरन्तर अपनी पुनरावृत्ति किया करता है।"

८. विलास-प्रियता, आराम से रहना, गम्भीरता से अरुचि, अपनी सामर्थ्य या शक्ति का अनुमान न रहना पतन का कारण बनती है। परिश्रम, संयम, उद्योग, मितव्ययता, जागरूकता से नियति चक्र ऊंचा उठता है। जाग्रति एक प्राकृतिक घटना है। राष्ट्रों या परिवार की बीमारी और नींद मनुष्यों की कई कई पीढ़ियों तक रहती है।

खल्डिया, ईजिप्ट, रोम इत्यादि पुराने राष्ट्रों के नागरिकों के आचरण भ्रष्ट होते ही इनका अधःपतन होना प्रारम्भ हो गया। क्लिओपेट्रा जैसी परम वैभव सम्पन्न ईजिप्ट की महारानी ने कितने पाखण्ड चलाए। अन्त में क्या दुष्परिणाम हुए, यह इतिहास हमें स्पष्ट बताता है। ग्रीक राष्ट्रों में स्त्रियों का प्राधान्य बढ़ते ही वहाँ के नागरिक विलासी बन गए और

राष्ट्र को रोमन लोगों ने जीत लिया। शक्ति, संयम, सदाचार के बल पर रोम प्रसिद्ध रहा, किन्तु आचरण में शैथिल्य आते ही रोम का पतन प्रारम्भ हुआ।

भारत के इतिहास को लीजिए। नए वंशों की नींव डालने वाले व्यक्ति जैसे कनिष्क, हर्ष, अशोक, चन्द्रगुप्त मौर्य, शिवाजी शेरशाह, बाबर इत्यादि शासक अद्भुत शक्तियों, परिश्रम एवं उद्योग के भरे हुए प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। इन्हीं के साम्राज्य का पतन दुर्बल शासकों या विलासी, निर्बल, आरामतलबी के कारण हुआ। नींव डालने वाला शासक प्रतिभा सम्पन्न, उद्योगी और परिश्रमी तथा नींव उखाड़ कर पतन करने वाले व्यक्ति दुर्गुणों से युक्त, असंयमी, डरपोक निकम्मे होते आये हैं।

प्रकृति का कुछ ऐसा विधान है कि बड़े व्यक्तियों के पुत्र, पुत्री उस कोटि के प्रतिभावान, संयमी, परिश्रमी, दूरदर्शी नहीं होते, जितने उनके पिता थे। उन्हें समृद्धि का जो वातावरण प्राप्त होता है, उसमें उनकी गुप्त शक्तियों का विकास रुक जाता है। चूंकि बच्चों में पूर्व संचित समृद्धि, प्रतिष्ठा या धन सम्पत्ति को सम्हालने की शक्ति नहीं होती, इसलिए धीरे २ वह स्वयं हीनता की ओर जाते हैं। उच्च शक्तियों के साथ सांसारिक समृद्धि, प्रतिष्ठा, धन इत्यादि का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

व्यक्तियों एवं परिवारों के उत्थान-पतन में निरन्तर नियति चक्र चल रहा है। बड़े परिवारों के व्यक्ति अपने बच्चों की शिक्षा, परिश्रमशीलता, जागरूकता, संयम के प्रति ध्यान नहीं देते। फलतः, इनके बच्चे साधारण अपरिपक्व असंयमी रह जाते हैं और उनकी पीढ़ियों की संचित सम्पत्ति धीरे २ विनष्ट हो जाती है। कभी कभी देखा जाता है कि कुछ व्यक्ति और

परिवार अकस्मात सट्टे, बेईमानी कालेबाजार या चालबाजियों के बल पर सम्पन्न नजर आने लगते हैं, किन्तु कलई खुलते ही उतनी तेजी से उनका पतन भी देखा जाता है।

बड़े कुल का लड़का लड़की रुपए का मूल्य नहीं समझते, वे उस अनुपात में परिश्रम नहीं कर पाते, जिस अनुपात में उनके पूर्व पुरुषों ने किया था। धीरे २ उनके हाथ में आकर व्यापार शिथिल हो जाते हैं। मूल धन भी खाया जाता है। खर्चे वैसे के वैसे ही बने रहते हैं। व्यापार नष्ट हो जाता है और फिर वे परिवार उसी स्थिति में आ जाते हैं, जहां से उनका उत्थान होना प्रारम्भ हुआ था।

इस नियति-क्रम से युद्ध करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक शासक नवीन शासकों को गुणी, परिश्रमी एवं प्रतिभाशाली बनाकर उनके हाथ में बागडोर सौंपे। पिता पुत्र को गरीबी का महत्त्व समझाए। रुपए की शक्तियां, सदुपयोग, परिश्रमशीलता और संयम, इत्यादि सिखाए। कन्धे मजबूत होने पर ही सब धन, यश, प्रतिष्ठा, सम्पत्ति सौंपने में स्थाई ख्याति और प्रतिष्ठा स्थिर रह सकती है। उत्थान एवं पतन के चक्र (Cycle) को चलाने में प्रकृति बड़ी निर्दयी है, यह स्मरण रखिए।

आज कहने का युग थोड़े ही है, करने का है

ऐसे अनेक व्यक्ति हैं, जिनके पास उत्तम विचारों की कमी नहीं है। उनके सामने उनकी प्राप्ति के लिए अनेक सुविधाएँ भी हैं। सफलता की अनेक युक्तियां उनके पास हैं, किन्तु फिर भी वे आगे बढ़ते नहीं हैं। इसका क्या कारण है?

एक सज्जन लिखते हैं, "मेरे विचारों तथा योजनाओं की स्फूर्ति से अनेक व्यक्तियों को लाभ पहुँचा है, वे उन्नत हुए हैं। किन्तु मुझे यह लिखते हुए शोक है कि मैं अभी तक जहाँ का तहाँ पड़ा हुआ हूँ। जीवन में कुछ भी प्रगति नहीं कर सका हूँ।"

इनके व्यक्तित्व की त्रुटि यह है कि ये कागजी योजनायें तो यथेष्ट बनाते हैं, विचारों की उनके पास कमी नहीं है। परन्तु अपने विचारों को वे कार्यरूप में परिणत नहीं करते। विचार जब तक निष्क्रिय है, वे कपोलकल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। जिस तत्त्व की सब से अधिक आवश्यकता है—वह कार्य को कर डालने, योजनाओं पर चलने की है। बात को सोचना एक चीज है, उसको काम में लाकर वैसा ही बन जाना दूसरी चीज है। क्रियात्मक (अर्थात् प्रैक्टीकल) कार्य करने की अतीव आवश्यकता है।

सफल व्यक्तियों के जीवन का यदि आप अध्ययन करें तो आपको प्रतीत होगा कि वे काम को क्रियात्मिक रूप से कर

देने में अधिक विश्वास करते थे। उनके आन्तरिक जीवन में पूर्ण साम्य था। उनमें केवल अच्छे विचारों का आनन्द लेने की ही क्षमता नहीं है, वरन् काम कर लेने में अधिक विश्वास है। उनमें कार्य करने की शक्ति अधिक है। उन्हें जो विचार मिलता है वे उसे अपने कार्य द्वारा प्रत्यक्ष कर पूर्ण बनाते हैं।

कार्य संसार की सञ्चालिनी—कन्ट्रोल करनेवाली—शक्ति है। जो कार्य को कर डालता है, उसके अंग-प्रत्यङ्ग, मस्तिष्क, स्मृति और अनुभव की अभिवृद्धि होती है। जो केवल सोचता भर है, वह जहाँ का तहाँ रुका रहता है।

नेपोलियन पढ़ा लिखा नहीं था। अधिक सोचता नहीं था उसकी सफलता का रहस्य कार्य था। वह कार्य करने का प्रेमी था। "मुझे बड़ी बड़ी योजनाएं मत बताओ। जो मैं कर सकूं, वही मुझे चाहिए।" यही उसका उद्देश्य था।

शिवाजी की शिक्षा कितनी थी? अकबर ने कौन कौन सी डिग्री-डिप्लोमा प्राप्त किए थे? महाराज रणजीतसिंह को एक नेत्र से दीखता था, पर अपनी अद्भुत कार्य करने की शक्ति के द्वारा उन्होंने प्रसिद्धि प्राप्त की थी।

अंग्रेजी में एक कहावत है "नरक की सड़क उत्तम योजनाओं से परिपूर्ण है।" अभिप्राय यह है कि जो व्यक्ति सोचते बहुत हैं, वह उतना ही कम कार्य करते हैं। रावण के पास अमृत के घड़े रखे रहे किन्तु उस मूर्ख को उन्हें पान करने का अवकाश ही प्राप्त न हुआ। यदि वह उनका पान कर लेता, तो सम्भव था अमर हो जाता। वह अपने बल में विश्वास रखे निष्क्रिय जीवन व्यतीत करता रहा।

हेमलेट नामक राजकुमार की कठिनाई का वृत्तान्त प्रत्येक

व्यक्ति ने सुना है। "करूँ या न करूं?" इसी
सदैव फँसा रहा। एक पग भी आगे न बढ़
अधिक सोचना, योजनाएँ बनाना व्यर्थ रह
असफलता का एक कारण बना। जो हेमलेट व
वही आज के अनेक व्यक्तियों की है।

क्या लाभ है उस विचार से जिस पर काम न
यह वैसा ही है, जैसा एक बीज, जो बञ्जर
गया हो और अंकुरित न हो सका हो। यह व
फल का उत्पादन नहीं करता, व्यर्थ ही खि
पंखुरियाँ इधर उधर छितरा देता है।

कार्य न करने वाला व्यक्ति एक प्रकार का
शेखचिल्ली कहता बहुत है, बड़ी २ योजनाएं बनात
कर बातें करता है तथा शब्दों के माया-जाल
न्यूनता नहीं होती। जिस बात में वह पीछे रहता
कार्य न करने की आदत है। कहेगा मन भर, और
रत्ती भर भी। बातें सम्पूर्ण दिन करा लीजिए
नाम पर कुछ नहीं करेगा। जो व्यक्ति शेखचिल्ल
वे निष्क्रिय, बेकार, कोरे बातूनी, जबानी ज
वाले जहां के तहाँ हैं। ऐसे व्यक्ति महान् कार्य
कर सकते।

आवश्यकता इस बात की है कि हम जो कुछ
या योजनाएं विनिर्मित करें, वे कार्य के निरूप
से करें। योजनायें निर्माण करने से पूर्व सोचिए
सोच रहा हूँ, क्या मैं उनको कर सकूंगा? उन
शक्तियों में कितना अनुपात है? मैं अपनी सा

की बात तो नहीं सोच रहा हूं? कहीं मैं अपनी सामर्थ्य से दूर की योजना में तो नहीं फँस गया हूँ? जो कार्य मैं हाथ में लेकर चल रहा हूँ, उसे करने के निमित्त मेरे पास क्या क्या साधन हैं? मेरे पास कितना धन है? कितने मित्र, बन्धु-बांधव इत्यादि हैं? मेरी आर्थिक, शारीरिक, धार्मिक, सामाजिक स्थिति कैसी है? इन प्रश्नों को पर्याप्त विचार करने के पश्चात् ही किसी बड़े कार्य में हाथ डालें।

किसी भी कार्य की पूर्ण सफलता के लिए इन नियमों को स्मरण रखिए :—

जिस सफलता की हम आशा करते हैं, वह पहले हमारे मस्तिष्क में आनी चाहिए। जिस रूप में जो चीज आप प्राप्त करना चाहते हैं, वह वैसी ही स्पष्ट रूप में आपके मनःनेत्र में स्पष्ट होनी चाहिए।

आपकी जितनी मानसिक, शारीरिक या क्रियात्मक शक्तियाँ हैं, उन्हें सम्मिलित रूप में कार्य करने दीजिए।

जब तक आप अपनी समूची शक्तियों को उद्देश्य पर केन्द्रित नहीं करेंगे, तब तक आप अपनी शक्तियों से अधिकतर लाभ नहीं प्राप्त कर सकेंगे। मनुष्य में इधर उधर बहक जाने का स्वभाव है। मन की यह भ्रान्ति 'भंवरावृत्ति' हमारी एक बड़ी निर्बलता है। इस पर विजय प्राप्त करने की अतीव आवश्यकता है।

मानसिक दृष्टि से सचेष्ट और जागृत व्यक्ति के साथ उसकी इन्द्रियाँ विशेषतः दृष्टि और श्रवणेन्द्रियां विशेष रूप से नियंत्रित होनी चाहिए।

हमारी शक्तियों को संचालित करने वाली संकल्पशक्ति का

विकास एवं संचालन मानसिक ट्रेनिंग में प्रथम वस्तु होनी चाहिए। संकल्पशक्ति ही वास्तविक मनुष्य है।

इच्छानुसार एकाग्रता का संचालन करना सृजनात्मकशक्ति का प्रथम नियम है।

यदि जाग्रत मन का उचित शिक्षण हो जाय तो धीरे धीरे आन्तरिक मन भी उसी के अनुसार परिवर्तित हो जाता है।

संसार में उन्नति का एक ही मन्त्र है—करो।

करो! अर्थात् कर्म करो। तुम्हारी अन्तरात्मा तुम्हें बतलायगी कि तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है? कौन से शुभ कार्य हैं? किन कर्मों से सर्वतोमुखी उन्नति हो सकती है? क्या उचित और क्या अनुचित है? कौन कौन सुकर्म हैं, कौन दुष्कर्म! कमी ज्ञान की नहीं है, पुस्तकों की नहीं है, कमी केवल एक ही तत्त्व की है। वह है अपने संकल्पों के अनुसार कार्य न करना, अपने विचारों को कार्य-रूप में परिणत न करना, हाथ पर हाथ धरे निष्क्रिय, निष्प्रयोजन आलस्य में बैठे रहना।

जो कार्य नहीं करता, वह जहाँ का तहाँ पड़ा रहता। है। उसकी शारीरिक, मानसिक या बौद्धिक शक्तियों का विकास नहीं होता।

कर्म ही संसार की, समाज की, मनुष्य की उन्नति का मूल तत्त्व है। हम प्रायः दोष तो अपने भाग्य को या परिस्थितियों को देते हैं पर वास्तव में योजनाओं की पूर्ति के लिए ठोस कदम नहीं उठाते! आलस्यवश हम दूसरों को दोषी ठहराते हैं और अपने कर्मों के ऊपर तनिक भी ध्यान नहीं देते। उन्नति कर्मों का ही फल है।

'कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।''

भगवद्गीता अध्याय ३, श्लोक २०

शुभ कर्म से ही जनकादि को उत्तम सिद्धियाँ मिली थीं—यह स्मरण रखिए।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥'

भगवद्गीता अध्याय ३, श्लोक २१

अर्थात्, हे अर्जुन ! श्रेष्ठ पुरुष जो जो करता है, वही वही और लोग भी करते हैं। श्रेष्ठ व्यक्ति जिसे उत्तम समझता है और भी लोग उसी कार्य को उत्तम समझते हैं।

हमारे नेताओं, धर्म-उपदेशकों, पथ-प्रदर्शकों का यह नैतिक कर्तव्य हो जाता है कि वे सदा शुभ कर्म करें। उत्तम योजनाएँ बनाएँ; आचरण शुद्ध रखें और संसार के सम्मुख कर्म का आदर्श रखें।

सोचने-विचारने में व्यर्थ समय नष्ट मत करो। जितना भी कर सको, करो। आज ही करो !

मुझे अमुक अमुक साधन चाहिएँ। भजन, पूजन के लिए अमुक अमुक वस्तुओं की आवश्यकता है। बिना साधनों के मैं भला कैसे उन्नति कर सकता हूँ ? मेरे पास अच्छा घर नहीं है, रुपया पैसा नहीं है। आगे पीछे घर का भार सम्हालने वाला कोई नहीं है। मैं अपने परिवार की जिम्मेदारी के अनेक सांसारिक बन्धनों से बंधा हुआ हूँ। मैं क्या करूं ?

तुम्हारा ऐसा सोचना भारी भूल है, नितान्त भ्रान्तिमूलक !

तुम ऐसा सोच कर अपने ऊपर, अपने आत्म विश्वास के ऊपर अत्याचार कर रहे हो। अरे भाई! काम करो! जितने भी साधन में हों, उतने से ही करो।

आप कहते हैं, मेरी उन्नति के मार्ग रुके पड़े हैं। कहीं स्वास्थ्य की अड़चन है, कहीं अधिकारी मार्ग रोके हुए हैं, कहीं अवकाश नहीं मिलता। उन्नति का कोई रास्ता ही नजर नहीं आता।

गलत! फिर गलत! करो और जितने भी मार्ग हों, उन्हीं से उन्नति का कार्य प्रारम्भ करो।

क्या कहा—स्थान नहीं है? पढ़ने का अच्छा कमरा नहीं है? लिखने के लिए फाउन्टेनपेन नहीं है? पुस्तकालय नहीं है? स्वाध्याय के लिए एकान्त नहीं है? भजन-पूजन-चिन्तन के लिए स्थान नहीं है? घर में बच्चों की चिल्लपों है, पत्नी की तनिक तनिक सी छोटी बड़ी कभी समाप्त न हो सकने वाली प्रार्थनाएँ हैं?

फिर गलत। कार्य न करने की बातें! कर्म से भागने की दुष्प्रवृत्ति! अरे भाई करो! जितने भी स्थानों पर कर सकते हो करो! झोंपड़ी हो तो उसी में करो और कुछ नहीं तो वृक्ष के नीचे ही कार्य करो।

आप कहते हैं, करने के अवसर ही नहीं मिलते। किस अवसर पर हम अपनी योग्यताएँ दिखलाएँ? अवसर आने दीजिए, हम भी कर गुजरेंगे।

यह तर्क भी गलत है। जितने भी अवसरों पर कर सको,

करो ! आलस्य त्याग कर कर्म करो । निःस्वार्थ भाव से करो।

मैं किस के लिए करूं ? मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दीखता जिसकी सेवा, सहायता, सहयोग करूं ? जिसे आगे बढ़ाऊं, कोई मेरी सहायता नहीं चाहता। कोई मेरे पीछे नहीं आना चाहता।

हम कहते हैं, जितने भी लोगों का भला कर सकते हो, करो। अपनी पत्नी के, पुत्र-पुत्री के या परिवार के सदस्यों के लिए ही करो। मुहल्ले वालों के लिए करो। नगर वालों के लिए करो। प्रान्त के लिए करो और हो सके तो देश तथा विश्व के लिए करो।

आप कहते हैं, "मैं तीन चार साल से प्रगति, समाज-सेवा और देश की योजनाओं में सक्रिय सहयोग दे रहा हूं। निःस्वार्थ भाव से लोक और परलोक दोनों को सुधारने का बहुत सा कार्य मैंने अब तक कर लिया है। अब मुझे अधिक काल तक ये कार्य करने की क्या आवश्यकता है ?"

मित्रवर ! कर्म तो जीवन पर्यन्त चलना चाहिए। कोई क्षण भर भी कर्म के बिना नहीं रह सकता। कर्म करने से ही मनुष्य पूर्ण बनता है: सौन्दर्य विकसित होती है। लोक परलोक बनता है। संसार का इतिहास बनता है। आचरण और चरित्र बनता है। प्रतिष्ठा और भाग्य बनता है। तीनों लोकों में कर्म से बढ़कर अन्य कोई शुभ वस्तु नहीं है। अतः

जितना भी कर सको, करो।

जितने भी साधनों से कर सको, करो।